MAHIN 2.1

एम. ए. (हिंदी)

सत्र - II

राष्ट्रीय शैक्षणिक धोरण 2020 नुसार सुधारित अभ्यासक्रम

प्रश्न पत्र क्र. - 2

हिंदी साहित्य का इतिहास (आधुनिक काल)

HISTORY OF HINDI LITERATURE (MORDERN AGE)

© UNIVERSITY OF MUMBAI

प्राध्यापक रविन्द्र कुलकर्णी
कुलगुरू
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

प्राचार्य (डॉ.) अजय भामरे
प्र-कुलगुरू
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

प्राध्यापक शिवाजी सरगर
संचालक
दूरस्थ व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

प्रकल्प समन्वयक : **प्रा. अनिल आर. बनकर**
सहयोगी प्राध्यापक
इतिहास विभाग एवं कला शाखा- प्रमुख,
दूरस्थ व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

अभ्यास समन्वयक एवं संपादक : **डॉ. संध्या शिवराम गर्जे**
सहायक प्राध्यापक
दूरस्थ व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

लेखक : **प्रोफेसर श्याम सुन्दर पाण्डेय**
बी. के. बिरला महाविद्यालय,
कल्याण, जिला-ठाणे 421301

: **प्रोफेसर गौतम सोनकांबळे**
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पाटकर वर्दे महाविद्यालय,
गोरेगांव प. मुंबई - 400 018

: **डॉ. अजित कुमार राय**
सहायक प्राध्यापक
के सी महाविद्यालय, चर्चगेट, मुंबई

मार्च २०२५ , मुद्रण - १ ISBN 978-93-6728-751-4

प्रकाशक : **संचालक, दूरस्थ व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र.**
मुंबई विद्यापीठ, विद्यानगरी, मुंबई- ४०० ०९८.

अक्षर जुळणी आणि मुद्रण
मुंबई विद्यापीठ मुद्रणालय
विद्यानगरी, मुंबई

अनुक्रमणिका

अध्याय क्र.	नाव	पृष्ठ क्र.
१.	आधुनिक हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि	१
२.	आधुनिक काल : अवधारणा एवं स्वरूप	१८
३.	भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग	२८
४.	छायावादी काव्य और प्रगतिवादी की प्रमुख प्रवृत्तियाँ	४१
५.	प्रयोगवाद एवं नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ	५८
६.	समकालीन हिन्दी कविता प्रवृत्तियाँ और उपलबधियाँ	७२
७.	उपन्यास विधा का विकास	८४
८.	हिन्दी कहानी का क्रमिक विकास	१००
९.	आलोचना : विकास यात्रा	११९

एम. ए. (हिंदी)

सत्र - II

प्रश्न पत्र क्र. - 2

हिंदी साहित्य का इतिहास (आधुनिक काल)

HISTORY OF HINDI LITERATURE (MORDERN AGE)

SYLLABUS

क) आधुनिक भारत के इतिहास और वैचारिक विकास का परिचय.

ख) आधुनिक हिंदी कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि का ज्ञान.

ग) स्वाधीनतापूर्व भारतीय समाज में साहित्य की भूमिका स्पष्ट करना.

घ) आधुनिक साहित्यिक विधाओं का परिचय प्राप्त करना.

MODULE 1: (2 CREDITS)

Unit 1:

क) आधुनिक हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि,

ख) आधुनिक काल : अवधारणा और स्वरूप

ग) आधुनिक काल की वैचारिक पृष्ठभूमि,

Unit 2 :

क) भारतेंदु युग

ख) द्विवेदी युग

ग) छायावाद

MODULE II : (2 CREDITS)

Unit 3:

क) प्रगतिवाद और प्रयोगवाद

ख) नई कविता

ग) समकालीन कविता

Unit 4:

क) हिंदी उपन्यास का विकास

ख) हिंदी कहानी का विकास

ग) हिंदी आलोचना का विकास

References:

१. हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास - भाग आठ, नौ और दसवाँ, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

२. हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेंद्र

३. हिंदी का गद्य साहित्य - डॉ. रामचंद्र तिवारी

४. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

५. आधुनिक हिंदी साहित्य का आदिकाल - श्री नारायण चतुर्वेदी

६. छायावाद - नामवर सिंह

७. आधुनिक हिंदी कविता की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह

८. नई कविता - डॉ. जगदीश गुप्त

९. नई कविता - डॉ. विश्वनाथ तिवारी

१०. समकालीन कविता डॉ. विश्वनाथ तिवारी

११. छायावाद: पुनर्मुल्यांकन - पंत

१२. आधुनिक हिंदी कविता में काव्यचिंतन - डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय

१३. आधुनिक हिंदी साहित्य प्रवृत्तियां, एवं विमर्श- दत्तात्रय मुरुमकर, साहित्य संस्थान गाजियाबाद

१

आधुनिक हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि

इकाई की रूपरेखा

१.० इकाई का उद्देश्य

१.१ प्रस्तावना

१.२ राजनीतिक पृष्ठभूमि

१.३ सामाजिक पृष्ठभूमि

१.४ आर्थिक पृष्ठभूमि

१.५ शैक्षिक पृष्ठभूमि

१.६ धार्मिक पृष्ठभूमि

१.७ सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

१.८ सारांश

१.९ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१.१० लघुत्तरी प्रश्न

१.११ संदर्भ ग्रन्थ

१.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के उपरांत विद्यार्थी :

आधुनिक हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे। इसके अंतर्गत विद्यार्थी राजनीतिक,सामाजिक,आर्थिक,शैक्षिक,धार्मिक,संस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।

१.१ प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का प्रारंभ और भारतीय नवजागरण का परिवेश लगभग एक ही रहा है। भारतीय समाज के लिए यह समय बहुत ही महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है क्योंकि एक लम्बी गुलामी के बाद बदलाव की सुगबुगाहट हर क्षेत्र में होने लगी थी। एक तरफ प्रिंटिंग प्रेस के आविष्कार ने विविध रूपों में महापुरुषों के विचारों से लोगों को अवगत कराने लगा था तो दूसरी तरफ अनेक समाज सेवी संस्थाओं ने सामान्य जन को जगाने का कार्य प्रारंभ कर दिया था। फिर भी इस समय राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तर पर व्यापक परिवर्तन हुए। इन समस्त परिवर्तनों को इस समय के हिन्दी साहित्य में देखा जा सकता है। इस काल के साहित्य ने भारतीय समाज की बदलती हुई विचारधाराओं और स्वतंत्रता संग्राम को अपने वर्ण्य वस्तु का केंद्र बनाया। आधुनिक काल का साहित्य भारतीय समाज के उथल-

पुथल और बदलाव को समझने के लिए एक ऐतिहासिक दस्तावेज कहा जा सकता है । यह साहित्य अपने समय के समाज, संस्कृति, और राजनीति की जटिलताओं को उजागर करता है । इसे पढ़ कर हम उस समय के विचारों, संघर्षों और आकांक्षाओं को समझ सकते हैं। यही कारण है कि हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की पृष्ठभूमि का अध्ययन करना न केवल साहित्यिक दृष्टि से, बल्कि ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टि से भी आवश्यक है। साहित्य और समाज का गहरा संबंध होता है। साहित्य अपने समय के समाज,राजनीति,संस्कृति और अन्य पहलुओं का एक दर्पण होता है। यदि हम उस युग की पृष्ठभूमि को समझे बिना साहित्य का अध्ययन करते हैं, तो हम उसे सही ढंग से समझ नहीं सकते, क्योंकि साहित्यकार अपनी रचनाओं में उस समय की घटनाओं, विचारधाराओं और संघर्षों को व्यक्त करते हैं। हम आधुनिक काल की पृष्ठभूमि को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर विश्लेषित कर सकते हैं

१.२ राजनीतिक पृष्ठभूमि

आधुनिक काल की राजनीतिक पृष्ठभूमि में अंग्रेज़ों का शासन, स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीयता के बीज का अंकुरित होना शामिल हैं। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का आरम्भ सन् १८५७ में हुआ। पर भारतवर्ष के आधुनिक बनने की प्रक्रिया की शुरुआत एक शताब्दी पूर्व (१७५७ ई.) तभी हो गयी थी, जब ईस्ट इंडिया कम्पनी ने नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी के युद्ध में हराया था। सिराजुद्दौला की हार के बाद सम्पूर्ण बंगाल पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। १७६४ ई. में बक्सर के युद्ध में मुगल-सम्राट शाहआलम भी पराजित हुआ। १७६५ के युद्ध में उसकी रही-सही शक्ति भी समाप्त हो गयी। सम्राट ने अब बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अंग्रेज़ों को बख्श दी। किन्तु सम्पूर्ण देश पर आधिपत्य जमाने के लिए अंग्रेज़ों को दो अन्य शक्तियों को पराजित करना शेष था। वे शक्तियां थीं - मराठे और सिक्ख। सिक्ख तो पंजाब की सीमा में थे, परन्तु मराठों का प्रभाव बहुत व्यापक था। पारस्परिक फूट और संघर्ष के कारण असी (१८०३) और लासवारी (१८०३) के युद्धों में मराठे विजित हो गये और उनकी संघशक्ति समाप्त हो गयी। १८४९ ई. में सिक्खों को पराजित करने के बाद सम्पूर्ण देश अंगरेजों के अधीन हो गया। १८५६ ई. में अवध भी अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। इस विजय के कारण अंग्रेज़ों का मदोन्मत्त हो जाना स्वाभाविक था। उनकी नीतियों से असन्तुष्ट देशी राजाओं ने एकजुट होकर १८५७ ई. में व्यापक स्तर पर विद्रोह किया। फलस्वरूप ईस्ट इंडिया कम्पनी समाप्त कर दी गयी और भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बन गया। अंग्रेज़ों ने अपनी आर्थिक, शैक्षणिक और प्रशासनिक नीतियों में परिवर्तन किया। इस देश के लोग भी नये सन्दर्भ में कुछ नया सोचने और करने के लिए बाध्य हुए। कुल मिलाकर कहना होगा कि १८५७ की क्रांति के बाद ब्रिटिश सरकार ने भारत पर सीधा नियंत्रण कर लिया, जिससे स्वतंत्रता आंदोलन की नई लहर शुरू हुई। १८८५ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई, जिसने राष्ट्रीय आंदोलन को संगठित दिशा दी। १९०५ में बंगभंग-, स्वदेशी आंदोलन और होमरूल मूवमेंट जैसे आंदोलनों ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ व्यापक विरोध उत्पन्न किया, जबकि १९१९ में जलियांवाला बाग हत्याकांड ने जनआक्रोश को और बढ़ा दिया। महात्मा गांधी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन (१९२०), सविनय अवज्ञा आंदोलन (१९३०) और भारत छोड़ो आंदोलन (१९४२) ने आज़ादी की लड़ाई को मजबूती दी। भगत सिंह, सुभाष चंद्र बोस और अन्य क्रांतिकारियों के प्रयासों से स्वतंत्रता संग्राम को नई गति मिली, और अंततः द्वितीय विश्व युद्ध (१९३९-१९४५) के बाद भारत स्वतंत्रता की

ओर बढ़ा, १५ अगस्त १९४७ को भारत की आज़ादी मिली। आजादी के बाद की राजनीति ने भी साहित्य को बहुत प्रभावित किया। नेहरू युग बाद के बाद का मोहभंग का साहित्य, इंदिरा गांधी द्वारा लागू आपातकाल से प्रभावित साहित्य, अस्मिता की राजनीति, उसके बाद की धार्मिक-जातीय एवं गठबंधन की राजनीति, बीसवीं सदी के अंतिम दशक का वैश्वीकरण आदि का अध्ययन भी आधुनिक काल के साहित्य की पृष्ठभूमि की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

१.३ सामाजिक पृष्ठभूमि

आधुनिक भारत की नींव का पहला पत्थर राजा राममोहन राय ने रखा। आधुनिकीकरण के समान सन्दर्भ में ही उन्होंने सन् १८२८ में ब्रह्म समाज की स्थापना की। आधुनिक युग में ब्रह्म समाज,प्रार्थना समाज और आर्यसमाज ने पुराने धर्म को नये समाज के अनुरूप ढालने का प्रयास किया। ब्राह्मसमाज और प्रार्थना समाज ने तो नये परिवर्तनों को स्पष्ट रूप से अंगीकार कर लिया, पर आर्यसमाज वैदिक धर्म के मूल स्वरूप को बनाये रखना चाहता था। किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि आर्यसमाजी वैदिक युग की रीति-नीतियों में लौट जाना चाहते थे। उस समय की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विचारधारा पर आर्यसमाज का विशेष प्रभाव पड़ा। मध्यकाल में नये परिवेश के फलस्वरूप जाति-प्रथा, छुआछूत, बाह्याडम्बर आदि के विरोध में भक्ति-आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था। मुसलमानों के प्रतिष्ठित हो जाने पर इस आन्दोलन के माध्यम से सामंजस्य का प्रयास दिखाई पड़ा। किन्तु नये युग में नये प्रकार के सामंजस्य की आवश्यकता हुई। मध्यकाल का सामंजस्य भावनामूलक था, उस काल के बहुत-से भक्त और सन्त अन्तर्विरोधों के भी शिकार थे, पर अब भावना से काम नहीं चल सकता था, उसके स्थान पर तर्क, विवेक और बुद्धि से काम लेना अनिवार्य हो गया था। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, आर्यसमाज और थियॉसॉफिकल सोसाइटी की मान्यताएं बहुत कुछ बुद्धि-विवेक और तर्क पर ही आधारित है। अरबी-अनुवाद के माध्यम से ही वे अफलातून, अरस्तू, प्लॉटीनस आदि प्राचीन यूनानी विचारकों से परिचित हुए। बनारस जाकर उन्होंने कुछ वर्षों तक गीता, उपनिषद् आदि का भी गहन अध्ययन किया। उनकी विचारधारा पर इस्लामी एकेश्वरवाद का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। ईसाई धर्म से भी वे कम प्रभावित नहीं थे! ये समस्त विचारधाराएं उन्हें पुराने औपनिषदिक दर्शन में मिल गयीं-विशेष रूप से 'तैत्तरेय' और 'कौशीतकी' में। कर्मकाण्ड और अन्धविश्वास का विरोध करने के लिए उन्होंने उपनिषदों का उपयोग किया और मूर्तिपूजा को धर्म का बाह्याडम्बर माना। आज से डेढ़ सौ वर्ष पहले वे अकेले व्यक्ति थे, जो अंध श्रद्धा और रूढ़ियों के विरुद्ध लड़ रहे थे। उनकी विचारधारा में तर्क की प्रधानता थी जो लॉक, ह्यूम और रूसो के अनुरूप थी। उनके नेतृत्व में ब्रह्म समाज ने कई प्रकार की कुरीतियों पर प्रहार किया। जाति-प्रथा को उन्होंने अमानवीय और राष्ट्रीयता-विरोधी कहा। सती प्रथा के विरोध में उनका प्रयास सर्वदा स्मरणीय रहेगा। उन्होंने विधवा-विवाह तथा स्त्री-पुरुष के समानाधिकार का समर्थन किया और सन्दर्भ-विशेष में पाश्चात्य संस्कृति को भी मूल्यवान समझा। इसीलिए उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के प्रसार में योग दिया और ब्रिटिश राज्य की अच्छाइयों की प्रशंसा की। वस्तुतः उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध तक अंग्रेज़ों ने जो कुछ किया, उसे ऐतिहासिक दृष्टि से प्रगतिशील ही कहा जायेगा। ब्रह्मसमाज को देवेन्द्रनाथ टैगोर (१८१७-१९०५) और केशवचन्द्र सेन (१८३८-१८८४) ने आगे बढ़ाया। देवेन्द्रनाथ बेदों की अपौरुषेयता पर विश्वास नहीं करते थे, उनकी आस्था अन्तः प्रजा पर अधिक थी। केशवचन्द्रसेन बहुत कुछ प्रयोगवादी थे। उनकी प्रेरणा के

फलस्वरूप मद्रास में वेद समाज और बम्बई में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। राजा राममोहन राय की तार्किकता और बौद्धिकता तक ही अपने को सीमित न रखकर वे वैष्णवों के भजन-कीर्तन की ओर आकृष्ट हुए। ईसाई धर्म की ओर भी वे अधिकाधिक झुकते गये। उनके कारण ब्रह्म समाज में दो बार फूट पड़ी और दोनों बार उन्होंने अलग-अलग संस्थाएं बनायी साधारण ब्रह्म समाज और नव वेदान्त। केशवचन्द्र सेन के बाद ब्रह्म समाज में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ जो शिक्षित समाज को प्रभावित करता। केशवचंद सेन सन १८६४ में बम्बई और पूना में केशवचन्द्र सेन का आगमन हुआ।

प्रार्थना समान की स्थापना १८६७ में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। इसके प्रमुख उन्नायक महादेव गोविन्द रानाडे थे। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रमुख बुद्धिजीवी, विधिवेत्ता और मेघावी व्यक्ति थे। देश और समाज का कोई ऐसा पक्ष नहीं या. जिसकी ओर उनकी दृष्टि न गयी हो। सामाजिक रूढ़ियों और अन्धविश्वासों के विरुद्ध वे निरंतर संघर्ष करते रहे। उन्होंने धार्मिक और सामाजिक समस्याओं पर तर्कपूर्ण ढंग से विचार किया और भागवत धर्म का अनुसरण करते हुए संकीर्ण विचारधारा को कभी भी प्रश्रय नहीं दिया। मध्यकालीन महाराष्ट्रीय सन्तों के प्रति उनकी गहरी आस्था थी, पर अपने विचारों में वे कहीं भी प्रतिक्रियावादी नहीं थे और न ही उनमें कोई पूर्वाग्रह था। अतीत के लिए उनके मन में आदर था. किन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि वे अतीत को उसके उसी रूप में पुनः प्रतिष्ठित करना चाहते थे। पुराने आचार, विचार और संस्थाओं को उनके मूल रूप में पुनः स्थापित करनेवाले पुनरुत्थानवादियों से उनका विरोध था। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि मृत अतीत को कभी भी जीवित नहीं किया जा सकता। उनके अनुसार समाज जीवित अवयवों का संघटन है, जिसमें परिवर्तन की प्रक्रिया बराबर चलती रहती है- इस प्रक्रिया के बन्द हो जाने पर समाज मुर्दा हो जायेगा। रानाडे ने जिस एक सुधार पर बार-बार बल दिया वह है- मनुष्य की समानता। वे जाति-पाति की प्रथा के विरुद्ध थे और अन्तर्जातीय विवाह के पक्षधर थे। स्त्री-शिक्षा पर उन्होंने बराबर बल दिया है। उनके वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण, तर्क-पद्धति सामाजिक परिष्कार के प्रति अभिरुचि आदि से स्पष्ट है कि वे पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित थे। किन्तु, पाश्चात्य मत को भी उन्होंने बिना तर्क के स्वीकार नहीं किया। दूसरे शब्दों में, वे भारतीय संस्कृति को नवीन वैज्ञानिक विचार प्रणाली के अनुरूप ढालने का यत्न कर रामकृष्ण मिशन

रामकृष्ण मिशन की स्थापना रामकृष्ण परमहंस के देहावसान के बाद विवेकानन्द ने की थी। रामकृष्ण परमहंस अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व में परमहंस थे। उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि इस गरीब, अपढ़, गंवार, रोगी, अर्धमूर्तिपूजक, मित्रहीन हिन्दू भक्त ने बंगाल को बुरी तरह हिला दिया। उनके योग्य शिष्य विवेकानन्द ने उन्हें बाहर से भक्त और भीतर से ज्ञानी कहा है। स्वयं विवेकानन्द के सम्बन्ध में ठीक इसका उल्टा कहा जा सकता है। सन १८९३ में विवेकानन्द विश्वधर्म संसद में सम्मिलित होने के लिए शिकागो गये। उनकी वक्तृता से प्रभावित होकर 'न्यूयॉर्क हेराल्ड ट्रिब्यून' ने लिखा था, 'विश्वधर्म संसद में विवेकानन्द सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे। उनको सुनने के बाद ऐसा लगता था कि उस महान् देश में धार्मिक मिशनों को भेजना कितनी बड़ी मूर्खता थी।" विवेकानन्द का मुख्य प्रयोजन रामकृष्ण परमहंस के उपदेशों का प्रचार करना था, फिर सामाजिक कार्यों में उनकी गहरी रुचि थी। मानवीय समता के विश्वासी होने के कारण उन्होंने जाति, सम्प्रदाय, छुआछूत आदि का विरोध किया। गरीबों के प्रति उनकी सहानुभूति अत्यन्त प्रगाढ़ थी। शिक्षित समुदाय तथा उच्च वर्ग की मत्सना करते हुए उन्होंने लिखा है "जब तक देश के हजारों लोग भूखे है अज्ञानी है- में प्रत्येक शिक्षित वर्ग को धोखेबाज

कहूंगा। गरीबों के पैसे से पढ़कर भी वे उनकी और तनिक भी ध्यान नहीं देते।... उच्च वर्ग शारीरिक और नैतिक दृष्टि से मर चुका है।" उनके अनुसार धर्म यह है जो शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्ति दे, जो आत्मसम्मान और राष्ट्रीय गौरव प्रदान करने में सहायता करे। विवेकानन्द ने हीनता की भावना से ग्रस्त देश को यह अनुभव कराया कि इस देश की संस्कृति अब भी अपनी श्रेष्ठता में अद्वित्तीय है. इस देश का आध्यात्मिक चिन्तन असमानान्तर है। आध्यात्मिक स्तर पर मनुष्य-मनुष्य की समता. एकता बन्धुत्व और स्वतन्त्रता की ओर भी उन्होंने हमारा ध्यान आकृष्ट किया। पश्चिम की भौतिकता से चमत्कृत देशवासियों को पहली बार पह से रखा जा सकता है। एहसास हुआ कि हमारी अपनी परम्परा में भी कुछ ऐसी वस्तुएं हैं जिन्हें संसार के सम्मुख गौरवपूर्ण ढंग से दयानन्द सरस्वती ने रखा।

गुजरात, उत्तरप्रदेश और पंजाब में **आर्यसमाज** का प्रभाव था। इन प्रदेशों का स्वभाव बंगाल से भिन्न है- बंगाल की भावुकता के स्थान पर इन्हें पौरुष और अक्खड़ता अधिक प्रिय है। बंगाल और महाराष्ट्र के पुनर्जागरण में मध्यकालीन सन्तों की वाणी का भी योगदान है, पर आर्यसमाज में उनका कोई स्थान नहीं है। सन १८६७ में दयानंद सरस्वती ने बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। दयानन्द असाधारण व्यक्ति थे। वे संस्कृत के अनन्य विद्वान, वाग्मी और अत्यन्त मेधावी थे। उनका व्यक्तित्व अतिशय दृढ़ और असमझौतावादी चथा। उनके विचारों में कहीं भी अस्पष्टता और रहस्यवादिता नहीं मिलेगी। उन्होंने आर्यसमाज के लिए वेदों को आधार माना। उनके अनुसार वेद अपौरुषेय हैं और वैदिक धर्म ही सत्य और सार्वभौम है। सामाजिक और नैतिक मूल्यों को देखते हुए आर्यसमाज ने एक आचार संहिता बनायी थी। इसमें जाति-भेद और मनुष्य-मनुष्य या स्त्री-पुरुष में असमानता के लिए कोई स्थान नहीं था। निश्चय ही यह एक लोकतान्त्रिक दृष्टि थी। वैदिक धर्म के व्याख्याता होने के बावजूद स्वामी दयानन्द समाज की भौतिक उन्नति के लिए पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा को आवश्यक समझते थे। इसीलिए सन १८८६ में दयानन्द एंग्लोवैदिक कॉलेज की स्थापना हुई और आगे चलकर प्रत्येक महत्त्वपूर्ण स्थान पर दयानन्द स्कूल-कॉलेज खोले गये। आर्यसमाज ने राष्ट्रीय विचारधारा को आगे बढ़ाने में आश्चर्यजनक योगदान किया। कुछ समय तक ब्रिटिश सरकार इसे दबाने के लिए भरपूर चेष्टा करती रही. किन्तु उत्तर भारत के आचार-विचार, रहन-सहन और साहित्य-संस्कृति पर आर्यसमाज का गहरा प्रभाव पड़ा। भाषा के परिष्कार में भी इस आन्दोलन का अभूतपूर्व योग है। अस्पृश्यता पर जितना प्रबल आघात इस आन्दोलन ने किया, उतना और किसी ने नहीं। आर्यसमाज का प्रसार मुख्यतः मध्य-वर्ग के बीच हुआ, इसलिए इसका कार्य अधिक क्रान्तिकारी सिद्ध हो सका। इसकी कार्य-पद्धति प्रगतिशील थी। जहां तक मानवीय समता, अस्पृश्यता आदि का सम्बन्ध है, इसे अवश्य ही प्रगतिशील माना जायेगा।

थियॉसॉफिकल सोसाइटी की स्थापना सन् १८७५ में मदाम ब्लावस्तू और ओल्कार्ट द्वारा न्यूयार्क में हुई थी। यह आन्दोलन भारतीय धार्मिक परम्परा पर आधारित था। सोसाइटी के संस्थापक सन् १८७९ में भारतवर्ष पहुंचे और १८८२ में अड्यार (मद्रास) में इसकी शाखा खोल दी गयी। इस संस्थानी इंग्लैंड की शाखा से सम्बद्ध श्रीमती एनी बेसेंट सन १८९३ में भारत आयीं और सोसाइटी के विकास में तन-मन से जुट गयीं। अपने गतिशील व्यक्तित्व और असाधारण वक्तृत्व-शक्ति के कारण उन्होंने अनेक शिक्षित भारतीयों को आकृष्ट किया। श्रीमती बेसेंट ने समस्त देश का दौरा किया और हिन्दु धर्म की आध्यात्मिकता के पक्ष में ओजस्वी

भाषण दिये। चियाँसौंफ़ी में अपने आदों को मूर्त रूप देने के लिए उन्होंने शिक्षा-संस्थाएं भी खोली। बनारस का सेंट्रल हिन्दू कॉलेज इसी तरह की संस्था है।

बंगाल, महाराष्ट्र और उत्तर भारत में नये धार्मिक आन्दोलनों के विरुद्ध पुनरुत्थानवादी प्रतिष्क्रियाएं आरम्भ हुई। बंगाल में राधाकान्त देव ने राजा राममोहन राय के ब्रह्म समाज के विरोध में धर्म-सभा (१८३०) की स्थापना की। पर सन १८५७ तक वह ब्राहमसमाज का प्रभाव कम नहीं कर सकी। १८५७ के विद्रोह के बाद सुधारवादी रेडिकल्स का जोर कम हो गया और पुरातनवादी मनोवृतियां फिर से उभरकर सामने आयी। इसके अनन्तर बंगाल में दो प्रवृत्तियों का ज्यादा जोर रहा- राष्ट्रीयतावादी और स्वच्छन्दतावादी। दोनों के मूल में वैयक्तिकता, अतीत के प्रति गौरव का भाव, विदेशी सत्ता के विरुद्ध आक्रोश, गांव की बढ़ती हुई गरीबी के प्रति सहानुभूति, स्वतन्त्रता और समानता के प्रति आग्रह आदि प्रवृत्तियां क्रियाशील थी। इनमें से अतीत के गौरव के प्रति जागृति फैलाने का श्रेय उन पुरातत्त्ववेत्ताओं और पुरालेखविदों को है जिन्होंने विस्मृति के गर्भ में विलीन भारतीय साहित्य, कला, ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, वास्तु-कला आदि का पुनरुद्धार किया। इसके फलस्वरूप संसार में भारत का गौरव बढ़ा और इस देश के निवासियों में आत्मसम्मान का भाव जग उठा। अब पाश्चात्य संस्कृति के सामने डटकर खड़ा हुआ जा सकता था। इसके फलस्वरूप नवीन हिन्दूवाद का जन्म हुआ। इसमें मुख्यतः दो दल थे- एक प्रत्येक प्रकार के सुधार का विरोधी था; दूसरा यथास्थान नये विचारों के सन्निवेश का पक्षपाती तो था पर मुख्य धारा में किसी प्रकार के मौलिक परिवर्तन का आकांक्षी नहीं था। बंकिमचन्द्र चटर्जी ऐसे ही व्यक्ति थे। वे गीता के निष्काम कर्मयोग के हिमायती थे। उन्होंने धर्मतत्त्व पर ग्रन्थ-रचना के अतिरिक्त कृष्णा के सम्बन्ध में 'कृष्णचरित्र' की रचना की। धर्म-सुधारकों की भांति वे टुकड़ों-टुकड़ों में समाज-सुधार के पक्षपाती नहीं थे। उनका विश्वास था कि धर्म और नैतिकता के समग्र पुनर्जागरण में ही समाज-सुधार समाविष्ट हो जाता है। वैकिम के उपन्यासों में देश-प्रेम का स्थान बहुत ऊंचा था। वे देश-प्रेम को धर्म और धर्म को देश-प्रेम कहते थे। महाराष्ट्र की स्थिति बंगाल से भिन्न थी। एक तो वह बंगाल से साठ वर्ष पीछे अंग्रेजों के अधिकार में आया और दूसरे, पेशवा राज्य की परिसमाप्ति का दर्द उसे बना हुआ था। अपनी परम्पराओं के प्रति उसे अधिक अनुराग था। महाराष्ट्र ने देश की गरीबी, भुखमरी आदि का पूरा दायित्व अंगरेजी राज्य पर डाल दिया- चिपलूणकर के निबन्धों में देश के पराभव का एकमात्र जिम्मेवार विदेशी शासन को ठहराया गया है। तिलक ने रानाडे के सुधारों का विरोध किया। उनकी दृष्टि में ये सुधार समाज को विभक्त करनेवाले और राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने में बाधा डालनेवाले थे। जनता को एक करने के लिए उन्होंने गणेश पूजा की शुरुआत की। उत्तर भारत में भी आर्यसमाज के विरोध में सनातन धर्मावलम्बियों ने अपना स्वर बुलन्द किया। इन विरोधी स्वरों के कारण सुधार का कार्य मन्द तो पड़ा, किन्तु इससे राष्ट्रीयता को अधिक बल मिला।

१.४ आर्थिक पृष्ठभूमि

नये सम्बन्ध साहित्य का इतिहास बदलती हुई अभिरुचियों और संवेदनाओं का इतिहास होता है, जिसका सीधा सम्बन्ध आर्थिक और चिन्तनात्मक परिवर्तन से है। कुछ लोगों की दृष्टि से आर्थिक परिवर्तनों के साथ साहित्यिक परिवर्तनों का तालमेल बैठा देना ही साहित्य का इतिहास होता है. कुछ लोग संस्कृति के धरातल पर ही अभिरुचियों का विकास-क्रम निर्धारित करते हैं। वस्तुतः आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों में पेचीदा सम्बन्ध हैं। स्थूल रूप से दोनों

में कारण-कार्य-सम्बन्ध स्थापित करके सरलीकरण नहीं किया जा सकता। अतः साहित्येतिहास के सन्दर्भ में दोनों के सम्बन्धों और योगदान का विवेचन अतिरिक्त अवधानता की अपेक्षा रखता है।

आधुनिक काल के पूर्व भारतीय गांवों का आर्थिक ढांचा प्रायः अपरिवर्तनशील और स्थिर रहा, गांव अपने-आपमें स्वतः पूर्ण आर्थिक इकाई थे। इस अपरिवर्तनशीलता को लक्ष्य करते हुए सर चाल्स मेटकाफ ने लिखा है: "गांव छोटे-छोटे गणतन्त्र थे। उनकी अपनी आवश्यकताएं गांव में पूरी हो जाती थीं। बाहरी दुनिया से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। एक के बाद दूसरा राजवेश आया, एक के बाद दूसरा उलटफेर हुआ, हिन्दू, पठान मुगल, सिक्ख, मराठों के राज्य बने और बिगड़े, पर गांव वैसे के वैसे ही बने रहे।" गांव की जमीन पर सबका समान अधिकार था। किसान खेती करता था; लुहार, बढ़ई, कुम्हार, नाई, धोबी, तेली आदि गांव की अन्य आवश्यकताएं पूरी करते थे। पेशा जाति के अनुसार निश्चित होता था। एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति का पेशा नहीं करता था, क्योंकि इसके लिए वह स्वतन्त्र नहीं था। नगर और गांव अपनी-अपनी इकाइयों में पूर्ण और एक-दूसरे से असम्बद्ध थे। नगर तीन तरह के थे- राजनीतिक महत्त्व के नगर, धार्मिक नगर और व्यापारिक नगर। नगरों में मूल्यवान वस्तुओं का निर्माण होता था। रत्नजटित आभूषणों, बारीक सूती रेशमी वस्त्रों, हाथीदांत की मीनाकारी, वस्त्रों की रंगाई आदि के लिए इस देश की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति थी। पर इन वस्तुओं की खपत धनी वर्ग में होती थी- विशेष रूप से राजाओं, सामन्तों, श्रेष्ठियों आदि में। नगरों की औद्योगिक इकाइयां सामान्य वस्तुओं का निर्माण नहीं करती थी। गांव का घरेलू उद्योग अलग था और नगरों का अलग। अंग्रेज व्यापारियों ने इस देश को अपना बाजार बनाने के लिए यहां के बारीक धन्धों को बहुत कुछ नष्ट कर दिया। जो कुछ बाकी बचे थे. वे नयी सामाजिक व्यवस्था के कारण नष्ट हो गये।

अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ-साथ इस देश की सामाजिक संघटना में विघटन और परिवर्तन लक्षित होने लगा, यों अंग्रेजों की विजय की जिम्मेदारी यहां की स्थिर आर्थिक व्यवस्था पर नहीं है। अनेक जातियों-उपजातियों में विभक्त इस देश में पारस्परिक एकता का सर्वदा अभाव रहा है। विदेशी मुसलमानों की विजय का कारण भी यही था और अंग्रेजों की विजय का भी! आज भी.जबकि एक सीमा तक देश का आधुनिकीकरण हो गया है,स्थिति यही है। पुरातन आर्थिक व्यवस्था के छिन्न-भिन्न होने पर जाति-प्रथा शिथिल तो हुई, पर मिट नहीं सकी। आधुनिक साहित्य में इस प्रथा पर करारी चोट की गयी है। जो आर्थिक परिवर्तन अंग्रेजों द्वारा ले आया गया, वह मुसलमान आक्रमणकारियों द्वारा सम्भव नहीं था। इनके आगमन से सामाजिक रीति-नीतियों में कहीं संकोच और कहीं विस्तार दिखाई पड़ा। मुसलमान यायावर थे और सामाजिक विकास की दृष्टि से वे पिछड़े हुए थे। उनकी स्थिति पूर्व-सामन्तीय थी। इसलिए वे विजयी होकर भी यहां की उच्चतर सभ्यता से विजित हो गये और समाज के ढांचे में कोई बुनियादी फर्क नहीं ला सके। आर्थिक इकाइयों में मथास्थिति बनी रही। अंग्रेज सामन्तीय व्यवस्था से आगे बढ़कर पूंजीवादी व्यवस्था अपना चुके थे। सामाजिक विकास की दृष्टि से वे यहां के लोगों से एक मंजिल आगे थे। इसलिए आर्थिक व्यवस्था को परिवर्तित करने में उन्हें सफलता प्राप्त हुई। किन्तु इसे उनकी कृपा नहीं कहा जा सकताः इसमें उनका स्वार्थ था। गांव की जमीन का बन्दोबस्त करने के कारण उन्हें चोड़े लोगों से ही मालगुज़ारी मिल जाती थी। जमींदारों और बड़े-बड़े जोतदारों का एक ऐसा तबका खड़ा हुआ जो अंग्रेजों की आखिरी विदाई के समय तक उनकी सहायता करता रहा। अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ के लिए इस

देश को लूटा और यहां के व्यापार को नष्ट किया। लॉर्ड कॉर्नवालिस ने सन् १७९३ में बंगाल, बिहार और उड़ीसा में जमींदारी प्रथा लागू की। बाद में बम्बई, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश के कुछ इलाकों में भी यह व्यवस्था आरम्भ की गयी। सन् १८२० में सर टॉमस मुनरो ने 'इस्तमरारी बन्दोबस्त' लागू करके जमीन को व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में बदल दिया। जमींदार और बोतदार दोनों ही जमीन का क्रय-विक्रय कर सकते थे। इसके पहले ज़मीन को न तो खरीदा जा सकता था और न बेचा जा सकता था. क्योंकि उस पर व्यक्ति का स्वामित्व नहीं था। खेत के व्यक्तिगत सम्पत्ति हो जाने पर खेती का व्यावसायिक हो जाना स्वाभाविक था। पहले कृषि का उत्पादन गांव में ही रह जाता था, किन्तु अब बाजारों में भी आने लगा। यातायात की सुविधा बढ़ने पर उत्पादन की किस्म पर भी प्रभाव पड़ा। खेतों में उन वस्तुओं का उत्पादन अधिक किया जाने लगा जो व्यवसाय की दृष्टि से अधिक लाभप्रद थी। रुपये के चलन से भी व्यावसायिकता में अभिवृद्धि हुई। पर किसानों की स्थिति नहीं सुधर सकी-उन्हें एक ओर सरकारी मालगुजारी अदा करने की चिन्ता रहती थी, दूसरी ओर महाजन की ऋण अदायगी की। समय-समय पर मालगुज़ारी की दर बढ़ा दी जाती थी. फलस्वरूप वे महाजनों के चंगुल में बुरी तरह फंस जाते थे। महाजनी सभ्यता का जाल फैलाने का श्रेय अंग्रेजों को ही है। आये दिन अकाल भी पड़ते रहते थे, किन्तु अकाल-पीड़ितों की रक्षा करने में अंग्रेज अधिकारी असमर्थ थे। कर के बोझ और अकाल, महामारी आदि की भयंकरता का प्रचुर उल्लेख भारतेन्दु तथा उनके समसामयिक लेखकों के साहित्य में मिलता है।

पहले की सरल ग्राम-व्यवस्था में पारस्परिक झगड़ों का निपटारा पंचायतों में हो जाता था। नयी अर्थ-व्यवस्था के कारण पारस्परिक सम्बन्ध जटिल हो गये। अब पंचायतों द्वारा उनकों फैसला नहीं हो सकता था। ऐसी स्थिति में नयी संस्थाओं का जन्म हुआ और पंचायतों के स्थान पर कचहरियां स्थापित की गयीं। अलगाव तो पुरानी व्यवस्था में भी था, किन्तु नयी व्यवस्था में जो अलगाव आया, वह भिन्न प्रकार का था। पहले एक गांव दूसरे गांव से और गांव शहर से अलग थे। साहित्य-संस्कृति पर नागरिक संस्कृति की गहरी छाप थी। सबको एकसूत्रता प्रदान करने वाला तत्त्व धर्म था। यही कारण था कि भक्तिकालीन काव्य नगर और गांव को समान रूप से प्रभावित कर सका। रीतिकालीन काव्य में गांव को वैसा महत्त्व प्राप्त नहीं हुआ। इसे प्रमाणित करने के लिए बिहारी के दोहे उद्धृत किये जा सकते हैं। आधुनिक काल में गांव की ओर साहित्यकारों की दृष्टि अवश्य गयी, पर अब तक किन्हीं अशों में गांव बदल चुके थे।

अंग्रेजों की नयी व्यवस्था से जनता को पोर संकट का सामना करना पड़ा। खेत अनेकानेक टुकड़ों में बंट गये, किसान और सरकार के बीच बहुत-से मध्यस्य हो गये और पैदावार घटती गयी। ग्रामीण उद्योग-धन्धों के नष्ट होने पर अधिक-से-अधिक लोग खेती पर आश्रित हो गये। बहुत-से शहरी उद्योग भी प्रेगरेको की कृपा से काल-कवलित हो गये। फिर भी पुरानी अर्थव्यवस्था के स्थान पर जिस नयी अर्थ-व्यवस्था को लागू किया गया उससे ही ऐतिहासिक विकास की अनिवार्य प्रक्रिया के फलस्वरूप, भारतीय समाज विकास की ओर अग्रसर हुआ। गांवों की जड़ता टूटी, गांव दूसरे गांवों और शहर के सम्पर्क में आने के लिए बाध्य हुए। घेरे में बंधी हुई अर्थव्यवस्था राष्ट्रोन्मुख ही थी। जो देश केवल धार्मिक एकता में बंधा हुआ था. वह राष्ट्रीय एकता के प्रति भी जागरूक होने लगा। दूसरी ओर, जातिप्रथा आर्थिक वर्गों में बदलने लगी, किन्तु जातीय उच्चता की भावना विलीन नहीं हो सकी। अंग्रेजों ने जाने-अनजाने को सुविधाएं दी, उनका उपयोग उच्च जाति के लोगों ने ही किया। शासन में भी उन्ही का प्राधान्य

थाः राष्ट्रीय आन्दोलन भी उन्हीं के हाथ में था। साहित्य और कला पर भी उन्हीं का आधिपत्य बना रहा। इसलिए आज एक होकर भी हम अनेक हैं। अंग्रेजों ने इस भेदभाव का लाभ उठाया पर सारा दोष उनके कन्धों पर लादकर हम अपने को निर्दोष नहीं कह सकते। फिर भी जाति-प्रथा शिथिल जरूर हुई इसमें सन्देह नहीं है। इसके साथ ही नये-नये आर्थिक वर्गों का जन्म हुआ। उच्च वर्ग और श्रमिक वर्ग के अतिरिक्त एक नये मध्य-वर्ग का उदय हुआ। इस देश में इस वर्ग की भूमिका ही सबसे अधिक क्रान्तिकारी कही जायेगी।

नयी अर्थ-व्यवस्था और नवीन शिक्षा पद्धति के कारण भारतीय जनता में एक ऐसी चेतना उत्पन्न हुई जिसके आधार पर लोग अपनी कठिनाइयों को समझने और उनको दूर करने की कोशिश करने लगे। इसके लिए प्रेस से बेहतर और कोई साधन नहीं हो सकता था। भारतवर्ष में मुद्रण-यन्त्र स्थापित करने का श्रेय पुर्तगालियों को है। सन् १५५० में उन्होंने दो मुद्रण-यन्त्र मंगवाकर धार्मिक पुस्तके छापनी आरम्भ की। सन १६७४ में ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा बम्बई में मुद्रण-कार्य आरम्भ किया गया। अठारहवी शताब्दी में मद्रास, कलकत्ता, हुगली, बम्बई आदि स्थानों में छापेखाने स्थापित हुए। अंग्रेजों और मिशनरियों ने समाचारपत्र निकाले, किन्तु अपने देश के सन्दर्भ में पत्र निकालने की पहल राजा राममोहन राय ने की। सन् १८२१ में उनके सहयोग से संवाद कौमुदी नामक साप्ताहिक बंगला-पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसमें सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में लेख रहते थे। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के विरुद्ध लगातार लिखना आरम्भ किया जिससे परम्परावादी हिन्दू समाज उनके विरुद्ध हो गया और इस पत्र को भी क्षति पहुंची। इसके पहले ही श्रीरामपुर मिशन के तत्त्वावधान में दो पत्र प्रकाशित हो रहे थे- समाचार-दर्पण' और 'दिग्दर्शन'। इनके प्रत्युत्तर में उन्होंने 'ब्रमैनिकल मैगजीन' का प्रकाशन किया। फारसी भाषा में भी उनकी प्रेरणा से दो पत्र निकले। 'जाम-ए-जहां-तुमा' और 'मीरत-उल-अखबार'। बम्बई से गुजराती प्रेस के तत्वावधान में १८२२ ई. में बॉम्बे समाचार' निकलना आरम्भ हुआ। दैनिक पत्र के रूप में यह अब भी निकल रहा है। द्वारिकानाथ टैगोर, प्रसन्नकुमार टैगोर, राजा राममोहन राय जिसे प्रगतिशील व्यक्तियों ने १८३० में 'बंगदूत' पत्र की नींव डाली। सन् १८३० के अन्त तक कलकत्ता से तीन बंगला दैनिक, एक त्रिसाप्ताहिक, दो अर्ध-साप्ताहिक, सात साप्ताहिक और एक मासिक प्रकाशित हो रहे थे। हिन्दी का पहला पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' सन् १८२६ में प्रकाशित हुआ। बाद में कलकत्ता से ही 'प्रजामित्र' (१८३४) का प्रकाशन होने लगा। हिन्दी का दैनिक पत्र 'समाचार सुधावर्षण' (१८५४ ई.) श्यामसुन्दर सेन के सम्पादकत्व में कलकत्ता से ही निकला। उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन और भी अधिक संख्या में होने लगा। इससे नये विचारों के आदान-प्रदान में सुविधा हुई। विगलित सामाजिक-नैतिक रूढ़ियों के विरोध में पत्रों का अच्छा उपयोग किया गया। इनके माध्यम से अंग्रेजी हुकूमत की उन कार्यवाहियों का भी विरोध शुरू हुआ जो देश-हित के विरुद्ध पड़ती थीं। इनसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण और राष्ट्रीयता के प्रचार-प्रसार में भी पर्याप्त सहयोग मिला।

प्रेस की स्वतन्त्रता को लेकर प्रारम्भ से ही अंग्रेजों और भारतवासियों में टकराहट रही। इस संघर्ष में भी राजा राममोहन राय ने पहल की। एडम के समय में प्रेस की स्वतन्त्रता पर जो आक्रमण हुआ. उसके विरोध में उन्होंने अपने अन्य राष्ट्रीयतावादी मित्रों के साथ कलकत्ता उच्च न्यायालय में आवेदन किया। उन्होंने सरकार की इस कार्यवाही को अप्रजातान्त्रिक, अव्यावहारिक तथा प्रतिक्रियावादी बताया। रमेशचन्द्र दत्त के अनुसार संवैधानिक ढंग से राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने के संघर्ष की यह शुरुआत थी। सन् १७९९ में बेलज़ली ने

प्रेस की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी, पर १८१८ ई. में हेस्टिग ने प्रेस सम्बन्धी प्रतिबन्धों को हटा दिया। सन १८२३ में प्रेस सम्बन्धी अधिकार-पत्र लेने का अधिनियम बना. जिसे सन् १८३५ में मेटकाफ ने समाप्त कर दिया। सन् १८५७ तक यही स्थिति बनी रही। इसमें सन्देह नहीं कि समाचारपत्रों के माध्यम से विचारों का विनिमय सहज हो पाया। भारतीय पुनर्जागरण के लिए प्रेस का वरदान अत्यधिक मूल्यवान सिद्ध हुआ। पुनर्जागरण के नेताओं ने इस माध्यम का पूरा-पूरा उपयोग किया। मुद्रणालयों का प्रभाव साहित्य के लिए भी अत्यन्त हितकर सिद्ध हुआ। भारतेन्दु के समय में शायद ही कोई ऐसा साहित्यकार रहा हो जिसका सम्बन्ध किसी-न-किसी पत्र-पत्रिका से न रहा हो। पत्र-पत्रिकाओं में साहित्यिक रचनाओं के प्रकाशन के साथ ही समसामयिक समस्याओं पर भी प्रकाश डाला जाता था। इस प्रकार उनके प्रकाशन का अर्थ था- दूसरों की समस्याओं में साझेदारी करना और उनको लेकर नयी-नयी वैचारिक भूमियां तैयार करना। ये पत्र-पत्रिकाएं एक ओर जनतांत्रिक भावनाओं का पोषण कर रही थीं और दूसरी ओर समाज की रूढ़ियों पर प्रहार करती हुई राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योग दे रही थीं। मुद्रण-यन्त्र के कारण साहित्य में वैयक्तिकता की भावना भी आयी। इसके पूर्व साहित्य सामान्यतः श्रुत हुआ करता था। उसके प्रशंसकों की संख्या सीमित होती थी। इसलिए साहित्यकारों के लिए आवश्यक था कि अपने श्रोताओं की रुचि का ध्यान रखते पर छापेखाने ने सारी स्थिति ही उलट दी। अब साहित्यकार और सामाजिक का सीधा सम्बन्ध नहीं रह गया- मुद्रण के माध्यम से ही वे एक-दूसरे से सम्बद्ध हो पाते थे। इस माध्यम ने साहित्यकार को अवसर दिया कि वह बहुत कुछ व्यक्तिगत भी अभिव्यक्त कर सके। मुद्रण यन्त्र के आविष्कार के पूर्व साहित्य में वैयक्तिकता का समावेश अत्यल्प था. पर बाद में भारतेन्दु तथा उनके सहयोगियों के वैयक्तिक निबन्धों में इस प्रवृत्ति का समावेश प्रचुर मात्रा में देखा जा सकता है।

आधुनिक युग का साहित्य मुद्रण-कला के कारण अपने रूप-रंग, अभिव्यंजना, प्रभावान्विति आदि में मध्यकालीन साहित्य से पृथक और स्वतन्त्र रूप से अस्तित्ववान् हो गया है। आधुनिक काल के साहित्य में जो वैविध्य, वैयक्तिक कल्पना-छवियां, बौद्धिकता और प्रयोगात्मकता आयी है उसका आंशिक दायित्व छापेखाने पर भी है। छापेखाने के अभाव में परिवर्तमान अभिरुचियों और संवेदनाओं का आकलन सम्भव नहीं था। साहित्य और कला सम्बन्धी वादों, आन्दोलनों आदि को रूपायित करने में इसका महत्त्वपूर्ण योग है।

१.५ शैक्षिक पृष्ठभूमि

शिक्षा का पश्चिमीकरण ब्रिटिश राज्य की स्थापना और आर्थिक परिवर्तनों के सन्दर्भ में कुछ ऐसी नयी समस्याएं पैदा हुई, जिनसे जूझने के लिए नये दृष्टिकोण की आवश्यकता पड़ी। कहना न होगा कि नयी शिक्षा प्रणाली द्वारा जो ज्ञान-विज्ञान उपलब्ध हुआ उससे इस दिशा में बहुत सहायता मिली। अठारहवी शताब्दी के अन्त में इस देश को जिस पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के सम्पर्क में आना पड़ा, वह भारत के ज्ञान-विज्ञान से प्रकृति में ही भिन्न था। भारतीय ज्ञान गतानुगतिक और परम्परामुक्त हो चला था, जबकि पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान नये जीवन-सन्दर्भों की ताज़गी लिये था। भारतीय ज्ञान-विज्ञान का लक्ष्य आध्यात्मिक और पारलौकिक था, तो पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का भौतिक और इहलौकिक इस देश की विद्या वर्ग या जाति विशेष तक सीमित थी, पर पाश्चात्य विद्या सर्वसुलभ थी। फिर भी, ज्ञान-विज्ञान के अनेक क्षेत्रो में इस देश ने अभूतपूर्व प्रगति की थी। दर्शन,ज्योतिष,गणित,विज्ञान धर्मशास्त्र काव्यशास्त्र, व्याकरण

आदि में इसका जोड़ कोई अन्य देश नहीं था। पर अब उन्हीं को दुहराया जा रहा था, नयी उदभावनाओं का मार्ग अवरुद्ध हो चला था। कुछ लोग वेदादि की आप्तता वर्णाश्रम धर्म की श्रेष्ठता, इहलौकिकता के प्रति अनासक्ति आदि को यथापूर्व बनाये रखने के पक्षधर थे। मुसलमानों में भी इसी प्रकार की गतानुगतिकता घर कर गयी थी। पर अब नयी परिस्थितियों में पहली रूढ़ियों की उपयोगिता के आगे प्रश्नचिह्न लग गया था। हिन्दुओं और मुसलमानों की शिक्षा पद्धतियों पर टिप्पणी करते हुए ओ-मैले ने लिखा है, "इनमें बहुत कुछ समानता थी। वे उस भाषा में शिक्षा देते थे जो जनता की भाषा नहीं थी। उनकी शिक्षा का मूल स्रोत धर्म या और उसकी नाप्तता अपरिवर्तनीय थी। वे नये अभिनिवेश और परिवर्तन के विरुद्ध थे...।" इस प्रकार की शिक्षा पद्धति अपने-अपने धर्म के प्रति कट्टरता की भावना ही पैदा कर सकती थी इसके द्वारा स्वतन्त्र व्यक्तित्व और विवेकसम्मत (रेशनत) दृष्टिकोण का निर्माण सम्भव नहीं था। फलस्वरूप आधुनिक शिक्षा-पद्धति का समारम्भ एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। आधुनिक होने की दिशा में इसे एक गत्यात्मक प्रश्न माना जायेगा। इसके प्रसार में मुख्यतः तीन शक्तियों का योगदान रहा- १. ईसाई मिशन, २. सरकार और ३. व्यक्तिगत प्रयत्न।

अंग्रेजी शिक्षा की उपयोगिता कई दृष्टियों से सिद्ध हो रही थी। इसके माध्यम से अंग्रेज व्यापारियों से विचार-विनिमय में सुविधा होती थी। अंग्रेजी जाननेवालों के लिए विदेशी फर्मों और कम्पनी के प्रशासन में नौकरी पाना भी सरल था। यद्यपि १७६५ से १८१३ ई. तक ईस्ट इंडिया कम्पनी ने शिक्षा के क्षेत्र में विशेष कार्य नहीं किया, किन्तु मुसलमानों के तुष्टीकरण के लिए वारेन हेस्टिंग्ज़ द्वारा 'कलकत्ता मदरसा' (१७८०) खोलना, बनारस के रेजीडेंट द्वारा 'बनारस संस्कृत कॉलेज' (१७९१) की नींव डालना और कम्पनी के सिविल सर्वेयर को अंग्रेजी शिक्षा देने के लिए कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज (१८०१) की स्थापना उल्लेखनीय घटनाएं हैं। फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यापकों से देशभाषा में पाठ्यपुस्तकें, कोश और व्याकरण तैयार करने का काम भी लिया गया। इस कॉलेज की मुख्य देन यह है कि इसके द्वारा भारतीय भाषाओं में गद्य लेखन को प्रोत्साहन मिला। कलकत्ता मदरसा और बनारस संस्कृत कॉलेज की स्थापना से अंग्रेज विद्वान् प्राच्य भाषा में अभिरुचि लेने लगे। सन् १८२३ में कम्पनी ने लोक-शिक्षा के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिए कलकता में एक शिक्षा समिति संघटित की। इस समिति के सदस्यों में कुछ तो प्राच्य भाषाओं के समर्थक थे और कुछ अंग्रेजी शिक्षा के। प्रथम वर्ग के श्री एच. एच. विल्सन प्रमुक्ति के प्रयत्न से कलकत्ता के मदरसे और बनारस के संस्कृत कॉलेज का पुनर्गठन किया गया और १८२४ ई. में कलकत्ता एजुकेशन प्रेस की स्थापना हुई। इस प्रेस से संस्कृत और अरबी की पुस्तकें छपने लगी। दूसरी ओर राजा राममोहन राय ने यह मत व्यक्त किया कि व्याकरण की बारीकियों और वेदान्त, मीमांसा तथा न्याय को कण्ठस्थ करने में नवयुवकों के एक दर्जन वर्ष नष्ट करना उचित नहीं है। इससे वे समाज के अच्छे सदस्य नहीं बन सकते। इन विषयों के स्थान पर उन्हें प्राकृतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, गणित आदि की उपयोगी शिक्षा देनी चाहिए। सन् १८३४ में जब मैकाले भारत पहुंचा, तो प्राच्य शिक्षा के विरोधियों को काफी बल मिला।

मैकाले संस्कृत कॉलेज और अरबी-फारसी मदरसों के विरुद्ध था। उसका सुझाव था कि इनको बन्द कर दिया जाये। अंगरेजी भाषा की प्रशंसा में उसने लिखा है: "हमारी भाषा पश्चिमी भाषाओं में सर्वोत्तम है। जिसे इस भाषा का ज्ञान प्राप्त है, उसे संसार के अपार ज्ञान भंडार की उपलब्धि हो सकती है। बहुत कुछ सम्भावना है कि यह पूर्व के समुद्रों की वाणिज्य-भाषा बन जाये।" लार्ड बेटिक ने मैकाले का प्रतिवेदन स्वीकार कर लिया, पर संस्कृत और अरबी-

फारसी को दिये जानेवाले अनुदान बन्द नहीं किये। फिर भी, प्राच्य विद्या के विद्यार्थियों को जो छात्रवृत्ति मिलती थी वह समाप्त कर दी गयी और संस्कृत-अरबी-फारसी की पुस्तकों का छपना रोक दिया गया। ऑकलैंड को यह स्थिति स्वीकार्य नहीं हुई। उसने संस्कृत-अरबी-फारसी का छपना जारी कर दिया, पर अंगरेजी शिक्षा की संस्तुति उसे ज्यों-की-त्यों मान्य थी। इस समय दो प्रश्न प्रमुख रूप से सामने आये - शिक्षा का माध्यम क्या हो और जनता में शिक्षा का प्रचार-प्रसार कैसे हो? ये दोनों प्रश्न देश की संस्कृति, राजनीति और समाज के साथ व्यापक रूप से जुड़े हुए थे। शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में तीन विकल्प थे-पहला, यह कि माध्यमिक शिक्षा और विश्वविद्यालय की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो; दूसरा, यह कि संस्कृत अथवा अरबी-फारसी हो और तीसरा यह कि बोलचाल की भाषा (बंगला हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू आदि) हो। चार्ल्स ग्रांट पहले मत के समर्थक थे, मैकाले ने बोलचाल की भाषा को माध्यम के रूप में असमर्थ घोषित किया, पर संस्कृत-अरबी के विषय में उसने जो कुछ कहा उससे उसका अज्ञान प्रकट होता है। जो भी हो, अंग्रेजी भाषा माध्यम के रूप में स्वीकार कर ली गयी।

बोलचाल की भाषा को शिक्षा का माध्यम स्वीकार न करने का निर्णय अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण था। प्रायः दलील दी जाती है कि अंगरेजी शिक्षा के फलस्वरूप देश में एकता की भावना पैदा हुई और जीवन की समस्याओं के सम्बन्ध में लोगों ने एक ढंग से सोचना आरम्भ किया। राष्ट्रीय आकांक्षाओं को जाग्रत करने में इसे बहुत श्रेय दिया जाता है। प्रश्न यह है कि देशी भाषाओं के माध्यम से शिक्षा देने से क्या इन उद्देश्यों की पूर्ति न होती? वस्तुतः यदि अंग्रेज अधिकारियों ने देशी भाषा का माध्यम अपनाया होता. तो राष्ट्रीयता की भावना और भी जल्दी उत्पन्न होती। शिक्षा के इतना अधिक फैल जाने पर भी इस देश का आधुनिकीकरण नहीं हो पाया। अधिकांश लोग आज भी निरक्षर है। पर उस समय इस शिक्षा के माध्यम से जिस बौद्धिक मध्य-वर्ग का उदय हुआ उसके आदर्श ऊंचे थे। आगे चलकर उन्होंने इसका उपयोग राष्ट्रीय सांस्कृतिक विचारों के प्रसार में किया।

सन् १८५३ ई. में कम्पनी के आज्ञापत्र का नवीनीकरण होनेवाला था। ब्रिटिश संसद ने भारत में स्थायी शिक्षा-नीति निर्धारित करने के उद्देश्य से एक संसदीय समिति बना दी। इस सन १८५४ में वुड घोषणा-पत्र प्रकाशित हुआ। कुछ लोगों का कहना है कि इस घोषणा-पत्र को जॉन स्टुअर्ट मिल ने तैयार किया था। इसके अनुसार जन-समूह को शिक्षित करने का प्रयत्न प्रारम्भ हुआ. विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई और प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा को भी प्रोत्साहन मिला। प्रत्येक प्रान्त में शिक्षा विभाग की स्थापना की गयी, जिससे शिक्षा को एक सामान्य स्तर पर प्रतिष्ठित करने में सुविधा हुई।

अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार आरम्भ में विशेषतः बंगाल में हुआ- उत्तर भारत में लोग इस ओर उन्मुख नहीं हुए। इसका एक कारण यह है कि पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध (आज का उत्तरप्रदेश) को बहुत बाद में ब्रिटिश राज्य में मिलाया गया। कलकत्ता विदेशी व्यापारियों का केन्द्र था, फलतः अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त लोगों को व्यावसायिक फर्मों और प्रशासकीय दफ्तरों में नौकरी पाने की सुविधा थी। बंगाल के बाहर ये सुविधाएं उपलब्ध नहीं थीं। ईसाई मिशनरियों के साथ सम्बद्ध होने के कारण वहां के लोग अंग्रेजी शिक्षा को शंका की दृष्टि से देखते थे। शिक्षा में पिछड़े रहने के कारण उत्तर भारत के सांस्कृतिक विकास में भी गत्यावरोध आया, जिसे दूर करने में समय लगा। नवीन शिक्षा-पद्धति का लेखा-जोखा लगाने पर इसमें कई अन्तर्विरोध

दिखाई पड़ते हैं। सच तो यह है कि अंग्रेजी को अपने दफ्तरों के लिए देशी बाबुओं की आवश्यकता थी, जिससे उनका व्यवसाय और प्रशासन निर्वाध चल सके। ईसाई मिशनरी अंगरेजी शिक्षा के माध्यम से लोगों को ईसाई बनाकर पुण्य लूटने के चक्कर में ये। इस देश के उत्साही व्यक्तियों की दृष्टि में भी सामान्यतः रोजी-रोटी का सवाल ही प्रमुख था। अतः यह कहना कम भ्रान्तिपूर्ण नहीं है कि इस शिक्षा पद्धत्ति के कारण ही राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कौन-सी पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त की थी? कांग्रेस की स्थापना के पूर्व उनकी रचनाओं में देश-काल की अनेक समस्याएं मुखरित हुई हैं। इस शिक्षा प्रणाली के कारण छोटा-सा बुद्धिजीवी मध्यवर्ग जरूर पैदा हुआ, पर अधिकांश लोग निरक्षर रह गये। फिर भी, इससे एक तरह का धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण बना जो मध्यकालीन धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त होने के कारण तर्कसम्मत और इहलौकिक हो सका। वैयक्तिक स्वतन्त्रता इसकी दूसरी उल्लेखनीय देन है। आश्रम धर्मी घेरेवन्दी से बाहर निकलकर व्यक्ति के अपने निर्णय को प्रमुखता मिली। मध्यकालीन धार्मिक कथाओं को विश्वसनीय बनाने और आधुनिक युग की समस्याओं से जोड़ने के मूल में भी यही प्रवृत्ति क्रियाशील थी। यातायात के साधन उन्नीसवीं शताब्दी में दुनिया भर में यातायात के साधनों में परिवर्तन हुआ। भारतवर्ष में भी रेल, बस, स्टीमशिप आदि ने लोगों में राष्ट्रीयता और वैचारिक एकता की भावना भरने में सहायता पहुंचायी। किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास पर ही यातायात का विकास निर्भर करता है। ब्रिटिश काल के पूर्व भारत का आर्थिक ढांचा स्थिर और अविकसनशील था, इसलिए हम बैलगाड़ी के आगे नहीं जा सके। जितना आर्थिक विनिमय हो सकता था. उसके लिए बेलगाड़ी से अधिक की आवश्यकता भी नहीं थी। दूसरी ओर इंग्लैंड की औद्योगिक क्रान्ति के कारण वहां के उद्योगपतियों के सामने यह समस्या आयी कि वे अपने उत्पादन की खपत कहां करें और कारखानों के लिए कच्चा माल कहां से लायें? मला उन्हें भारतवर्ष से अच्छा बाज़ार कहां मिल सकता था ! फलस्वरूप उन्होंने ईस्ट इंडिया कम्पनी की सरकार से भारत में रेलवे की स्थापना और सड़क-निर्माण के लिए अनुरोध किया। लार्ड डलहौजी ने रेल निर्माण योजना के मूल में निहित आर्थिक आवश्यकताओं का उल्लेख स्वयं किया है। आर्थिक लाभ के अतिरिक्त अंगरेजों को व आक्रमणकारियों और आन्तरिक विद्रोहों से अपनी रक्षा के लिए भी गमनागमन की और ध्यान देना पड़ा। रेलवे और अच्छी सड़कों की सहायता से फौजों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचना सुगम हो गया। स्पष्ट है कि इस देश के सांस्कृतिक आर्थिक और राजनीतिक विकास के लिए इसका आयोजन नहीं हुआ, बल्कि अंग्रेजों के अपने स्वार्थ-साधन के लिए ही रेलवे का जाल बिछाया गया और अच्छी सड़के निर्मित हुई। वैसे इसमें सन्देह नहीं कि रेलों और सड़कों ने कृषि को व्यावसायिक बनाने में मदद पहुंचायी, दुनिया सिमटकर कम हो गयी और विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को एक-दूसरे से अल्प समय में सुविधानुसार मिलने का अवसर मिला। छुआछूत भेद-भाव आदि में कमी आयी। अकाल के समय एक स्थान से दूसरे स्थान पर अन्न, वस्त्र आदि भेजने की सुविधा प्राप्त हुई। किताबों, पत्र-पत्रिकाओं आदि को दूर-दूर तक सरलतापूर्वक पहुंचाया जाने लगा। इससे पुराने संकीर्ण विचारों को भंग करने में भी सहायता मिली।

१.६ धार्मिक पृष्ठभूमि

ब्रिटिश राज्य की स्थापना के पूर्व ईसाई मिशन दक्षिण भारत में धर्म-प्रचार के कार्य में लगे हुए थे। प्लासी-युद्ध के बाद सन् १७५८ में डैनिश मिशन कलकत्ता आया, परन्तु उसका क्रिया-

कलाप भी सीमित रहा। १७९३ ई. में मिशनरियों का दूसरा महत्त्वपूर्ण दल कलकत्ता पहुंचा। कैरे और उनके दो सहयोगियों ने, जो उस मिशन से सम्बद्ध थे, नये बंगाल के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। बंगला-गद्य की नीव डालनेवाले लोगों में कैरे भी है। सन १८१३ में कम्पनी ने एक नये चार्टर को स्वीकृत्ति दी, जिसके अनुसार शिक्षा आदि उपयोगी कार्यों के लिए अनुदान देने की व्यवस्था की गयी। इस चार्टर के बाद आनेवाले मिशनरियों में अलेक्जेंडर डफ का कार्य सर्वाधिक उल्लेखनीय है। कम्पनी के अधिकारियों पर डफ का विशेष प्रभाव था। वह धर्म-प्रचार का कार्य अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार द्वारा करना चाहता था। डफ को धर्म-प्रचार में तो सफलता प्रायः नहीं ही मिली, पर इसी बहाने अंग्रेजी शिक्षा देनेवाले बहुत-से स्कूल-कॉलेज खुल गये। ईसाई मिशनरियों के कार्य के पीछे न तो कोई आध्यात्मिक प्रेरणा थी, न अनुग्रह की भावना। वे ईसाई धर्म के प्रचार में लगे हुए थे, जिसके लिए उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों के धर्मों पर निःसंकोच आक्रमण किया उनकी निन्दा की। प्रत्येक स्कूल में ईसाई धर्म की शिक्षा अनिवार्य थी। उनका विश्वास था कि प्रत्येक अध्यापक विज्ञान और गणित पढ़ाते हुए प्रकारान्तर से भारतीय धर्मों को तोड़ने में मदद करता है। पर आंकड़ों से स्पष्ट है कि बहुत कम लोग ईसाई धर्म की श्रेष्ठता से प्रभावित होकर उसमें दीक्षित हुए। जिन लोगों ने उस धर्म को स्वीकार किया उन्हें प्रेरणा देनेवाली वस्तु धर्म की श्रेष्ठता नहीं. अर्थ की श्रेष्ठता थी। फिर भी मिशनरियों के अपने काम ने भी भारतीय भाषाओं को गथ-शैली दी। हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं में गद्य-शैली अत्यन्त आरम्भिक स्थिति में थी। जनता में धर्म के मिशनरियों को उसकी आवश्यकता प्रतीत हुई। कैरे, ब्राउन, नेवलिन, स्किनर, बेले आदि ने भारतीय भाषाओं में बाइबिल का अनुवाद किया। स्कूलों में पढ़ाने के लिए उन्हें पाठ्यपुस्तकें भी लिखनी पड़ी। भारतीय धर्म, पुराण आदि को उन्होंने विवरणात्मक गद्य में प्रस्तुत किया। स्त्री-शिक्षा के प्रसार में भी उनका महत्त्वपूर्ण योग है।

अग्रेजों के साथ-साथ ईसाई मिशनरी भी भारत आए। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक कम्पनी सरकार ने ईसाई धर्म-प्रचारकों का पूरा विरोध किया, किन्तु वेलेजली को नीति बोर १८१३ के बिल्वफ़ोर्स ऐक्ट से पादरियों का उत्साह बढ़ गया। उन्नीसवी शताब्दी के मध्य भाग तक ईसाई धर्म का भारत में काफ़ी प्रचार हो चुका था। हिन्दुओं और मुसलमानों के धर्मों पर उचित अनुचित आक्षेपों के साथ उन्होंने आबकारी से होनेवाली सरकारी कार्य के विरुद्ध आवाज उठाई। ईसाई धर्म में दीक्षित करने के प्रयोजन से वे कभी-कभी दीन-दुःखियों की रुपये पैसे से मदद भी कर देते थे। अफ़ीम का प्रचार करने की प्रथा का भी उन्होंने विरोध किया। लेकिन इतना सब कुछ करते हुए भी पन्द्रहवी शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक पादरियों को बहुत कम सफलता मिल सकी। थोड़े से उच्च श्रेणी और निम्न श्रेणी के लोगों ने ईसाई धर्म की दीक्षा प्राप्त की। पर उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रह्म समाज और आर्य समाज के प्रचार से अनेक हिन्दू-धर्मांव-सम्बी, जो ईसाई या मुसलमान हो गए थे, फिर से हिन्दू-धर्म की गम्भीर छाया के नीचे आ गए। इन दो धार्मिक आन्दोलनों से ईसाई और इस्लाम धर्म में सम्मिलित होने का स्रोत बहुत कुछ बन्द हो गया। हिन्दू धर्म के पुनरुद्धार के लिए चेष्टाएँ होने लगीं। उसके बाद ईसाइयत का प्रचार निम्न श्रेणी के अशिक्षित समुदाय तक ही सीमित रह गया। नव शिक्षा और सामाजिक आन्दोलनों के कारण आत्म-विस्मृत भारतीय जन-समूह को फिर से अपने धर्म का श्रेष्ठत्व मान्य हुआ। लेकिन इतना जरूर मानना पड़ेगा कि ईसाई पादरियों नेअनेक भयंकर और क्रूर धार्मिक प्रथाओं के विरुद्ध आन्दोलन किया और सरकार को उन प्रथाओं के बन्द करने पर मजबूर किया। उनका मतलब हिन्दू धर्म की तीव्र आलोचना कर ईसाई धर्म को श्रेष्ठता प्रतिपादित करना था परन्तु धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न करने की अंग्रेजों की शुरू से ही नीति थी। इसलिए लॉर्ड बेंटिक के काल के अतिरिक्त कम्पनी के राज्य में बहुत-सी धार्मिक

कुप्रथाएं जारी रहीं। सामाजिक और धार्मिक चेतना के फलस्वरूप स्वयं हिन्दुओं में उनके विरुद्ध आन्दोलन शुरू हो गया था। अनेक नव-शिक्षित भारतीय उन कुप्रथाओं को रोकने का प्रयत्न कर रहे थे। सरकार को अच्छा अवसर मिला । तांत्रिक मत की प्रबलता को लिये हुए नर-मांस द्वारा देवी, चण्डिका, चामुण्डा और काली वादि शक्तियों की उपासना बन्द कर दी गई। वंश-वृद्धि की कामना से कभी-कभी हिन्दू लोग अपना प्राणाधिक प्रिय पुत्र तक गंगासागर में फेंक देते थे या उसे देवताओं की बलि चढ़ा देते थे। कन्या को जन्मते ही मार डालते थे। सरकार ने ऐसी ही तृशस रीतियों को रोकने का प्रयत्न किया। स्वयं हिन्दू समाज सुधारों के लिए छटपटाने लगा था। स्थान-स्थान पर सार्वजनिक सभाएँ की जाने लगीं जिनमें सती-दाह, बालहत्या, नर-बलि, बाल-विवाह, विवाह में फ़िजूलखर्च आदि के विरोध में प्रस्ताव स्वीकार किए जाते थे। यहाँ पर यह बता देना आवश्यक है कि सरकार की हस्तक्षेप-नीति केवल दो-चार अमानुषी प्रथाओं तक ही बरती जाती थी। गम्भीर धार्मिक विषयों में वह उदासीनता ग्रहण किए रही। इस नवजात चेतना के कारण हिन्दू धर्म की उन्नति और उसमें विश्व-श्रेष्ठ आत्म-गरिमा को पुनर्जीवित करने के लिए अनेक महान् व्यक्ति अपना जीवन उत्सर्ग करने लगे । (संदर्भ – हिन्दी साहित्य का इतिहास – लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय)

१.७ सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

नयी स्थिति, नवीन परिस्थिति और परिवेश के कारण साहित्य, संगीत और कला को भी संकट का सामना करना पड़ा। उनको आश्रय देनेवाले केन्द्र तेजी से टूटने लगे थे। कला और संगीत का विशेद घरानों से सम्बन्ध हुआ करता था। ये घराने इनकी स्वरूप-रक्षा में पीढ़ी-दर-पीढ़ी संलग्न रहा करते थे; और इन घरानों के संरक्षण का दायित्व सामन्त वर्ग पर था। मध्यकाल में भक्त कवियों के अतिरिक्त अकबर, जहांगीर, मानसिंह तोमर आदि ने संगीत को प्रश्रय दिया। उनके दरबारों में अनेक कलावन्त रहते थे। तानसेन अकबरी दरबार का संगीतज्ञ था। मानसिंह ने गूजरी टोड़ी, मंगल गूजरी, ध्रुपद आदि का आविष्कार किया। मुगल सल्तनत के समाप्त होने पर संगीत की मौलिकता समाप्त हो गयी। वह छोटे-मोटे सामन्तों के आश्रय में किसी प्रकार सांस लेता रहा। जो कुछ शेष था, वह पाश्चात्य संस्कृति की आंधी में समाप्त हो गया। पर भारतीय पुनर्जागरण के फलस्वरूप रवि बाबू ने नये संगीत की कल्पना की, जिसमें पूर्व और पश्चिम के स्वरों का मिश्रण था। इसे रवीन्द्र-संगीत की संज्ञा दी गयी। सन् १९१९ में अखिल भारतीय संगीत-परिषद की स्थापना हुई। अब भारतीय संगीत के पुनरुद्धार का कार्य आरम्भ हुआ, जिसमें सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान विष्णुनारायण मातखण्डे का है। आधुनिक काल में कुछ दिनों तक भारतीय चित्रकला पश्चिम का अनुकरण करती रही। पर पश्चिम के ढंग के जिन तेल-चित्रों का निर्माण किया गया. वे अपनी अभिव्यक्ति में मध्यकालीन थे। दावनकार के राजा रवि वर्मा के चित्रों की विषयवस्तु पौराणिक और धार्मिक थी। उनके चित्रों की रूपरेखा सुनिर्मित वर्णयोजनापरक और आकर्षक थी। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' में रवि वर्मा के अनेक चित्रों को प्रकाशित किया। सन् १८५४ में कलकत्ता-आर्ट स्कूल की स्थापना के साथ ही भारतीय चित्रकला में नया मोड़ आया। ई. बी. हेबेल इसके अध्यक्ष थे। आगे चलकर हेबेल, अवनीन्द्रनाथ ठाकुर तथा आनन्दकुमार स्वामी ने भारतीय चित्र-शैली को नया रूप दिया, जो मूलतः इस देश की होती हुई भी आधुनिक जीवन-दृष्टि से अनुप्राणित थी। सन् १९०७ में गगनेन्द्रनाथ ठाकुर ने इंडियन सोसाइटी ऑफ ओरिएंटल आर्ट्स की स्थापना की। इन प्रयत्नों का फल यह हुआ कि भारतीय चित्र-शैली का एक स्वतन्त्र रूप निर्मित हुआ। चित्र-शैली में भी बंगाल ने पहल की और अपनी चित्र-परम्परा को नये सन्दर्भों में पुनः जीवित करने का प्रयत्न किया। भारतीय नवजागरण की अभिव्यक्ति चित्रों के माध्यम से भी हुई।

नवजागरण का सबसे अधिक प्रभाव बंगला-साहित्य पर पड़ा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में लिखा है, "संवत् १९९२ में वे (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र) अपने परिवार के साथ जगन्नाथ जी गये। उसी यात्रा में उनका परिचय बंगदेश की नवीन साहित्यिक प्रगति से हुआ। उन्होंने बंगाल में नये ढंग के सामाजिक, देश-देशान्तर सम्बन्धी ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक, उपन्यास आदि देखे और हिन्दी में वैसी पुस्तकों के अभाव का अनुभव किया।" सम्भव है, भारतेन्दु / बंगला-साहित्य से अनुप्रेरित हुए हों; किन्तु दूसरे साहित्य के आदर्श पर अपने वास्तविक साहित्य का निर्माण नहीं होता। अपने युग की संवेदनाओं को आत्मसात् करके ही भारतेन्दु ने नये ढंग की साहित्य-रचना का समारम्भ किया।

नयी आर्थिक व्यवस्था, पाश्चात्य शिक्षा और नवागत जीवन-पद्धति के कारण इस देश की अपनी पहचान खो गयी थी। पर इस अवरोध ने ही यहां के प्रबुद्ध वर्ग को नये सिरे से अपनी पहचान करने के लिए बाध्य किया। यह पहचान नवीन और प्राचीन के अन्तर्विरोध में की गयी। इसे दूसरे शब्दों में पश्चिमीकरण और भारतीयकरण का विरोध भी कहा जा सकता है। इन दोनों की रस्साकशी काफी दिनों तक चलती रही। अन्ततः नवजागरण के अग्रदूतों ने पश्चिमीकरण के विवेकसम्मत परिवेश में अपनी संस्कृति को नये ढंग से संघटित करने का प्रयास किया। इसके फलस्वरूप साहित्यकारों ने अतीत को सामने रखकर अपने को पुनः गौरवान्वित अनुभव किया और देश में उभरती हुई राष्ट्रीय चेतना को ठोस रूप दिया। आधुनिक काल का अधिकांश साहित्य अपने को पहचानने तथा पाश्चात्य बन्धनों से छुटकारा पाने का इतिहास है। अतीत के गौरव को इस देश की सभी भाषाओं में अभिव्यक्त किया गया। इस गौरव के मूल में पुनरुत्थानवाद (रिवाइवलिज्म) न होकर नवीन जागरण ही क्रियाशील था। यदि कहीं पर इस पुनरुत्थानवाद की ध्वनि सुनाई भी पड़ी तो कालान्तर में समाप्त हो गयी। राष्ट्रीयता इस काल का दूसरा प्रमुख स्वर था। सन् १९४७ तक इसमें कहीं भी शिथिलता नहीं दिखाई पड़ती। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् यह स्वर आत्मालोचन में बदल गया, किन्तु सन् १९६० के आसपास आधुनिकता का जो प्रभाव हिन्दी साहित्य पर पड़ा उससे साहित्यिक प्रगति की दिशा बदल गयी।

साहित्य मनुष्य के बृहत्तर सुख-दुःख के साथ पहली बार जुड़ा। यह प्रक्रिया भारतेन्दु के समय में हुई - वह भी गद्य के माध्यम से। आधुनिक जीवन-चेतना की चिनगारियां जैसी गय में दिखाई पड़ीं, वैसी पथ में नहीं। नया युग अपनी अभिव्यक्ति के लिए नयी भाषा की खोज कर रहा था। ब्रजभाषा इसके लिए उपयुक्त नहीं थी। इसलिए आधुनिक काल में ब्रजभाषा-काव्य के माध्यम से पुरानी संवेदनाएं ही अभिव्यक्ति पाती रहीं। खड़ीबोली-गय आधुनिक चेतना के फलस्वरूप ही सक्षम बन पड़ा।

१.८ सारांश

उक्त इकाई के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी आधुनिक हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि से परिचित हुए और निम्नलिखित मुद्दों से अवगत हुए ।

राजनीतिक,सामाजिक,आर्थिक,शैक्षिक,धार्मिक,संस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे ।।

१.९ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. आधुनिक काल हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि को समझाइए।

२. आधुनिक कालीन धार्मिक और सांस्कृतिक परिवेश का विवरण दीजिए।

३. आधुनिक कालीन राजनीतिक परिवेश को विस्तार से समझाइए।

४. आधुनिक कालीन शैक्षिक पृष्ठभूमि का वर्णन कीजिए।

१.१० लघुत्तरी प्रश्न

१. हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का आरम्भ कब हुआ?

उत्तर - हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का आरम्भ सन् १८५७ में हुआ।

२. सन् १८२८ में ब्रह्म समाज की स्थापना किसके द्वारा हुई।

उत्तर - सन् १८२८ में ब्रह्म समाज की स्थापना राजाराम मोहन राय ने की।

३. थियॉसॉफिकल सोसाइटी की स्थापना कहाँ व किसके द्वारा हुई ?

उत्तर - थियॉसॉफिकल सोसाइटी की स्थापना सन् १८७५ में मदाम ब्लावस्तू और ओल्कार्ट द्वारा न्यूयार्क में हुई थी।

४. कौनसा अंग्रेजी शासक संस्कृत कॉलेज और अरबी-फारसी मदरसों के विरुद्ध था।

उत्तर - अंग्रेजी शासक मैकाले संस्कृत कॉलेज और अरबी-फारसी मदरसों के विरुद्ध था।

५. डैनिश मिशन कलकत्ता कब आया।

उत्तर - प्लासी-युद्ध के बाद सन् १७५८ में डैनिश मिशन कलकत्ता आया।

१.११ संदर्भ ग्रन्थ

१. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र

२. हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

३. हिंदी साहित्य उद्भव और विकास – हजारी प्रसाद द्विवेदी

४. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – डॉ. रामकुमार वर्मा

५. हिंदी साहित्य की प्रव्रत्तियां – डॉ. जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल

६. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास – बच्चन सिंह

❄❄❄❄❄❄❄

२

आधुनिक काल : अवधारणा एवं स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

२.० इकाई का उद्देश्य

२.१ प्रस्तावना

२.२ आधुनिक काल : अवधारणा एवं स्वरूप

२.३ सारांश

२.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

२.५ लघुत्तरी प्रश्न

२.६ संदर्भ ग्रन्थ

२.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के उपरांत विद्यार्थी :

हिंदी साहित्य के आधुनिककाल की अवधारणा एवं स्वरूप को विस्तार से समझ सकेंगे।

२.१ प्रस्तावना

भारतीय इतिहास का आधुनिक कालं १९ वीं शताब्दी से प्रारंभ होता है। जिस प्रकार भक्ति-आन्दोलन सारे देश में एक साथ नहीं फैला उसी प्रकार नवजागरण भी देश के किसी अंचल में पहले आया और किसी अंचल में बाद में। सबसे पहले उसका अरुणोदय बंगाल के क्षितिज पर हुआ। एस. सी. सरकार के अनुसार सन् १७५७ में बंगाल में आधुनिक काल का उदय और मध्य काल का अन्त होता है। इसी वर्ष प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों की विजय और बंगाल के नवाब की पराजय होती है। यद्यपि अभी बंगाल को अंग्रेजी राज्य में मिलाया नहीं गया था किन्तु उस पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। सन् १८१८ में महाराष्ट्र अंग्रेजों के अधीन हो गया। वहाँ भी आधुनिक काल का प्रारंभ इसी समय से माना जाता है। सन् १८५६ में अवध भी अंग्रेजी राज्य का अंग बन गया (सन् १८५७ में प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम का बिगुल बजा। हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र विशेषतः उत्तरप्रदेश में इसी वर्ष से आधुनिक काल का समारंभ माना जाता है) यानी बंगाल के आधुनिक काल से सौ वर्ष बाद। इससे ध्वनित होता है कि आधुनिक काल ले आने का श्रेय अंग्रेजी उपनिवेशवाद को हो है जिस तरह भक्ति आन्दोलन के बारे में प्रश्न उठाया जाता है कि यदि मुसलमान न आए होते तो भक्ति आन्दोलन की लहर न उठती, उसी प्रकार कहा जाता है, यदि अंग्रेज न आए होते तो आधुनिक काल न आता। ऐतिहासिक प्रक्रिया के तहत उसे आना ही था। किन्तु अंग्रेजी उपनिवेश ने इस प्रक्रिया को तेज कर दिया। अनजाने ही सही, नये परिवर्तन का श्रेय उसी को दिया जाता है।

'आधुनिक' शब्द काल वाचक 'अधुना अव्यय से बना है। 'अधुना' का अर्थ है इस समय, 'सम्प्रति, वर्तमान काल'। अतः 'आधुनिक' का अर्थ है. इस समय का', 'हाल का', नया, 'वर्तमान समय का। इस दृष्टि से तो हम केवल अपने सामने उपस्थित समय को ही 'आधुनिक काल' और अपने सामने रचित साहित्य को ही 'आधुनिक साहित्य' कह सकते हैं। तर्क-दृष्टि से यह ठीक भी है। किंतु जब हम हिंदी साहित्य के लम्बे इतिहास को देखते हैं तो पाते हैं कि आदिकाल से रीतिकाल की समाप्ति तक आते-आते पाश्चात्य प्रभाव और बाद में पाश्चात्य आक्रान्ताओं द्वारा भारत पर अधिकार कर लिए जाने से पैदा हुई बिल्कुल नई, बदलती हुई, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों का हिंदी साहित्य पर गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ा। हिंदी साहित्य को नई-नई दिशाएं, नए-नए रूप और नए आयाम प्राप्त हुए। हिंदी साहित्य में ही नहीं, समूचे भारत की प्रमुख भाषाओं के साहित्य में परिवर्तन और नवीनता के लक्षण १९वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में ही दिखाई देने लगे थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने १९९० ई. (सन् १८४३) से हिंदी साहित्य की आधुनिक काल का आरंभ माना है। (संदर्भ – हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास – बच्चन सिंह)

वास्तव में 'आधुनिक' शब्द सापेक्षिक है। आज जो 'आधुनिक' है, वही सौ दो सौ वर्ष के कालांतर में पुराना हो जाएगा। किंतु साहित्येतिहास के कालों के अनुक्रम में अंतिम काल खंड को सदा ही 'आधुनिक काल' कहा जाता है, और जब तक किसी नए मोड़ या परिवर्तन का आभास नहीं होता, वह इसी नाम से पुकारा जाता है।

'आधुनिक' शब्द जहाँ काल सापेक्षता को व्यक्त करता है, वहीं यह नवीनता, वैज्ञानिक-दृष्टि, बौद्धिकता और तर्क-वितर्क की प्रवृत्ति का भी सूचक है। आज जीवन और साहित्य में 'आधुनिकता से यही तात्पर्य है।

'आधुनिक' शब्द दो वर्षों- मध्यकाल से भिन्नता और नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण की सूचना देता है। मध्यकाल अपने अवरोध, जड़ता और रूढ़िवादिता के कारण स्थिर और एकरस हो चुका था, एक विशिष्ट ऐतिहासिक प्रक्रिया ने उसे पुनः गत्यात्मक बनाया। मध्यकालीन जड़ता और आधुनिक गत्यात्मकता को साहित्य और कला के माध्यम से समझा जा सकता है। रीतिकाल में कला और साहित्य अपने-अपने कथ्य, अलंकृत्ति और शैली में एकरूप हो गये थे। वे घोर श्रृंगारिकता के बंध घाटों से बह रहे थे। न छन्दों में वैविध्य था और न विन्यास (डिक्शन) में - एक ही प्रकार के छन्द, एक ही प्रकार के ढंग। आधुनिक काल में बंधे हुए घाट टूट गये और जीवन की धारा विविध स्रोतों में फूट निकली। साहित्य मनुष्य के बृहत्तर सुख-दुःख के साथ पहली बार जुड़ा। (हिन्दी साहित्य का इतिहास – सम्पादन – डॉ नगेन्द्र)

'आधुनिक' शब्द से जो दूसरा अर्थ ध्वनित होता है, वह है- इहलौकिक दृष्टिकोण। धर्म, दर्शन, साहित्य, चित्र आदि सभी के प्रति नये दृष्टिकोण का आविर्भाव हुआ। मध्यकाल में पारलौकिक दृष्टि से मनुष्य इतना अधिक आच्छन्न था कि उसे अपने परिवेश की सुध ही नहीं थी, पर आधुनिक युग में वह अपने पर्यावरण के प्रति अधिक सतर्क हो गया। आधुनिक युग की पीठिका के रूप में इस देश में जिन वार्शनिक चिन्तकों और धार्मिक व्याख्याताओं का आविर्भाव हुआ उनकी मूल चिन्ताधारा इहलौकिक ही है। सुधार, परिष्कार और अतीत का पुनराख्यान नवीन दृष्टिकोण की देन हैं। आधुनिक युग की ऐतिहासिक प्रक्रिया का ही परिणाम है कि साहित्य की भाषा ही बदल गयी- ब्रजभाषा की जगह खड़ीबोली ने ले ली।

साहित्य के इतिहास में काल का सीमांकन सबसे अधिक जटिल समस्या है। किसी कालखण्ड का आरम्भ किस समय से होता है, इसे वैज्ञानिक सत्य के रूप में नहीं बताया जा सकता। एक कालखण्ड दूसरे कालखण्ड से अपने बदलाव के कारण अलग होता है। बदलाव की प्रक्रिया तो अरसे से चलती रहती है, पर नये कालखण्ड का निर्धारण तब होता है जब बदलाव के चित्र हमारी आर्थिक-सांस्कृतिक स्थितियों, काल-रूपों तथा भाषा में स्पष्टतः दिखाई देने लगते हैं। इसलिए साहित्येतिहास के लेखन में जो काल-निर्धारण किया जायेगा, वह लचीला होगा। हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल के विकास का क्रम एक शताब्दी पहले से ही प्रारम्भ हो गया था- बदलाव के स्पष्ट चिह्न उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में दिखाई पड़ने लगे थे। संयोग है कि हिन्दी-साहित्य में आधुनिक जीवन-बोध के प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म उन्नीसवीं शती के ठीक मध्य में सन् १८५० में हुआ। अतः इतिहास-लेखकों ने इस वर्ष को ही आधुनिक हिन्दी साहित्य के आरम्भ का वर्ष मान लिया। किन्तु इतिहास की गतिमानता या बदलाव में यह वर्ष स्वयं किसी तरह की भूमिका नहीं अदा करता। इतिहास के काल-विभाजन की रेखा कम-से-कम दो विभिन्न प्रवृत्तियों को स्पष्टतः अलग करनेवाली तथा इस अलगाव के लिए स्वयं भी बहुत कुछ उत्तरदायी होनी चाहिए। यदि सन् १८५७ को आधुनिक काल का प्रारम्भिक बिन्दु मान लिया जाये, तो उपर्युक्त दोनों शर्तें पूरी हो जाती है। सन् सत्तावन दो विरोधी ताकतों की टकराहट का काल था- सामन्तवादी और पूंजीवादी। सामन्तवादी शक्तियां अपनी सारी ताकत लगाकर सदा के लिए समाप्त हो गयीं। सामन्तवाद की सम्पूर्ण सम्भावनाएं खत्म होने के बाद देश के प्रबुद्ध वर्ग ने नये सिरे से सोचना शुरू किया और अंग्रेज शासकों ने भी इस देश की परम्परा को समझकर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का नवीनीकरण किया।

एक समय तक इहलौकिक होकर यह आधुनिक दृष्टि प्रगतिशील बनी रही। प्रत्येक देश में पुनर्जागरण (रेनासा) आया, बहुत-से परतन्त्र देश स्वतन्त्र हुए, 'अपने-अपने सपने' लेकर उन्होंने अपने-अपने ढंग की सरकारें बनायीं। एक बिन्दु पर खड़े होकर मनुष्य ने पाया कि जिस औद्योगीकरण और प्रविधीकरण के सहारे उसने परी-देश का सपना देखा था। वह साकार नहीं हो सका। सरकार स्थिर व्यवस्था में बदल गयीं। लोकतन्त्र तथा साम्यवादी सरकारें समान रूप से निराशाजनक सिद्ध हुई। व्यक्ति या तो व्यवस्था का पुर्जा हो गया या प्रविधि का। उसका अपना व्यक्तित्व और पहचान खो गयी। इस खोये हुए व्यक्तित्व की खोज-प्रक्रिया का नाम 'आधुनिकता' है। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और टेक्नॉलॉजी के फलस्वरूप उत्पन्न मानवीय स्थितियों का नया, गैर-रोमैंटिक और अमिथकीय साक्षात्कार 'आधुनिकता' है। "आधुनिकता' का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है कि उसके ऐतिहासिक सन्दर्भ और प्रवृत्ति को समक्ष लिया जाये। आधुनिक काल अपने ज्ञान-विज्ञान और प्रविधियों के कारण मध्यकाल से अलग हुआ। यह काल औद्योगीकरण, नगरीकरण और बौद्धिकता से सम्बद्ध है; जिससे नवीन आशाएं उभरी और भविष्य का नया स्वप्न देखा जाने लगा। देश, धर्म, राष्ट्र, ईश्वर आदि की नयी-नयी व्याख्याएं की जाने लगीं।

आधुनिक ज्ञान-विज्ञान ने मनुष्य को बहुत कुछ बुद्धि-सम्मत बना दिया था। नीत्शे की इस घोषणा से कि 'ईश्वर मर गया', बौद्धिक जगत् में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। यथार्थ का स्वरूप ही बदल गया। पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, अच्छे-बुरे की जो कसौटियां धर्म-ग्रन्थों में निर्धारित की गयी थीं. उनकी प्रामाणिकता समाप्त हो गयी, पुराने मूल्य विघटित हो गये। मनुष्य ने पाया कि वर्तमान परिस्थिति (सिचुएशन) में वह असहाय, क्षुद्र और निरर्थक प्राणी है। विज्ञान

की प्रगति ने भी निश्चयतावादी सिद्धान्त को खोखला सिद्ध कर दिया। क्वांटम सिद्धान्त और सापेक्षतावाद से सिद्ध हो गया कि न तो कोई सार्वभौम सत्य होता है और न शाश्वत नैतिकता। अणुओं की सत्ता के असिद्ध हो जाने के बाद अणु शक्ति (एनर्जी) में बदल जाता है और शक्ति अणु में। निश्चयात्मकता की समाप्ति की अन्तिम घोषणा हो गयी। अस्तित्ववादी दर्शन ने इस पर अपनी मुहर लगाकर इसे और भी पुष्ट कर दिया।

अस्तित्ववादी दर्शन ने अपने पूर्ववर्ती दर्शन और विज्ञान की अमूर्तता पर आक्रमण किया। उसने अपने को ठोस अनुभवों तथा प्रत्येक व्यक्ति के बुनियादी सवालों के साथ जोड़ा। ये बुनियादी सवाल हैं- व्यक्ति की व्यग्रता, दुःख, निराशा, अकेलापन, मृत्यु-बोध, स्वतन्त्रता, त्रास आदि। इसके साथ ही वह सामूहिकतावाद और निश्चयवाद के विरूद्ध भी बड़ा हुआ। वह उन समस्त विचारों के विरुद्ध है जो व्यक्ति को अ-मनुष्य और अस्तित्वहीन बनाते हैं। उसकी दृष्टि में मनुष्य स्वतन्त्र है- वह न वस्तु है, न मशीन है; वह क्रियात्मक शक्ति है। वह स्वतन्त्र निर्णय लेने में समर्थ है और इसके लिए खुद ज़िम्मेदार है। कीर्केगार्ड, सात्र आदि के अस्तित्ववादी विचारों का प्रभाव आधुनिक पश्चिमी साहित्य पर खूब पड़ा है।

आधुनिकता का यह बोध एक वास्तविकता है, जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। हमारे देश में इस बोध को ले आने की बहुत कुछ ज़िम्मेदारी हमारे भ्रष्टाचारी लोकतन्त्र की भी है। पर आठवें दशक के आरम्भ में हमारे साहित्यकारों में भी इससे छुटकारा पाने की बेचैनी दिखाई पड़ने लगी है। यों कामू और सार्ज ने भी अलग-अलग ढंग से व्यर्थता से उबरने की, परिस्थितिजन्य बाधाओं में कर्म करने की चेतना उत्पन्न की है। सार्ज का अस्तित्ववाद कर्म का ही दर्शन है। किन्तु, सार्च और कामू का दर्शन हमें सचेत कर सकता है, अपनी दृष्टि नहीं दे सकता। बदलाव, संघर्ष और अर्थान्वेषण के लिए हमें स्वयं अपनी राह बनानी होगी। सार्च मार्क्सवाद का समर्थक होते हुए भी व्यक्तिवादी भी है। उसका अपना अस्तित्ववाद फ्रांसीसी परम्परा से सर्वथा अलग नहीं है। अतः हमारे भावी जीवन, चिन्तन, कला, साहित्य आदि का भविष्य दो बातों पर निर्भर दिखाई दे रहा है- एक तो अर्थहीनता की स्वीकृति पर और दूसरे, उसके भीतर से गुज़रते हुए अपने से सन्दर्भित अर्थान्वेषण की प्रक्रिया पर।

साहित्य के इतिहास लेखकों ने हिंदी साहित्य के इतिहास के उस काल को आधुनिक काल कहा है, जिसमें हमारे देश का संपर्क पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति, भाषा, धर्म, जीवन पद्धति, राजनीति, शासन व्यवस्था, विज्ञान आदि से हुआ। भारत में हजारों वर्षों से अनेक जाति और धर्मों के लोग आते रहे हैं। उनके कारण भारत के मूलभूत स्वरूप में कोई विशेष अंतर नहीं आया। किंतु विगत दो सौ वर्षों में भौतिक विज्ञान की शक्ति लेकर यूरोप से जो जातियाँ पहले व्यापार के उद्देश्य से इस देश में आई और फिर अपनी कूटनीति और छलबल से इस देश को आक्रान्त कर लिया, उनके संपर्क का बहुत गहरा और व्यापक प्रभाव इस देश पर पड़ा। लगभग दो सौ वर्षों के ब्रिटिश शासन ने भारतवर्ष में परिवर्तन के ऐसे दृश्य उपस्थित कर दिए, जिनकी कल्पना भी पहले कभी नहीं की गई थी। भारत के लिए वह एक अभूतपूर्व, नया अनुभव था। अपनी अत्यंत प्राचीन और विशेष प्रकार की पौरास्त्य (पूर्वीय) सभ्यता, संस्कृति, धर्म, भाषा, जीवन पद्धति के सामने उसने एक नितांत भिन्न जीवन मूल्यों वाली सभ्यता-संस्कृति, भाषा और भौतिक विज्ञान की शक्ति को चुनौती के रूप में खड़ा पाया। हिंदी जगत ने इन नई परिस्थितियों को देखा, समझा, संघर्ष भी किया और उनसे समझौते का मार्ग भी अपनाया। संवेदनशील, साहसी, दूरदर्शी और प्रतिभाषाली भारतीय चिंतकों एवं साहित्यकारों ने अनेक

सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आंदोलनों द्वारा आधुनिक भारत एवं आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। परंतु यहाँ इन आंदोलनकारी परिस्थितियों के अध्ययन से पूर्व आधुनिक युग के स्वरूप और स्थिति पर भी थोडी जानकारी हासिल कर लेना अनुचित न होगा।

'आधुनिक' शब्द समय सापेक्ष है और इसकी चर्चा पहले भी की गई है। क्या आज का आधुनिक सदैव आधुनिक रह सकता है? संभवतः दो सौ वर्ष बाद यह आधुनिक न रहे। इस अर्थ-सीमा को किसी भी संदर्भ अथवा परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। साहित्य के संदर्भ में तथा इतिहास के संदर्भ में इसे दो अर्थों में समझा जा सकता है। एक तो आदिकाल तथा मध्यकाल (पूर्व-मध्यकाल एवं उत्तर मध्यकाल) से भिन्न नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण की सूचना देने वाली सभी गतिविधियों के परिप्रेक्ष्य में और दूसरे लौकिक, सामाजिक एवं सांसारिक दृष्टिकोण के बदलते, संवरते और निखरते स्वास्थ्य, परिवेश तथा वातावरण के परिप्रेक्ष्य में।

आदिकालीन साहित्य में श्रृंगार, वीर, भक्ति, नीति तथा लौकिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ प्रधान रहीं तो भक्ति काल में भक्ति के निर्गुण और सगुण पक्षों का वर्णन विवेचन होता रहा। रीतिकाल में श्रृंगारिकता, ऊहात्मकता, रूढ़िवादिता तथा शास्त्रीयता से समृद्ध एक विशेष प्रकार के साहित्य ने एकरसता और अरुचि पैदा कर दी। इन तीन युगों की यात्रा का परिवर्तित सवर्द्धित स्वरूप तब सामने आया जब नवीन ऐतिहासिक प्रक्रिया प्रारंभ हुई और आधुनिक गत्यात्मकता का संचार होने लगा। यह आधुनिक तथा नवीन दृष्टिकोण कला और साहित्य में भी इसीलिए अभिव्यक्त हुआ क्योंकि इस युग में, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में तथा राजनैतिक एवं धार्मिक परिसर में इसका प्रादुर्भाव हो चुका था। रीतिकाल का श्रृंगारी ढांचे में ढला हुआ साहित्य युगीन सत्य और वास्तविकता का परिचायक तो है किन्तु युगीन अपेक्षाओं, जरूरतों तथा विविधताओं तक वह न पहुँच सका था। मात्र

भाषिक चमत्कार तथा शिल्पगत सौन्दर्य में उलझा रीतिकालीन साहित्य जब बदलते युग और विकसित होती दृष्टि को अपेक्षानुसार दिशा-निर्देश तथा वैचारिक आधार न दे सका तो युगीन घुटन से पैदा हुई छटपटाहट ने जीवन-धारा के नए-नए तथा भिन्न-भिन्न स्रोत खोले। साहित्य मानव जाति के सुख-दुख, आचार-विचार तथा दृष्टिकोण से जुड़ा। परिणामतः एक नई चेतना आई जिसे आधुनिक युग के नाम से जाना गया। यह चेतना जीव, समाज और सामाजिकता के विविध पक्षों में देखी जा सकती है। आधुनिक लेखकों, दार्शनिकों, चिंतकों, विचारकों, धार्मिक व्याख्याताओं ने मानव-चिंतनधारा को शुद्ध मानवीय धरातल पर स्थिर किया। अगली इकाई में आप इसका व्यापक अध्ययन कर सकेंगे। यहाँ साहित्य के संदर्भ में केवल यह स्पष्ट रहे कि आधुनिक युग की विविध साहित्य धाराओं ने सुधार, परिष्कार तथा अतीत के पुनराख्यानों द्वारा एक विशिष्ट नवीनता तथा मौलिकता प्रदान की। भाषिक स्तर पर भी इस नवीनता तथा आधुनिकता के दर्शन होते हैं। डिंगल-पिंगल, मैथिली और अवधी तथा ब्रजभाषा का स्थान इस युग में खड़ी बोली (हिन्दुस्तानी) ने ले लिया। इस आधुनिकता का कारण भी युगीन परिस्थितियों और अपेक्षाएँ ही बनीं।

साहित्य के संदर्भ में हुए परिवर्तनों के लिए जिन कारणभूत-परिस्थितियों की हम चर्चा कर रहे हैं उनका अर्वाचीन अथवा मध्यकालीन परिवेश तथा वातावरण से आधुनिकता की ओर अग्रसर होना भी आधुनिक युग की पृष्ठभूमि में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परिवर्तन

सृष्टि का, प्रकृति का और विकास का नियम है। यही प्रगति का सूचक भी है। परन्तु यह भी असत्य नहीं कि प्रत्येक परिवर्तन प्रगति का सूचक नहीं होता। अतः आधुनिक युग की पृष्ठभूमि में हुए अनेक परिवर्तन आधुनिकता के कारण बने। इन कारणों ने ही इस युग को विगत तीन युगों की चेतना से पूर्णतः भिन्न एवं सामयिक प्रासंगिक चेतना प्रदान की।

रीतिकाल के उत्कर्ष के बाद जिस नए युग का आगमन हो रहा था, उसके संकेत अंग्रेजों की नई आर्थिक नीति, औद्योगिक क्रांति संचार-व्यवस्था तथा मुद्रणालयों को प्रचार-प्रसार से मिलने लगते हैं। एकरसता और स्थिरता से निकलकर देश अब गत्यात्मकता का अनुभय करने लगा था। परम्पराएँ टूटने लगीं थीं तथा रूढ़ियों का विरोध पनपने लगा था। सामाजिक जीवन-शैली में नवीनता दिखाई देनी लगी थी। इन बदलती परिस्थितियों ने ही पुनर्जागरण को जन्म दिया था।

धर्म अब आकांक्षाओं के दायरे से निकल कर इहलौकिक आकांक्षाओं का वाहक बन रहा था। अंग्रेज प्रशासकों और इसाई मिशनरियों के आक्रामक रुख के कारण भारतीय धर्म और संस्कृति से सम्बद्ध धर्म सुधारकों ने धर्म को नई परिभाषा तथा नए प्रारूप में ढालना प्रारंभकर दिया था। अंधविश्वासों का स्थान अब तर्क ने तथा वैज्ञानिक दृष्टि ने ले लिया था। परिणामतः धर्म समाज-सुधार से जुड़ता चला गया। पुराणपंथियों और समाज सुधारकों ने अपने मत के प्रचार हेतु धर्मशास्त्रों की शरण ग्रहण की। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा उन्मूलन के लिए धर्मशास्त्रों का सहारा लिया। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने पौराणिक ग्रंथों को प्रमाण बनाकर जन-सामान्य का ध्यानाकर्षण किया। दयानंद सरस्वती ने सामाजिक सुधार के लिए वेदों की गवाही से अपने मतों को पुष्ट एवं स्थापित किया। अतः तर्क और प्रमाण के ये शस्त्र अतीत में गौरव को जगाने में सफल हुए तथा रूढ़ियों-अंधविश्वासों को तर्क की तलवार से काट फेंकने में सहायक हुए। परिणामतः देशवासियों में आत्मविश्वास और आत्मसम्मान जागा। इसी चेतना ने पश्चिमी चुनौती का सामना करने और स्वतंत्रता हासिल करने की माँग को स्वर प्रदान किया। अतः धर्म, सुधार तथा राष्ट्रीयता की दूरी कम होने लगी। लोगों ने परंपरा के अंधेरों का विरोध किया तथा उसके प्रकाश का वरण करने की सोच पैदा की। पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली तथा देश-विदेश के ज्ञान-विज्ञान का परिचय हासिल कर शिक्षार्थियों के बहुमुखी विकास का उद्देश्य अब मुखर होने लगा था।

अतः नए अर्थ-तंत्र, बदलती शिक्षा प्रणाली तथा प्रचार-प्रसार पाते संचार माध्यमों से आधुनिकीकरण का प्रादुर्भाव हुआ। आधुनिकीकरण की इस दृष्टि में वैज्ञानिकता थी, लोक-सम्पूक्ति थी, तर्कसंगत व्यवहार था। परन्तु आधुनिकता के इस प्रभाव-ग्रहण का तात्पर्य यह नहीं कि भारतीयों ने पश्चिमीकरण की प्रक्रिया का अंधानुकरण किया। पश्चिम विचारकों के साथ-साथ मध्यकालीन संतों की वाणियों का सहारा भी इन्होंने लिया। पौराणिक ऐतिहासिक आख्यानों के प्रेरक प्रसंगों के उदाहरण के लिए तो समसामयिक चिंतकों, विचारकों, दार्शनिकों एवं समाज सुधारकों की वैचारिक पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में भी साहित्य को समाज से जोड़ा। छूआछूत, जाति प्रथा तथा स्त्री-पुरुष में भेदभाव का विरोध, समानता, स्वतंत्रता, राष्ट्रीय चेतना, वैज्ञानिकता का ग्रहण तथा नवीन मानवतावाद के आविर्भाव का समर्थन आदि प्रसंगों से आधुनिक युग की इस पृष्ठभूमि को समझा जा सकता है। आर्य समाज, रामकिशन परमहंस मिशन, प्रार्थना समाज, ब्रह्म समाज आदि संस्थाओं के प्रयासों में पुराने धर्म को नए समाज के अनुरूप ढालने की प्रक्रिया को देखा जा सकता है। बहुत से अंतर्विरोधों के बावजूद इन

वैचारिक मान्यताओं के स्रोतों ने जन-सामान्य को एक बौद्धिक एवं तार्किक आधार प्रदान किया। इसकी विस्तृत विवेचना आप अगली इकाई में कर सकेंगे। अतः कह सकते हैं कि हिंदी साहित्य के जिस आधुनिक युग का प्रारंभ सन् १८५७ के आसपास हुआ, उसके आधुनिक बनने की प्रक्रिया तो लगभग एक शताब्दी पूर्व (अर्थात् १७६० के आसपास) प्रारंभ हो चुकी थी। इसकी पृष्ठभूमि बनने वाली विभिन्न परिस्थितियों का विस्तृत विवेचन इसे और स्पष्ट कर सकेगा। किन्तु इससे पूर्व हम 'आधुनिक युग के नामकरण और सीमांकन पर भी थोडा विचार कर लें तो उचित होगा।

हिंदी साहित्य के आधुनिक युग का प्रारंभ कब से माना जाए इस विषय में भी विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। सामान्यतः इसका प्रारंभ संवत् १९०० अर्थात् १८४३ ई. से माना जाता है। कछ विद्वानों ने सन १८५७ से नवीन सामाजिक-राजनीतिक चेतना के प्रादुर्भाव का संदर्भ जोड़ते हुए यहीं से आधुनिक काल का प्रारंभ माना। यों तो बदलाव के स्पष्ट चिह्न भी, जैसा कि पहले कहा भी गया है, उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में स्पष्टतः दिखाई देते हैं। संयोग से आधुनिक हिंदी साहित्य में जीवन बोध के प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म भी उन्नीसवीं शती के मध्य अर्थात् सन् १८५० में ही हुआ था। परन्तु ठीक इसी वर्ष से आधुनिक युग की शुरुआत मान लेना तर्कसंगत नहीं लगता। इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र का मत विचारणीय है- सामान्यतः रीतिकाल के अंत (१८४३) से आधुनिक काल का आरंभ मानने की परम्परा रही है, नवीन सामाजिक-राजनीतिक चेतना के संवहन के फलस्वरूप सन् १८५७ को भी यह गौरव दिया जाता है, किन्तु साहित्य-क्षेत्र में नई विचारधारा का प्रवेश वस्तुतः भारतेन्दु के रचनाकाल (१८८८) से हुआ। इसके पूर्ववर्ती कालखंड (१८४३-१८६८) की गणना आधुनिक काल के अंतर्गत तो होगी, किन्तु उसे भारतेन्दु युग की पूर्वपीठिका के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

आधुनिक भारत की सबसे महत्वपूर्ण घटना वह है जब अंग्रेजों ने अपने व्यापारिक हितों को राजनीतिक हितों में बदल दिया था। इस दृष्टि से सन् १७५७ ई. में हुआ प्लासी का युद्ध तथा सन् १७६४ ई. में हुआ बक्सर का युद्ध बहुत महत्वपूर्ण है। अंग्रेजों ने इन दोनों युद्धों में विजय हासिल करके अपना भावी राजनीतिक मार्ग प्रशस्त किया था। अब उन्हें चुनौती देने वाला कोई शेष न था। यहीं से भारतीय इतिहास के आधुनिक काल का प्रारंभ माना जाने लगा। देश की तदयुगीन परिस्थितियों ने साहित्य और सृजन को रचना और रचनाकार को ऐसे परिवेश में बहुत प्रभावित किया।

अंग्रेजी राज्य के प्रचार-प्रसार, उनकी विविध नीतियों तथा विचार-दृष्टियों ने साहित्य को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया। सन् १८०० ई. में कलकत्ता में स्थापित किए गए फोर्ट विलियम कॉलेज के अंतर्गत भारतीय साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था, पाठ्य पुस्तकों के संपादन, लेखन, प्रकाशन आदि के परिप्रेक्ष्य में इस प्रभाव को सहज ही देखा भी जा सकता है। यह युग गद्य के प्रचार-प्रसार के आधिक्य के कारण गद्य-युग ही कहलाया। साहित्य और भाषा के इतिहास एवं विकास की दृष्टि से भी देखें तो यही प्रमाणित होता है कि गद्य के विकास की यात्रा का श्रीगणेश भी सन् १८०० में स्थापित फोर्ट विलियम कॉजेज से ही होता है। यह ठीक है कि आचार्य शुक्ल ने नामकरण का प्रमुख आधार प्रवृत्ति-विशेष को माना परन्तु आधुनिक काल के संदर्भ में वे भी इसे गद्य भाषा की प्रमुखता के कारण गद्य काल ही कहते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि, आधुनिक चेतना तथा तर्कसंगत वैचारिकता का वहन भी गद्य भाषा ही बखूबी

कर सकती थी। परन्तु इस आधार पर इस काल को 'गद्य काल' कहना उचित नहीं। ऐसा करने से आधुनिक काव्य की दीर्घ परंपरा के साथ अन्याय होगा।

प्रवृत्ति की दृष्टि से देखें जो आधुनिक काल के अधिकांश साहित्य में एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा बौद्धिक घरातल देखने को मिलता है। यही 'आधुनिकता की साहित्य को रीतिकाल से पृथक भी करती है। आधुनिक काल नामकरण की सटीकता और सार्थकता का आभास इस बात से भी मिलता है कि इसके अंतर्गत वे सभी अर्थ छवियाँ विकीर्ण होती जान पड़ती हैं जिनका संबंध पुनर्जागरण, नवीनता, प्रगतिशीलता, वैज्ञानिकता, बौद्धिकता तथा अस्तित्ववादिता आदि प्रवृत्तियों से माना जाता है। आधुनिकता की यही भावना इस युग के साहित्य को मध्यकालीन रूढ़िवादिता, एकरसता श्रृंगारिकता तथा रीतिबद्धता आदि प्रवृत्तियों से अलग भी करती है। अतः जीवनधारा के विविध स्रोतों को बद्ध एवं मुक्त रूप में स्वीकारने तथा अभिव्यक्ति देने वाले इस गत्यात्मक काल को आधुनिक काल ही कहा जाना उचित है। मनुष्य के सुख-दुःखों से, उसके जीवन की खट्टी-मीठी अनुभूतियों से तथा समाज एवं राष्ट्र की परिवर्तनशील स्थितियों से साहित्य को जोड़ने वाला यह काल 'आधुनिक' शब्द की सार्थकता के अनुकूल ही ठहराता है। काव्य या गद्य-विधाओं में अब परलौकिक नहीं लौकिक व्यक्ति, लौकिक समस्याएँ तथा सभी लौकिक संदर्भ समाहित होने लगे। साहित्य, धर्म, दर्शन, चित्र, संगीत तथा अन्य सभी कलाओं में अधुनातन तथा नवीनतम दृष्टिकोण का, वैचारिक क्रांति का तथा वैज्ञानिक पद्धति का आविर्भाव हुआ। ब्रजभाषा और अवधी भाषा का स्थान जन-भाषा खड़ी बोली ने लेना प्रारंभ कर दिया। सुधार, परिष्कार, जागृति, राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक बोध तथा स्वातंत्र्य चेतना आदि का प्रबल आधार जिस युग ने दिया उसे 'आधुनिक युग ही कहा जाना उचित जान पड़ता है। अतः सन् १८८८ के आसपास से ही इस 'आधुनिक युग' की प्रारंभिक सीमा मानी जा सकती है और आज तक का समग्र गद्य-पद्य साहित्य इसी युग के भीतर आता है।

भारतीय जागरण (रेनेसां) पश्चिम की चुनौती ब्रिटिश राज्य की स्थापना के कारण भारत की अर्थ-नीति. शिक्षा पद्धति, यातायात के साधनों आदि में बुनियादी परिवर्तन हुए। इसके फलस्वरूप समाज का जो आधुनिकीकरण आरम्भ हुआ, वह पुराने धार्मिक संस्कारों, रीति-नीतियों, संघटनों के मेल में नहीं था। नये यथार्थ और पुराने संस्कारों के बीच सामंजस्य की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। इस सामंजस्य के साथ ही नये भारतीय समाज के निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ हुई।

यह उल्लेखनीय है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था वैयक्तिक स्वतन्त्रता पर आधारित होती है, जबकि पूर्व-पूंजीवादी समाज में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के लिए कोई स्थान नहीं होता- वहां व्यक्ति जन्म और लिंग के आधार पर एक विशेष सामाजिक व्यवस्था का अंग हो जाता है। नया पूंजीवादी समाज जाति. संयुक्त परिवार आदि के बन्धनों से मुक्त होकर ही विकसित हो सकता है। कहना न होगा कि भारतीय पुनर्जागरण के मूल में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का विशेष महत्त्व है।

मध्यकालीनता से आधुनिकता की ओर यद्यपि अंग्रेजों ने इस देश में नयी अर्थ-व्यवस्था, औद्योगिकता, संचार-सुविधा, प्रेस आदि को अपने निजी स्वाथों के लिए स्थापित किया। फिर भी इससे भारत का हित हुआ। एक स्थिर व्यवस्था से छूटकर देश को नूत्तन गत्यात्मकता का अनुभव हुआ। परम्पराएं टूटने लगीं। नये परिवेश में, ऐतिहासिक मांग के फलस्वरूप, लोग

अपने को नये ढंग से ढालने लगे। आधुनिक काल में जिस पुनर्जागरण का उल्लेख किया जाता है. उसके मूल में भी ये अकाली हुई परिस्थितियां ही थी।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आधुनिक काल हिंदी साहित्य का सबसे विस्तृत और विचारोत्तेजक युग है, जो लगभग १८५० ई. से वर्तमान तक फैला हुआ है। यह युग भारतीय समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था और संस्कृति में व्यापक परिवर्तनों का साक्षी रहा है। इस काल की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें सामाजिक जागरूकता, राष्ट्रीय चेतना, यथार्थवाद, व्यक्तिवाद, और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रमुखता मिली।

आधुनिक काल की अवधारणा मूल रूप से पश्चिमी वैज्ञानिक और औद्योगिक क्रांति के प्रभाव से जुड़ी है, जिसने भारत में भी गहरा असर डाला। ब्रिटिश शासन के आगमन के साथ भारत में आधुनिकता का प्रवेश हुआ, जिसने शिक्षा, संचार, परिवहन, मुद्रण और पत्रकारिता में व्यापक बदलाव लाए। औपनिवेशिक शासन की नीतियों के कारण भारतीय समाज में आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन हुए, जिससे नई सोच और चेतना का विकास हुआ।

हिंदी साहित्य में आधुनिक काल की शुरुआत भारतेंदु हरिश्चंद्र (१८५० के बाद) से मानी जाती है, जब साहित्य में सामाजिक सुधार, राष्ट्रवाद, और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया गया। इस युग में पारंपरिक मान्यताओं को चुनौती दी गई और नई विचारधारा को स्वीकार किया गया। हिंदी गद्य, पत्रकारिता, नाटक, और कविता के क्षेत्र में नवजागरण की भावना जागृत हुई।

आधुनिक काल में साहित्य का मुख्य उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं रहा, बल्कि यह सामाजिक और राजनीतिक चेतना को जागरूक करने का माध्यम बना। इस युग में कई महत्वपूर्ण साहित्यिक प्रवृत्तियाँ उभरीं, जैसे कि यथार्थवाद, समाज सुधार, राष्ट्रवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, दलित साहित्य, नारीवादी साहित्य और समकालीन यथार्थवाद।

२.३ सारांश

आधुनिक काल एक विचारवादी काल रहा है सिर्फ विचार ही नहीं हुआ बल्कि उन विचारों का अवलम्बन भी आधुनिक काल में हुआ है।यही कारण है कि इस काल का अध्ययन क्षेत्र विस्तारित है।आधुनिक हिंदी साहित्य के नये आयामों ने समाज को नई दिशा दी है ।साहित्य और समाज को जो अवधारणा और स्वरूप मिला है उसीका अध्ययन विद्यार्थियों ने इस अध्याय में किया है।

२.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. आधुनिक काल के अवधारणा एवं स्वरूप को विस्तार से समझाइए ।

२.५ लघुत्तरी प्रश्न

१. नवजागरण का उदय सर्वप्रथम कहाँ हुआ ?

उत्तर - नवजागरण का सबसे पहले अरुणोदय बंगाल के क्षितिज पर हुआ।

२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कब से हिंदी साहित्य की आधुनिक काल का आरंभ माना है।

उत्तर- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने १९९० ई. (सन् १८४३) से हिंदी साहित्य की आधुनिक काल का आरंभ माना है।

३. 'आधुनिक'शब्द किस प्रवृत्ति का सूचक है।

उत्तर - 'आधुनिक'शब्द यह नवीनता, वैज्ञानिक-दृष्टि, बौद्धिकता और तर्क-वितर्क की प्रवृत्ति का सूचक है।

४. साहित्य के इतिहास लेखकों ने हिंदी साहित्य के इतिहास के किस काल को आधुनिक काल कहा है?

उत्तर - जिसमें हमारे देश का संपर्क पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति, भाषा, धर्म, जीवन पद्धति, राजनीति, शासन व्यवस्था, विज्ञान आदि से हुआ।

५. कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना कब हुई ?

उत्तर - सन् १८०० ई. में कलकत्ता में स्थापित किए गए फोर्ट विलियम कॉलेज

२.६ संदर्भ ग्रन्थ

१. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र

२. हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

३. हिंदी साहित्य उद्भव और विकास – हजारी प्रसाद द्विवेदी

४. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – डॉ. रामकुमार वर्मा

५. हिंदी साहित्य की प्रव्रत्तियां – डॉ. जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल

६. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास – बच्चन सिंह

❄❄❄❄❄❄❄

३

भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग

इकाई की रूपरेखा

३.० उद्देश्य

३.१ प्रस्तावना

३.२ भारतेन्दु युग (सन १८५० से १९०० ई. तक)

३.३ भारतुन्द्र युग की प्रवृत्तियाँ

३.४ द्विवेदी युग

३.५ द्विवेदी युग की प्रवृत्तियाँ

३.६ सारांश

३.७ बोध प्रश्न

३.८ लघुत्तरीय प्रश्न

३.९ संदर्भ ग्रंथ

३.० उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आधुनिक हिन्दी साहित्य के दो युगों पर चर्चा की गई है। यहाँ भारतेन्दु युगीन कविता और द्विवेदी युगीन कविता की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई के अंतर्गत विद्यार्थी उक्त दोनों कालों की कविताओं का प्रवृत्तिगत अध्ययन कर सकेंगे।

इस इकाई का मूल उद्देश्य आधुनिक हिन्दी साहित्य की मूल प्रवृत्तियों और उस काल के मुख्य कवियों की विचारधाराओं से विद्यार्थियों को अवगत कराना है। इनके अध्ययन से वे आधुनिक हिन्दी कविता के काल विभाजन के साथ-साथ हिन्दी कविता की विकास यात्रा से भी परिचित हो सकेंगे। अतः इस इकाई का मूल उद्देश्य हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को आधुनिक हिन्दी साहित्य की मूल प्रवृत्तियों से अवगत कराना है।

३.१ प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल, जो हमारी नई सोच और नए दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है, उसके लिए तत्कालीन विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियाँ तो उत्तरदायी थीं ही, साथ ही उन परिस्थितियों के रूप ग्रहण के लिए अंग्रेजी सत्ता भी जिम्मेदार थी जिसने वास्तव में हमें प्रत्यक्षतः तथा परोक्षतः पुनर्जागरण के लिए उत्तेजित किया। १९ वीं सदी के उत्तरार्ध में नव चेतना के उदय से जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन ने हिन्दी साहित्य को भी विविध रूपों में प्रभावित किया। भारतेन्दु युग ने हिन्दी साहित्य के लिए एक ऐसी आधारभूमि प्रदान की जहाँ से हिन्दी

की दशा और दिशा दोनों बदलती है। समय के साथ अग्रसर हिन्दी साहित्य आज़ादी की लड़ाई के समय भी अपनी केन्द्रीय भूमिका का निर्वहन कर रहा था। सामान्य जनता की जागरूकता में भी हिन्दी साहित्य की प्रबल भूमिका थी। महात्मा गाँधी के साथ-साथ लगभग सभी स्वतंत्रता संग्राम सेनानी हिन्दी के सामर्थ्य को समझने लगे थे और देखते ही देखते खड़ी बोली हिन्दी सम्पूर्ण भारत को जोड़ने का एक सूत्र बन गई। पिछले डेढ़ सौ वर्षों की हिन्दी की इस यात्रा को उसकी प्रवृत्तियों और उसके अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए समय – कालखंड के अनुसार विविध नामों से अभिहित किया गया। उनमें यहाँ दो कालखंडों और उनकी प्रवृत्तियों का अध्ययन किया जाएगा।

१९ वीं सदी में सामाजिक नवजागरण के साथ हिन्दी कविता के क्षेत्र में भी प्रगति के चिन्ह दिखाई देने लगे। परिवर्तित परिस्थितियों ने स्वच्छंद विहार के लिए रचनाकारों को प्रेरणा प्रदान की। जिसके परिणामस्वरूप, भारतीय कविता के प्रांगण में स्वच्छंदतावाद लहराने लगा। भारतेन्दु और उनके सहयोगियों की प्रतिभा से पोषित होकर वह धीरे-धीरे पनपने लगा। भारतेन्दु जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी रचनाकार थे। उन्होंने गद्य और पद्य दोनों में समान रूप से लिखा। हिन्दी कविता को नए-नए विषयों में प्रवृत्त करने और गद्य एवं नवीन विधाओं के विकास में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण था। उनसे प्रेरणा प्राप्त कर साहित्य सृजन में सक्रिय होने वाले रचनाकारों में प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', राधाचरण गोस्वामी, काशीनाथ खत्री आदि के नाम विशेष रूप से लिए जा सकते हैं। आधुनिक हिंदी कविता ब्रज और खड़ी बोली दोनों भाषाओं में मिलती है। इस समय तक साहित्य में ब्रज भाषा की गति धीरे-धीरे मंद पड़ने लगी थी और खड़ी बोली हिंदी कविता ज़ोर पकड़ने लगी थी। तत्कालीन हिन्दी साहित्य पर भारतेन्दु जी के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व का विशेष प्रभाव पड़ा। इसीलिये हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस कालखंड को भारतेन्दु युग की संज्ञा दी गई। वास्तव में यह काल आधुनिक हिंदी साहित्य का द्वार है। आधुनिक भावबोध के परिणामस्वरूप भारतेन्दु युग के काव्य में अनेक नवीन प्रवृत्तियों का समावेश हुआ।

३.२ भारतेन्दु युग (सन १८५० से सं १९०० ई.)

भारतेन्दु युग के साहित्यकार कवि की अपेक्षा समाजसुधारक, प्रचारक और पत्रकार अधिक थे। परिणामतः इन्होंने अपनी पत्र-पत्रिकाओं में तत्कालीन समाज में प्रचलित कुरीतियों, धार्मिक आडंबर, छल-कपट, अमीरों की स्वार्थपरता, पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगे हुए शिक्षित वर्ग की कटु आलोचना, अधिकारियों की रिश्वतख़ोरी, अकाल, गरीबी आदि नवीन विषयों का समावेश किया। भारतेन्दुकालीन कविता में रीतिकालीन श्रृंगारी परंपरा का निर्वाह भी होता रहा। उसमें नैतिक और धार्मिक कविता की धारा का भी विकास हुआ। एक ओर तो इस काल के कवियों ने राधा और कृष्ण के भक्ति के मधुर प्रेम से सिक्त हृदयहारी पदों की सृष्टि की तो दूसरी और उपदेशात्मक सूक्तिमय काव्य का भी निर्माण किया और इनके साथ ही रीतिकालीन परिपाटी नायिका के हाव-भाव, नख-शिख वर्णन आदि के प्रति भी आग्रह दिखाया।

डॉ. रामविलास शर्मा भारतेन्दु युग के संबंध में लिखते है कि "भारतेन्दु युग की विशेषता यह रही है कि, समस्त युग के साहित्याकाश में भारतेन्दु छाए रहे। उनकी प्रेरणा से पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं, उनके संकेत पर अनेक लोग लिखने लगे। तात्कालिक युवक और साहित्यिक

अभिरुचि के व्यक्तियों के लिए वह प्रेरणा के स्रोत थे। उनकी प्रेरणा से अनेक साहित्यिक संस्थाएँ अस्तित्व में आईं और हिन्दी जगत में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक वातावरण उत्पन्न हुआ।'

इस समय के सभी कवियों की वाणी में देशभक्ति का स्वर ऊँचा है। भारतेन्दु ने 'भारत दुर्दशा' और 'नीलदेवी' नामक नाटकों के गीतों में तथा अन्य स्वतंत्र कविताओं में भारत की हीन दशा का वास्तविक चित्रण किया है -

"आवहु सब मिलिहूँ रोवहु भाई,
हा, हा भारत दुर्दशा न देखी जाई।"

३.३ भारतेन्दु युग की प्रवृत्तियां

भारतेन्दुयुगीन कविता की भावगत एवं शैलीगत प्रवृत्तियों को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत देख सकते हैं -

१) **देशभक्ति :** इस युग की राजनीति के अनुरूप और हिन्दी कविता में भी देशभक्ति के साथ-साथ राजभक्ति के स्वर सुनाई देते हैं। भारतेन्दु जी कि इन पंक्तियों में विदेशी शासन के प्रति रोष और तोष दोनों है -

अंग्रेज़ राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।

देश के राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक अधःपतन को देख कर इन कवियों ने अतीत का गौरव गान करके उसके उन्नयन की चेष्टा की। इनकी देशभक्ति में किसी प्रकार की चाटुकारिता नहीं है। कहीं-कहीं यदि अंग्रेजों की प्रशंसा है, तो वहीं देश की दशा का मार्मिक सिंहावलोकन भी है-

भीतर-भीतर सब रस चूसै,
बाहर से तन मन धन मूसे।
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि! साजन, नहिं अंगरेज॥

महारानी विक्टोरिया के निधन के बाद व्यक्त की जाने वाली हार्दिक शोक-संवेदनाओं से पूर्ण भारतेन्दु युगीन कविताओं 'जयति राज राजेश्वरी' और 'हाय दया की मूर्ति, हाय विक्टोरिया माता' आदि पंक्तियों को देख कर कुछ लोग तत्कालीन कवियों की राष्ट्रीय भावनाओं पर आज सन्देह व्यक्त करने लगते हैं। इस सम्बन्ध में हमें यह ध्यान देना होगा कि सन १८८५ से पूर्व कंपनी के शासन में भारतीय जनता पर जो अत्याचार किये जाते थे, उनकी तुलना में विक्टोरिया की अपेक्षाकृत उदार शासन व्यवस्था ने भारतीय जनता में कुछ-कुछ सुख- शान्ति का प्रसार अवश्य किया था। इसलिए उस युग के कुछ कवियों में विक्टोरिया के प्रति जो उद्गार मिलते हैं उन्हें चाटुकारिता कहना उचित नहीं होगा। 'प्रेमघन' की 'हार्दिक हर्षादर्श' कविता में भी इस तथ्य को देखा का सकता है –

लेकर राज कंपनी के कर सों निज हाथन
किये सनाथ भोली भारत की प्रजा अनाथन।

२) **प्राचीनता तथा नवीनता का समन्वय :** इस काल की कविता में जहाँ देश प्रेम तथा समाज सुधार आदि नवीन विषयों का समावेश हुआ, वहाँ भाषा, भाव और छंद की दृष्टि से यह युग सामंजस्य का युग है। इस काल के कवियों ने पुराने काल के भक्त कवियों के समान पद भी लिखे, लीलाओं आदि का गान भी किया और रीतिकालीन कवि के समान नायिका का नख-शिख वर्णन भी किया। स्वयं भारतेन्दु जी तथा उनके अन्य सहयोगियों ने ईश्वर केन्द्रित अनेक सरस रचनायें प्रस्तुत कीं। इन रचनाओं में कहीं तो निर्गुण संतों की तरह विरक्ति भावना देखने को मिलती है और कहीं वैष्णव भक्तों की तरह तन्मयता दिखाई देती है। ऐसी कविताओं में भारत को उसकी दुरावस्था से मुक्त करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना भी की गई है। जैसा कि राधाकृष्ण दास मोह – माया को व्यर्थ बताते हुए कहते हैं –

जो विषया संतन तजी, ताहि मूढ़ लपटात
जो नर डारत वमन करि स्वान स्वाद सो खात।

वहीं लोक कल्याण की बात करते हुए प्रेमघन लिखते हैं कि –

स्यामघन सम सोभित घनस्याम
दामिन सम राधारानी संग, मोहत मन अभिराम
भव भय ताप हरहु प्रभु मेरे सुखदायक छविराम।

इस काल में सूक्ति और उपदेश पद्धति पर भी काव्य सृष्टि हुई।

३) **नवजीवन का चित्रण :** भारतेन्दु युग का काव्य सामान्य जन की गलियों में पला। इस कविता की जनवादी प्रवृत्ति समाजसुधार में निहित है। यह कविता केवल राजनीतिक स्वाधीनता का साहित्य न होकर मनुष्य की एकता, समानता और भाईचारे का साहित्य है। इसमें सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक मिथ्याचार, छल-कपट, अमीरों की स्वार्थपरता, पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगे हुए शिक्षित वर्ग पर व्यंग्य, पुलिस और कर्मचारियों की लूट-खसोट, अकाल, महामारी के प्रकोप अंग्रेजों के आर्थिक शोषण तथा सामान्य जन-जीवन को प्रेरित और जागृत करने वाली बातों का यथार्थ चित्रण मिलता है। भारतेन्दु जी 'भारत दुर्दशा' में छूआछूत की तरफ संकेत करते हुए स्वयं लिखते हैं –

हमने बहुत फैलाए धर्म,
बढ़ाया छूआछूत का कर्म।

इसी प्रकार कवि 'प्रेमघन' पश्चिमी सभ्यता में रंगे और हिन्दू नाम से लज्जित होने वाले भारतीय नवयुवकों की निंदा करते हुए कहते हैं कि –

पढि विद्या परदेश की, बुद्धि विदेशी पाय।
चाल-चलन परदेश की, गई इन्हें अति भाय॥

हिन्दुस्तानी नाम सुनि अब ये सकुचित लजात।
भारतीय सब वस्तु ही सों ये हाथ घिनात॥

४) **प्रकृति चित्रण की पद्धति :** भारतेन्दु काल के कुछ कवियों ने स्वतंत्र रूप से प्रकृति के सौन्दर्य का चित्रण करने का प्रयास किया है किन्तु, रीतिकालीन कवियों के प्रभाव के कारण वे परम्परा निर्वाह की प्रवृत्ति से मुक्त नहीं हो सके हैं। स्वयं भारतेन्दु जी ने 'सत्य हरिश्चंद' और 'चन्द्रावली' में क्रमशः गंगा और यमुना की स्वतंत्र छवि का अंकन करने का प्रयास किया है। किन्तु, अलंकार भार से दब जाने के कारण इन कविताओं में सहजता की अपेक्षा कृतिमता अधिक आ गई है। इसी प्रकार भारतेन्दु कृत 'बसंत होली', अम्बिका दत्त व्यास कृत 'पावस पचासा', प्रेमघन कृत 'मयंक महिमा' और प्रताप नारायण मिश्र कृत 'प्रेम पुष्पांजलि' आदि कविताओं में प्रकृति को आलंबन-रूप में स्वीकार करने पर भी श्रृंगारी भावनाओं की प्रधानता रही है।

५) **हास्य-व्यंग्य :** भारतेन्दु युग में पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार-प्रसार से हिन्दी काव्य को जनमानस के अत्यधिक निकट लाने में विशेष सफलता प्राप्त हुई। कविता को सामान्य पाठकों की दृष्टि से आकर्षक और उपयोगी बनाने के लिए साहित्यकारों ने उसमें रोचकता का समावेश किया। हास्य-व्यंग्य इसी रोचकता का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन कर कविता में दिखाई देने लगा। पश्चिमी सभ्यता, विदेशी शासन और सामाजिक अंधविश्वासों पर तत्कालीन कवियों द्वारा किये गए व्यंग्य हमें आज भी आकर्षित करते हैं -

मुँह जब लागै तब नहिं छूटै, जाति,
मान, धन सब कुछ लूटै।
पागल करि मोंहि करे खराब,
क्यों सखि साजन! नहीं, शराब।

६) **इतिवृत्तात्मकता :** इस काल के कवियों ने विभिन्न सामयिक विषयों पर फुटकर पद एवं कविताएँ लिखीं, जिनमें विचार और अनुभूति की गहनता नहीं है। कहीं-कहीं तो मात्र तुकबंदी का प्रयास दिखाई देता है। उसे कविता की कोटि में नहीं रखा जा सकता है। प्रतापनारायण मिश्र ने पद्यात्मक निबंध लिखे और दूसरे कवियों ने बहुत सी ऐसी उपदेशात्मक और सुधारात्मक कविताएँ लिखीं जिनमें केवल इतिवृत्तात्मकता है जो कि द्विवेदी काल में और अधिक वृद्धि को प्राप्त हुई जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप छायावाद का जन्म हुआ।

७) **समस्या पूर्ति** : भारतेन्दु युग में कवियों की प्रतिभा और उनके रचना कौशल को परखने के लिए कवि गोष्ठियों और कवि समाजों में कठिन से कठिन विषयों पर समस्याओं की पूर्ति कराई जाती थी। काशी में भारतेन्दु जी द्वारा स्थापित 'कविता वर्धिनी सभा', कानपुर का रसिक समाज, निजामाबाद में सुमेर सिंह द्वारा स्थापित 'कवि समाज' आदि की तरफ से आयोजित की जाने वाली कविगोष्ठियों में समस्यापूर्ति की प्रतियोगिता के रूप में प्रोत्साहन दिया जाता था। इनमें कवि निश्चित विषयों पर अपने विचार स्वतन्त्रता पूर्वक व्यक्त करते थे। कानपुर के 'रसिक समाज' में प्रतापनारायण मिश्र द्वारा की गई एक समस्यापूर्ति का उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है –

बनि बैठी है मान की मूरति सी , मुख खोलत बोलें न नाहीं न हाँ।
तुम ही मनुहारि कै हारि परे, सखियान की कौन चलाई तहाँ ॥
बरषा है 'प्रताप जू' धीर धरौ, अब लों मन को समझायो जहाँ।
यह ब्यारी तबै बदलेगी कछू , पपिहा जब पूछिहें 'पीव कहाँ' ॥

८) **श्रृंगारिकता :** भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने रीतिकालीन कवियों का अनुसरण करते हुए प्रेम और सौन्दर्य की भावना से युक्त श्रृंगार प्रधान रचनायें भी प्रस्तुत कीं। भारतेन्दु की 'प्रेम सरोवर', 'प्रेम माधुरी', 'प्रेम फुलवारी', प्रेमघन की 'युवकमंगल स्तोत्र', 'वर्षा बिंदु', जगमोहन सिंह की 'प्रेम संगीत लता', आदि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। उदाहरणार्थ यहाँ जगमोहन सिंह की एक कविता प्रस्तुत है :

अब यों डर आवत है सजनी, मिलि जाऊँ गरे लगि के छतियाँ
मन की करि भाँति अनेकन औ मिलि कीजिय री रस की बतियाँ
हम हारि अरी करि कोटि उपाय, लिखी बहु नेह भरी पतियाँ
जगमोहन मोहिनी मूरति के बिना कैसे कटें दुःख की रतियाँ।

९) **भाषा :** कविता के क्षेत्र में भारतेन्दु काल में ब्रज भाषा का प्रयोग किया गया और गद्य के क्षेत्र में खड़ी बोली हिन्दी का। इस काल में भाषा के संबंध में एक बहुत बड़ा विवाद खड़ा हो गया था। जिसका अंतिम निर्णय द्विवेदी युग में हुआ। शायद इसी कारण इस काल में खड़ी बोली में रचित कविताएँ निर्जीव और नीरस हैं।

१०) **छंद :** परंपरा से चले आते हुए सवैया, रोला, छप्पय, कवित्त आदि छंदों के अतिरिक्त भारतेन्दु युगीन कविता में लोक प्रचलित छंदों जैसे लावणी, कजरी आदि का प्रयोग भी हुआ। कुछ कवियों ने संस्कृत के वर्णवृत्तों का भी प्रयोग किया किन्तु इस क्षेत्र में इस समय कोई स्वतंत्र एवं नवीन प्रयास दिखाई नहीं पड़ता है फिर भी भारतेन्दु युग की कविताओं में नवीन छंदों का अभाव खटकता नहीं है।

निष्कर्ष : भारतेन्दु और उनके मण्डल के अधिकांश साहित्यकार प्रधानतः देशप्रेमी, पत्रकार और प्रचारक अधिक हैं, कवि और साहित्यकार कम। उनमें विचारों और अनुभूति की गहनता की अपेक्षाकृत कम है और यही कारण भी है कि, इस काल की कविता में कलात्मक अभिव्यक्ति का अभाव है। इस काल की अधिकांश रचनाएँ न तो अधिक सरस हैं और न ही साहित्यिक, किन्तु भारतेन्दु, प्रेमघन और बालमुकुंद गुप्त की रचनाएँ काफी सरस और मधुर हैं। भारतेन्दु काल की कविता का महत्त्व जीवन और साहित्य के अनुशीलन की दृष्टि में है। इन कवियों को अपने कर्तव्यों तथा दायित्यों का पूर्ण ज्ञान है। इन कवियों ने तत्कालीन जीवन में डूब कर कटु सत्यों का यथार्थ वर्णन किया है। इस काल में कविता और जीवन के निकट का संबंध स्थापित हुआ और यही भारतेन्दु कालीन कविता का महत्त्व भी है।

३.४ द्विवेदी युग (सन १९०१ से १९१८)

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में आधुनिक हिन्दी कविता में पुनः एक नया मोड़ आया। यहाँ आते-आते भारतीय जनमानस में महरानी विक्टोरिया के प्रति कृतज्ञता का भाव कम हो गया। राजभक्ति का स्वर क्षीण हो गया और उसकी जगह शुद्ध राष्ट्रीयता और देशभक्ति की

भावना जागृत हुई। हिन्दी साहित्य में इस परिवर्तन युग के सबसे महान युग प्रवर्तक पुरुष एवं नायक महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। इस युग का कोई भी साहित्यिक आंदोलन गद्य अथवा पद्य का ऐसा नहीं जो कि प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इनसे प्रभावित न हुआ हो। साहित्यिक दृष्टि से द्विवेदी जी एक कवि की अपेक्षा अनुवादक और पत्रकार अधिक थे। उनकी मौलिक रचनाओं का अधिक महत्त्व नहीं किन्तु, वे एक महान शक्ति के प्रतीक थे जिन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा को अद्भुत बल प्रदान किया। द्विवेदी जी के समान ही उनकी 'सरस्वती' पत्रिका भी अपने आप में एक संस्था थी। सन १९०३ में द्विवेदी जी ने सरस्वती का संपादन अपने हाथ में लिया और उसके माध्यम से खड़ी बोली हिन्दी को परिष्कृत-परिमार्जित करने में विशेष योग दिया। अपनी और अपने समय के अन्य कवियों की नवीन भावबोध से समन्वित कविताओं को 'सरस्वती' में स्थान देकर कवियों को काव्य रचना के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया। इस पत्रिका के माध्यम से उन्होंने अनेक नए कवि और लेखक तैयार किए, उनकी गद्य शैली और भाषा का संस्कार किया। उन्होंने भाषा की अस्थिरता दूर करके तथा उसका व्याकरण 'शुद्ध' करके उसे एक स्थिर रूप तथा व्याकरण दिया। विभक्तियों के प्रचार और पैराग्राफ पद्धति का श्रेय भी उन्हीं को है।

निःसंदेह भारतेन्दु युग में कविता ने नवीन मोड़ लिया और उसमें आधुनिकता का सहज समावेश हुआ, किन्तु उसमें प्राचीनता के प्रति मोह भी बना रहा। द्विवेदी युग में पहुँचते-पहुँचते कविता में बाल-सुलभ चंचलता और विमोहकता का स्थान अनुशासन, गंभीरता और विचारात्मकता ने ले लिया। द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य के भाव पक्ष और कलापक्ष इन दोनों में एक नूतन आदर्श की प्रतिष्ठा की। इस युग में हिन्दी साहित्य की नवीन परंपरा का यथेष्ट परिमार्जन तथा विकास हुआ। लगभग दो दशकों की इस छोटी सी अवधि में एक साहित्यिक अनेकरूपता आई। विशेषकर इस युग में हिन्दी साहित्य की कविता में प्रौढ़ता का संचार हुआ। इस युग के प्रमुख कवियों में श्रीधर पाठक, बालमुकुन्द गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध,' मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सोहनलाल द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि प्रमुख हैं।

इस युग की काव्यगत प्रवृत्तियों को हम निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं -

३.५ द्विवेदी युग की प्रवृत्तियाँ

१) **देशभक्ति की कविता :** इस काल के प्रत्येक कवि ने देशभक्ति के संबंध में कुछ न कुछ अवश्य लिखा है। यहाँ देशभक्ति की भावनाओं की अभिव्यक्ति छोटी-छोटी फुटकर कविताओं और प्रबंध काव्य दोनों रूपों में हुई। गुप्त जी का साकेत, उपाध्याय जी का प्रियप्रवास, रामचरित उपाध्याय का 'रामचरित चिंतामणि' और सत्यनारायण कविरत्न का 'भ्रमरदूत' जहाँ हिन्दी भाषा के गौरव ग्रंथ हैं, वहाँ देशभक्ति और अतीत की ज्वलंत विभूतियों के भी भव्य निदर्शन हैं। द्विवेदी युगीन काव्यधारा में व्यक्त राष्ट्रीय भावना की एक प्रमुख विशेषता राजनीतिक चेतना का स्वर है। कांग्रेस के आंदोलन में स्वदेशी की लहर दौड़ गई थी और उसका प्रभाव हिन्दी साहित्य पर भी दिखाई देने लगा था। जैसा कि, श्रीधर पाठक एक कविता में विद्यार्थियों को सतसेवा का व्रत धारण कर देश की उन्नति करने को प्रेरित करते हैं -

"अहो छात्रवर वृंद नव्य भारत सुत प्यारे।
मातृगर्व सर्वस्व मोदप्रद गोद दुलारे॥
सतसेवा व्रतधार जगत के हरो क्लेश तुम।
देशप्रेम में करो प्रेम का अभिनिवेश तुम॥"

इस काल के कवियों की कविताओं में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध एक तीव्र आक्रोश और क्रांतिकारी स्वर सुनाई पड़ता है। समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, कुरीतियों और कृषक-मजदूरों की दुरावस्था का हृदयस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत कर इन कवियों ने भारतीय जनमानस को उसकी कमियों से अलग करते हुए परस्पर संगठित होकर देश की उन्नति करने के लिए ओजस्वी स्वर में प्रेरित किया है। रामनरेश त्रिपाठी की 'जन्मभूमि' शीर्षक कविता में यही भाव दिखाई देता है –

उठो त्याग दें द्वेष एक ही सबके मत हों,
सीऊ ज्ञान-विज्ञान कला-कौशल उन्नत हों।
सुख-सुधार संपत्ति शान्ति भारत में भर दें
अपना जीवन इसे सहर्ष समर्पित कर दें॥

२) **मानवतावादी विचारधारा:** द्विवेदी युग की काव्यधारा की दूसरी मुख्य विशेषता मानवतावादी विचारधारा है। इस मानवतावादी विचारधारा के द्विवेदी युगीन काव्य में तीन स्वरूप मिलते हैं -

i) **समानता की भावना** - इसके अंतर्गत स्त्री-पुरुष की समानता आती है। वास्तव में इस काल के कवि महिला समाज में जागृति चाहते थे। इसलिए वे कभी प्राचीन काल के नारी के महान स्वरूप की चर्चा करते हैं तो कभी लोकसेविका के रूप में उसे प्रस्तुत करते हैं। इतना ही नहीं इस काल में नारी समर्पिता के रूप में भी चित्रित हुई है। जैसा कि श्रीधर पाठक लिखते हैं -

"अहो पूज्य भारत महिला गण, अहो आर्य कुल प्यारी।
अहो आर्य गृह लक्ष्मी, सरस्वती आर्यलोक उजियारी॥
आर्य जगत में पुनः जननि निज जीवन ज्योत जगाओ।
आर्य हृदय में पुनः आर्यता का सुचि स्रोत बहाओ॥"

यहाँ हम कह सकते है कि, भारतेन्दु युग में नारी को पुनः सम्माननीया रूप में देखने का प्रयत्न हो रहा था और द्विवेदी युग में नारीत्व के प्रति ठोस स्थापना हुई। गुप्त जी ने युग-युग की तपस्विनी नारी का बड़ा ही उदात्त चित्र खींचा है -

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।"

ii) **पीड़ित दुःखियों के प्रति सहानुभूति** - द्विवेदी युगीन काव्यधारा के मूल में जो मानवतावादी विचारधारा प्रवाहित हुई, उसमें गरीब, किसान, विधवा, अछूत आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं।

iii) **मानवीय गुणों की सहज स्थापना** – इसके द्वारा परम सत्य के स्वरूप की प्राप्ति की बात भी इस युग में की गई। मानव सेवा ही इस युग की मूल दृष्टि रही। धीरे-धीरे परम्परागत धर्म का स्थान मानवता ने ले लिया। द्विवेदीयुगीन कवियों ने धर्म के इस आभ्यंतर स्वरुप को अच्छी तरह पहचाना और मानव के प्रति प्रेम तथा दीन -दुखियों की सेवा को सच्चा धर्म बताया। गोपालशरण सिंह की कविताओं में इस भाव का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है –

जग की सेवा करना ही बस है सब सारों का सार
विश्व प्रेम के बंधन ही में मुझको मिला मुक्ति का द्वार ॥

३) **बौद्धिकता का व्यापक प्रभाव :** द्विवेदी युगीन काव्यधारा की तीसरी प्रमुख विशेषता है बुद्धिवाद की प्रमुखता। नवीन वैज्ञानिक युग के अनुकूल ही इस विचारधारा का विकास हुआ। पाश्चात्य संस्कृति के संघर्षण एवं नवीन परिस्थितियों के परिवर्तन से भारतीय संस्कृति की परीक्षा वैज्ञानिक एवं तार्किक दृष्टि से होने लगी। इस बुद्धिवादी विचारधारा का द्विवेदी युग में बड़ा व्यापक प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस युग की कविता में भी यह प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। इस युग में सबसे अधिक क्रांति धार्मिक क्षेत्र में हुई। पुरानी रूढ़ियों एवं परम्पराओं को वैज्ञानिक दृष्टि से परखा गया। इस युग में राम के आगमन को नर में नारायणत्व की स्थापना माना गया। जैसा कि साकेत के राम कहते हैं -

"भव में नव वैभव प्राप्त करने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।"

इस प्रकार नर में नारायणत्व की उद्भावना इस युग की बुद्धिवादिता का स्वरूप है।

४) **श्रृंगार का बहिष्कार :** महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से इस युग की काव्यधारा नैतिकता के कठोर बंधन में जकड़-सी गई है। इस युग में श्रृंगार और प्रेम का जो डटकर विरोध हुआ, उसके स्वरूप का विवेचन करने के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ पर्याप्त है - रामचरित उपाध्याय की कविता 'काम की करतूत' की निम्नलिखित पंक्तियाँ यहाँ दर्शनीय है :-

रति के पति! तू प्रेतो से भी बढ़कर है, संदेह नहीं,
जिसके सिर पर तू चढ़ता है, उसको रुचता गेह नहीं।
मरघट उसको नंदनवन हैं, सुखद अंधेरी रात उसे,
कुश कंटक हैं फूल सेज से, उत्सव है बरसातों से॥

५) **इतिवृत्तात्मक एवं गद्यात्मकता :** इतिवृत्तात्मकता एवं गद्यात्मकता द्विवेदी युगीन कविता की एक प्रमुख विशेषता है। इस युग की कविता की शैली सरल गद्य शैली हो गई। कविता का उद्देश्य केवल उपयोगिता हो गया। उपयोगितावाद का स्वरूप काव्य में इतिवृत्तात्मक वर्णनों में दिखाई पड़ता है। उसमें विशेष कल्पना प्राचुर्य एवं सरसता और माधुर्य नहीं है । द्विवेदी जी की आदर्शवादिता, सात्विकता और संयम के प्रभाव के

साथ-साथ अश्लीलता और श्रृंगारिकता आदि का बहिष्कार कर दिया गया। कविता में इतिवृत्तात्मकता (matter of fact) की प्रवृत्ति के फलस्वरूप उसमें लाक्षणिकता, चित्रमयी भावना और वक्रता बहुत कम रह गई जो इस संसार की गति को तीव्र करके सहृदय के मन को आकर्षित किया करती है। कल्पना की लम्बी उड़ानों के सहारे रचे गए संश्लिष्ट बिम्बों की हृदयस्पर्शी छटा द्विवेदीयुगीन कवियों में देखने को नहीं मिलती। सन १९०७ में 'सरस्वती' में प्रकाशित एक कविता में इस इतिवृत्तात्मकता को देखा जा सकता है :

विद्या तथा बुद्धिनिधि प्रधान, न ग्रन्थ होते यदि विद्यमान।
तो जानते क्योंकर आज मित्र, स्वपूर्वजों के हम सच्चरित्र।
हे ग्रन्थ ! द्रव्यादि न लेते, तो सुशिक्षा तुम नित्य देते ॥

६) **अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद की प्रचुरता :** द्विवेदी युग में 'सरस्वती' में अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद भी छपा करते थे। आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया और इस काल में अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद व्यापक पैमाने पर हुए। जैसा कि, डॉ. रविन्द्रसहाय वर्मा ने लिखा है कि, "द्विवेदी युग के हिन्दी काव्य में अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद विशिष्ट स्थान रखते हैं। १९०३ से १९०८ के मध्यवर्ती काल में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास के लिए अथक परिश्रम किया। ये अनुवाद अनवरत रूप से 'सरस्वती' में प्रकाशित होते रहे।"

७) **नवीन एवं सामान्य लोकजीवन के विषयों का काव्य में निरूपण :** शुक्ल जी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि, "बात यह थी कि, खड़ी बोली का प्रचार बराबर बढ़ता दिखाई देता था और काव्य के प्रवाह के लिए कुछ नई-नई भूमियाँ दिखाई पड़ती थीं। देश दशा, समाज दशा, स्वदेश प्रेम, आचरण संबंधी उपदेश आदि तक ही नई धारा की कविता न रहकर जीवन के कुछ और पक्षों की ओर भी बढ़ी पर गहराई के साथ बढ़ी। त्याग, वीरता, उदारता, सहिष्णुता इत्यादि के अनेक पौराणिक और ऐतिहासिक प्रसंग काव्यबद्ध हुए जिनके बीच-बीच में जन्मभूमि प्रेम, स्वजातीय गौरव, आत्मसम्मान की व्यंजना करने वाले जोशीले भाषण भी रखे गए।" उदाहरण के लिए 'पराधीन प्राकृत' कविता में कांताप्रसाद गुरु ने खुशामदी भारत वासियों पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि -

"पराधीनता मे रह कर यह, अपना सब कुछ भूल गई,
भाषा, भोजन, भेष, भाव, भावी, सब बातें हुई नई।
अपनी जन्म भूमि का भी जब, इनको कोई ध्यान नहीं,
वन के जो प्यारे साथी हैं, उनकी भी पहचान नहीं॥"

इस प्रकार के नवीन सामाजिक विषयों की ओर झुकाव का संकेत करने वाले कवियों में गोपाल शरण सिंह, रामचरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध सिंह उपाध्याय आदि प्रमुख हैं।

८) **आलंबन रूप में प्रकृति का चित्रण :** द्विवेदी युगीन कवियों ने प्रकृति को निकट से देखा और उसे पूर्णतः आलंबन रूप में स्वीकार किया। श्रीधर पाठक, बालमुकुन्द गुप्त,

रामनरेश त्रिपाठी, जगमोहन सिंह आदि कवियों की कविताओं में प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य के श्लिष्ट चित्र देखने को मिलते हैं। रामनरेश त्रिपाठी के खंडकाव्यों में प्रकृति के मोहक चित्र भरे पड़े हैं –

पर्वत शिखरों पर हिम गलकर, जल बनकर नालों में आकर।
छोटे बड़े चीकने अगणित शिला समूहों से टकराकर ॥
गिरता उठता फेन बहाता अति कोलाहल हर – हर
वीर वाहिनी की गति से कहता रहता निसिवासर ॥

९) **छंद के क्षेत्र में स्वच्छंदता की ओर झुकाव और खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग :** द्विवेदी युग आते-आते खड़ी बोली हिन्दी काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। प्रारम्भ में तो यह भाषा बड़ी अव्यवस्थित रही किन्तु महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रयत्न से इसकी पदावली का परिष्कार हुआ। द्विवेदी जी ने कवियों को उनकी त्रुटियों की ओर संकेत भी किया और लगभग सबने उसका अनुकरण किया। इस युग की कविता में खड़ी बोली के दो रूप दिखाई देते हैं – एक, उसका वह रूप है जिसमें बोलचाल के सीधे सरल शब्दों का प्रयोग हुआ है और दूसरा, उसका वह रूप है जिसमें संस्कृतनिष्ठ समासप्रधान शब्दावली देखने को मिलती है। यहाँ दोनों के एक-एक उदहारण प्रस्तुत हैं :

यदि कोई पीड़ित होता है, उसे देख सब घर रोता है।
देश दशा पर प्यारे भाई – आई कितनी बार रुलाई। (महावीर प्रसाद द्विवेदी)
ठीक इसी प्रकार संस्कृतनिष्ट पदावली का एक उदाहरण देखिये :
रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना।
तन्वंगी तनहासिनी सुरसिका क्रीड़ाकलापुत्तली ॥ (हरिऔध)

द्विवेदी जी छंद के क्षेत्र में पूर्णतः स्वच्छंदतावादी थे। उन्होने कवियों को विविध प्रकार के छंदों के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित किया। उनके द्वारा अतुकांत छंद को भी महत्त्व दिया गया। द्विवेदी जी ने संस्कृतवृत्तों का प्रयोग करने पर भी ज़ोर दिया। संस्कृत अतुकांत छंदों की माधुरी अयोध्यासिंह उपाध्याय की 'प्रियप्रवास' में भी देखी जा सकती है -

"कथन को अब न कुछ शेष है,
विनय यों करता दीन अब।"

इस युग के लावणी तथा उर्दू के छंदों का प्रयोग करने वाले प्रमुख कवि श्रीधर पाठक हैं।

३.६ सारांश

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि, द्विवेदी युग, भारतेन्दु युग और छायावादी युग के बीच की कड़ी है। यह युग भारतेन्दु युग से प्रभावित हुआ और इसने अग्रिम युग को प्रभावित किया। इस युग में कुछ कवि ऐसे हैं जिनकी कविताओं की प्रमुख विशेषताएँ हैं - मुक्त गीतात्मकता, भाषा की लाक्षणिकता और रहस्यात्मकता इन सबका मूल द्विवेदी युग की कविताओं में है। द्विवेदी

युग के अंतिम वर्षों की रचनाओं से आधुनिक युग की छायावाद और रहस्यवाद की प्रवृत्तियाँ विकसित हुईं और प्रगतिवाद का संबंध भी इनसे जोड़ा जा सकता है। इस युग की हिन्दी कविता अहम् दायित्त्व से अनुप्राणित कविता है। उसमें मनोरंजन से अधिक गहरा उपदेश समाहित है जो उस युग की अपेक्षा थी। हर रूप में स्वतन्त्रता की दृष्टि से, नए विषयों की उद्भावना की दृष्टि से, नई चेतना की व्याख्या की दृष्टि से और भाषा संस्कार आदि दृष्टियों से द्विवेदी युग की कविता तत्कालीन भारतीय समाज के लिए तो महत्त्वपूर्ण थी ही आज के लिए भी अति प्रासंगिक है। यथा-

जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, मुसलमान, सिख, इसाई।
कोटि कंठ से मिलकर कह दो हम सब हैं भाई-भाई।
पुण्य भूमि है, स्वर्णभूमि है, जन्मभूमि है देश यही।
इससे बढ़कर या ऐसी ही दुनिया भर में जगह नहीं।

३.७ बोध प्रश्न

१. भारतेन्दु युगीन काव्य की प्रवृत्तियों को अंकित कीजिए।

२. भारतेन्दु युगीन काव्य की विशेषताओं पर सोदाहरण चर्चा कीजिए।

३. द्विवेदी युगीन लक्षणों को रेखांकित कीजिए।

४. द्विवेदी युगीन काव्य समाज सुधारक काव्य है - चर्चा कीजिए।

३.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१. 'कविवचन सुधा' पत्रिका के संपादक कौन है ?

२. जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' किस युग के कवि है ?

३. हास्य व्यंग्य की अभिव्यक्ति किस युग में हुई हैं ?

४. भारतेन्दु युग ने काव्य में किस भाषा का प्रयोग किया है ?

५. भारतेन्दुजी ने अपने काव्य में कौनसे देव की आराधना की है ?

६. महावीर प्रसाद द्विवेदीजी ने सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन किस वर्ष में किया ?

७. द्विवेदी युग के कवियों ने किस भाषा का प्रयोग किया है ?

८. 'दुर्गावती' किस कवि की रचना है ?

९. 'रंग में भंग' किस कवि की काव्य रचना है ?

१०. "अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी। आंचल में है दूध और ऑखों में पानी ॥" प्रस्तुत पंक्तियां किस कवि की है?

३.९ संदर्भ ग्रंथ

१. हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिपूरक इतिहास - डॉ. सभापति मिश्र

२. आधुनिक हिन्दी साहित्यः वाद, प्रवृत्तियां एवं विमर्श - डॉ. दत्तात्रय मुरूमकर

३. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां - डॉ. जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल

४. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

५. हिन्दी साहित्य की भूमिका - डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी

❄❄❄❄❄❄❄

४

छायावादी काव्य और प्रगतिवादी की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

४.० इकाई का उद्देश्य

४.१ प्रस्तावना

४.२ छायावाद

४.३ छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियां

४.४ प्रगतिवाद

४.५ प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियां

४.६ सारांश

४.७ बोध प्रश्न

४.८ लघुत्तरीय प्रश्न

४.९ संदर्भ ग्रंथ

४.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आधुनिक हिन्दी साहित्य के **छायावाद और प्रगतिवाद** की चर्चा की गई है। इस इकाई के अंतर्गत इन दोनों की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई के अंतर्गत विद्यार्थी उक्त दोनों कालों की कविताओं का प्रवृत्तिगत अध्ययन कर सकेंगे।

इस इकाई का मूल उद्देश्य आधुनिक हिन्दी साहित्य की मूल प्रवृत्तियों और उस काल के मुख्य कवियों की विचारधाराओं से विद्यार्थियों अवगत कराना है। इनके अध्ययन से वे आधुनिक हिन्दी कविता के काल विभाजन के साथ-साथ हिन्दी कविता की विकास यात्रा से भी परिचित हो सकेंगे। अतः इस इकाई का मूल उद्देश्य हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को आधुनिक हिन्दी साहित्य की मूल प्रवृत्तियों से अवगत कराना है।

४.१ प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल, जो हमारी नई सोच और नए दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्त्व करता है, उसके लिए तत्कालीन विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियाँ तो उत्तरदायी थीं ही, साथ ही उन परिस्थितियों के रूप ग्रहण के लिए वह अंग्रेजी सत्ता भी जिम्मेदार थी जिसने वास्तव में हमें प्रत्यक्षतः तथा परोक्षतः पुनर्जागरण के लिए उत्तेजित किया। १९ वीं सदी के उत्तरार्ध में नव चेतना के उदय से जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन ने हिन्दी साहित्य को भी विविध रूपों में प्रभावित किया। भारतेंदु युग ने हिन्दी साहित्य के लिए एक ऐसी आधारभूमि प्रदान की जहाँ से हिन्दी

की दशा और दिशा दोनों बदलती है। समय के साथ वह आज़ादी की लड़ाई के समय भी अपनी केन्द्रीय भूमिका का निर्वहन कर रही थी। सामान्य जनता की जागरूकता में भी हिन्दी साहित्य की प्रबल भूमिका थी। महात्मा गाँधी के साथ-साथ लगभग सभी स्वतंत्रता संग्राम सेनानी हिन्दी के सामर्थ्य को समझने लगे थे और देखते ही देखते खड़ी बोली हिन्दी सम्पूर्ण भारत को जोड़ने का एक सूत्र बन गई। द्विवेदी युग के बाद की कविता को छायावाद और उसके बाद के कविताकाल को प्रगतिवादी कविता के नाम से अभिहित किया गया। यहाँ इन दोनों कालखंडों और उनकी प्रवृत्तियों का अध्ययन किया जाएगा।

४.२ छायावाद (१९१८ -१९३८)

दो विश्वयुद्धों के बीच की स्वच्छंदतावाद की कविता को सामान्यतः छायावाद के नाम से अभिहित किया जाता है। छायावादी साहित्य, कला और भाव के क्षेत्र में एक महान आंदोलन है जिसकी सर्वप्रमुख भावना आधुनिक औद्योगिकता से प्रेरित व्यक्तिवाद है। हिन्दी साहित्य की प्रस्तुत काव्य धारा अपने आप में मौलिक और स्वतंत्र है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मानना है कि, "बंगला में प्रतीकात्मक आध्यात्मवादी रचनाओं को छायावादी कहा जाता था। अतः उसके अनुकरण पर हिन्दी साहित्य में ऐसी रंचनाओं के लिए छायावाद नाम चल पड़ा।' वहीं जयशंकर प्रसाद का मानना है कि, "मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है वैसे ही क्रांति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है।' छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर निर्भर करती है। छायावाद के नामकरण को लेकर भी प्रारंभ के विद्वानों में अनेक मतभेद रहे। फिर भी छायावादी कवियों ने इसी नाम को सहर्ष स्वीकार किया। इस काल की कविता के लिए 'छायावादी' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम **मुकुटधर पाण्डेय** ने किया था।

डॉ. नगेन्द्र ने इसे 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' कहा तो **डॉ. रामकुमार वर्मा** ने इसके सम्बन्ध में कहा कि 'छायावाद वास्तव में हृदय की अनुभूति है। वह भौतिक संसार के क्रोड़ में प्रवेश कर अनंत जीवन के तत्त्व ग्रहण करता है और उसे हमारे वास्तविक जीवन में जोड़कर हृदय में जीवन के प्रति एक गहरी संवेदना और आशावाद प्रदान करता है।'

वहीं छायावाद को स्पष्ट करते हुए **महादेवी वर्मा** ने लिखा है कि 'छायावाद स्थूल की प्रतिक्रिया में उत्पन्न हुआ है अतः स्थूल को उसी रूप में स्वीकार करना उसके लिए संभव न हुआ, परन्तु उसकी सौन्दर्य दृष्टि स्थूल के आधार पर नहीं है – यह कहना स्थूल की परिभाषा को संकीर्ण कर देना है। उसने जीवन के इतिवृत्तात्मक यथार्थ चित्र नहीं दिए, क्योंकि यह स्थूल से उत्पन्न सूक्ष्म सौन्दर्य सत्ता की प्रतिक्रया थी।'

सामान्यतः छायावाद का समय सन १९१८ से १९३८ ई. तक तक माना जाता है लेकिन, उसका प्रारंभ तो कुछ वर्ष पूर्व ही हो चुका था। कुछ विद्वानों का मानना है कि इसका प्रारंभ 'निराला' की रचना 'जूही की कली' – (सन -१९१६) में ही हो चुका था और जयशंकर प्रसाद जी की 'कामायनी' (सन – १९३६) इसके चरम उत्कर्ष की कृति है। लगभग २० वर्षों के अपने समय में छायावादी कविता ने हिन्दी साहित्य को अनंत समृद्धि प्रदान की। इसकी प्रमुख विशेषताओं को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत देख सकते हैं -

४.३ छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियां

१) **व्यक्तिवाद की प्रधानता :** हिन्दी के छायावादी काव्य में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति आधुनिक औद्यौगिकता में प्रेरित व्यक्तिवाद है। इस व्यक्तिवाद के फलस्वरूप छायावादी कवि ने स्वच्छंदतावाद, कलावाद की दुहाई दी जो नैसर्गिक थी। वास्तव में केवल आध्यात्मिक पक्ष या दार्शनिक अनुभूति ही छायावाद नहीं है, छायावादी कविता मूलतः व्यक्तिवादी कविता है, जिसमें मध्ययुगीन अवशेषों से युक्त भारतीय समाज और व्यक्ति के बीच व्यवधान और विरोध को वाणी मिली है। छायावादी काव्य में वैयक्तिक सुख-दुख की अभिव्यक्ति खुल कर हुई है। 'जयशंकर प्रसाद' का 'आँसू' तथा पंत जी के 'उच्छ्वास' और 'आँसू' व्यक्तिवादी अभिव्यक्ति के सुंदर निदर्शन है। जैसे -

"रो-रोकर, सिसक-सिसककर,
मैं कहता करुण कहानी,
तुम सुमन नोंचते रहते,
करते जानी अनजानी।"

डॉ. शिवदान सिंह चौहान इन कवियों की व्यक्तिवादिता के सम्बन्ध में लिखते हैं कि 'यहाँ कवि 'मैं' प्रत्येक प्रबुद्ध भारतवासी का 'मैं' था, इस कारण कवि ने विषयगत दृष्टि से अपनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए जो लाक्षणिक भाषा और अप्रस्तुत रचना शैली अपनाई, उसके संकेत और प्रतीक हर व्यक्ति के लिए सहज प्रेषणीय बन सके। छायावादी कवियों के भाव यदि केवल आत्मकेंद्रित ही होते तो उनमें इतनी व्यापक प्रेषणीयता नहीं आ पाती।' जैसा कि निराला जी ने लिखा है –

'मैंने मैं शैली अपनाई
देख एक दुखी निज भाई।
दुःख की छाया पड़ी हृदय में,
झट उमड़ वेदना आई॥

इससे स्पष्ट है कि व्यक्ति सुख-दुखों की अपेक्षा अपने से अन्य के सुख-दुःख की अनुभूति ने ही नए कवियों के भाव-प्रवण और कल्पनाशील हृदयों को स्वच्छन्दता की ओर प्रवृत्त किया।

२) **प्रकृति-चित्रण :** सौन्दर्य और प्रेम का चित्रण छायावादी काव्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति है, जिसे नारी सौन्दर्य और प्रकृति सौन्दर्य इन दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। छायावादी कवि का मन प्रकृति चित्रण में खूब रमा है। इस काव्य में प्रकृति का मानवीकरण सर्वत्र दिखाई देता है। प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा आदि छायावाद के सभी प्रमुख कवियों ने प्रकृति का नारी रूप में चित्रण किया और सौन्दर्य एवं प्रेम की अभिव्यक्ति की है। जैसा कि, पंत जी लिखते है -

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले ! तेरे बाल-जाल में, कैसे उलझा दूँ लोचन,
भूल अभी से इस जग को।"

प्रकृति चित्रण की दृष्टि से छायावादी कवियों में पन्त जी का प्रथम और अतुलनीय स्थान है। इन्हें प्रकृति और कल्पना के सुकुमार कवि के रूप में भी देखा गया।

छायावाद के काव्य में प्रकृति की प्रतीकात्मकता का भी विशेष महत्त्व है। इन कवियों ने प्रकृति का प्रतीक रूप अपनी कविता में उपस्थित कर अपने काव्य की सुषमा को संवर्धित किया है। यहाँ प्रसाद जी द्वारा वर्णित एक प्रकृति चित्रण भी प्रस्तुत है -

"पगली, हाँ संभाल ले, कैसे छूट पड़ा तेरा अंचल।
देख बिखरती है मणिराजी,अरी उठा बेसुध चंचल॥"

छायावादी कवि ने निजी अनुभूतियों का व्यक्तिकरण भी प्रकृति के माध्यम से किया है - "मैं नीर भरी दुःख की बदली॥" वैसे तो अधिकांश छायावादी कवियों ने प्रकृति के कोमल रूप का ही वर्णन किया है परंतु कहीं-कहीं उसके उग्र रूप का भी चित्रण मिलता है।

३) **नारी के सौन्दर्य एवं प्रेम का चित्रण :** छायावादी कवि का नारी चित्रण अपेक्षाकृत सूक्ष्म और मर्यादित है। इसमें स्थूलता और नग्नता प्रायः नहीं के बराबर है फिर भी वह चित्रण एक नया कुतूहल उत्पन्न करता है। जैसे -

"नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग॥"

इन कवियों ने नारी जीवन को एक नई दृष्टि भी प्रदान की है। कवियों ने यहाँ प्रकृति को नारी रूप में तो देखा है लेकिन, उसका वह रूप आत्मा को प्रकाशित करने वाला भी है -

"तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगा स्नान।
तुम्हारी वाणी में कल्याणी, त्रिवेणी की लहरों का गान।

इनके प्रेम चित्रण में कोई लुकाव-छिपाव नहीं है, उसमें कवि की वैयक्तिकता है। इन्होने नारी संबंधी सौन्दर्य एवं प्रेम का चित्रण करते समय स्थूल क्रिया-व्यापारों के चित्रण पर बल नहीं दिया है, भाव-दिशाओं का चित्रण अधिक है। इनकी प्रणय गाथा का अंत प्रायः दुःख, निराशा तथा असफलता में होता है। अतः उसमें मिलन अनुभूतियों की अपेक्षा विराहानुभूतियों का चित्रण अधिक हुआ है और इस कार्य में इन्हें पूर्णतः सफलता भी मिली है। जैसा कि पन्त जी लिखते हैं –

शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर , विरह अहह कराहते इस शब्द को।
किसी कुलिश की तीक्ष्ण चुभती नोंक से, निठुर विधि ने आँसुओं से है लिखा।

४) **रहस्यभावना:** कुछ आलोचक रहस्यवाद को छायावाद का प्राण मानते हैं। महादेवी वर्मा के अनुसार, "विश्व के अथवा प्रकृति के सभी उपकरणों में चेतना का आरोप छायावाद की पहली सीढ़ी है तो किसी असीम के प्रति अनुराग जनित आत्म विसर्जन का भाव अथवा रहस्यवाद छायावाद की दूसरी सीढ़ी है॥" छायावाद के प्रत्येक कवि ने

फैशन के रूप में, नाम कमाने के रूप में या आंतरिक, अनुभूतियों के प्रदर्शन के रूप में रहस्यवादी भावना की अभिव्यक्ति की है। जैसे -

"पिय, चिरंतन है सजनि, क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं,
तुम मुझमैं। फिर परिचय क्या?"

पन्त जी 'मौन निमंत्रण' कविता में जिज्ञासामयी रहस्य भावना से अनुप्राणित दिखाई देते हैं। प्रकृति पर आधारित उनकी रहस्य चेतना का एक मार्मिक उदाहरण देखिये –

उस फ़ैली हरियाली में, कौन अकेली खेल रही माँ,
वह अपनी वय वाली में, सजा हृदय की थाली में।

प्रसाद, पन्त और महादेवी वर्मा आदि छायावादी कवियों ने उस परब्रह्म के प्रति कौतूहल, जिज्ञासा, आश्चर्य और विषमय आदि भावों से आपूरित होकर रचनाएँ की हैं। इनकी रहस्यात्मकता विरहानुभूति से उपजी है। यहाँ मिलन की नहीं, मार्मिक विरह की व्यंजना व्यक्त हुई है। महादेवी वर्मा का रहस्यवाद तो उनकी आंतरिक पीड़ा की अभिव्यक्ति है –

क्या पूजा क्या अर्चन रे ?
उस असीम का सुन्दर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे !
मेरी श्वासें करती रहतीं नित-प्रति का अभिनन्दन रे !

निराला जी की कविताओं में भी भक्तिपरक रहस्य भावना देखी जा सकती है। उनकी रचनाओं पर अद्वैतवाद का प्रभाव भी दिखाई देता है।

५) **देश प्रेम एवं राष्ट्रीयता की भावना :** छायावादी कवियों ने रहस्यवाद के साथ-साथ राष्ट्रीय भावना एवं देशप्रेम की भावना की भी सुंदर अभिव्यक्ति की है। राष्ट्रीय जागरण काव्य राष्ट्रीय भावना को सदा साथ लेकर चला है। ये भावनाएँ कभी प्रकृति के प्रति अनुराग व्यक्त करती है -

"अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को
मिलता एक सहारा।"

तो कभी राजनीतिक आंदोलन के प्रति सक्रिय प्रेरणा भी प्रदान करती हैं। जैसे -

"मुझे तोड़ लेना वनमाली,
उस पथ पर तुम देना फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जावें वीर अनेक॥"

चूँकि, छायावादी काव्य दो महायुद्धों के बीच का काव्य है और भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के भी चरमोत्कर्ष का यह समय है इसलिए राष्ट्रीयता की भावना का संचार इन कवियों के लिए समय की माँग भी थी। जनजागरण का सन्देश संप्रेषित करना

इनका मूल मंतव्य है। निराला जी की कविता में भी राष्ट्रीयता का भाव विविध रूपों में व्यंजित हुआ है।

भारति जय विजय करे , कनक शस्य कमल धरे

तथा

क्लेद मुक्त अपना तन दूँगा
मुक्त करूँगा तुझे अटल।

यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि छायावाद की समयावधि में राजनीति के माध्यम से महात्मा गाँधी ने देश के लिए जो कार्य किया देशप्रेम की उस भावना को अपने काव्य के माध्यम से सामान्य जनता तक पहुँचाने का वही महत्त्वपूर्ण कार्य छायावादी कवियों ने किया।

६) वेदना और निराशा

छायावादी कवि अपने काव्य में अपने जीवन की वेदनाओं को ही अभिव्यक्त करता हुआ दिखाई देता है। यह वेदना कहीं करुणा के रूप में तो कहीं निराशा के रूप दिखाई देती है। प्रसाद जी एवं महादेवी वर्मा के काव्यों में अभिव्यक्त वेदना, सेवावाद, मानवतावाद तथा आध्यात्मवाद पर आधारित है। जैसा की - महादेवी वर्मा जी लिखती है -

"प्रिय! जिसने दुःख पाला हो!
वर दो यह मेरा आँसू,
उसके उर की माला हो!
मैं दुःख से श्रृंगार करूँगी "

महादेवी वर्मा के काव्य में यह वेदना आत्मा और परमात्मा के विछोह के रूप में उद्वेलित हुई है।

प्रसाद जी के काव्य में वियोग के अनेक रूप प्रस्फुटित हुए हैं। उनकी यह वेदना-भावना मनु के साथ अधिक सादृश्य ग्रहण करते हुए दिखाई पड़ती है। इसके अतिरिक्त वे अन्यत्र भी अपनी वेदनाजनित आँसुओं की चर्चा करते हैं। 'आँसू' में वे लिखते हैं

जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने आई॥

७) पलायनवादिता: छायावादी कवियों में वेदना के साथ पलायनवादिता भी देखाई देती है। ये कवि यथार्थ के बंधनों से ऊब कर प्रकृति, रहस्य, कल्पना और क्रांति के स्वप्न लोकों में पलायन करते हुए दिखाई देते है -

"ले चल वहाँ भलावा देकर,
मेरे नाविक धीरे-धीरे।
जिस निर्जन में सागरलहरी,
अंबर के कानों में गहरे,

निश्चल प्रेम कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनि रे॥"

८) **मानवतावाद :** छायावाद हिन्दी साहित्य का ऐसा काल खंड है जिसमें मानव-जीवन अपनी सम्पूर्ण विराटता के साथ प्रकट हुआ है । इस काल का काव्य तत्कालीन मानवजीवन का समीपी जीवन चित्र प्रस्तुत करता है। इन कवियों के काव्य में उपेक्षित और दीन –हीन व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति, शोषकों के प्रति घृणा तथा समस्त मानव जाति के कल्याण के लिए मंगल भावना दिखाई देती है । कल्याण की यही भावना कामायनी में भी देखी जा सकती है –

औरों को हँसते देखो मनु, हँसो और सुख पाओ ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो, जग को सुखी बनाओ ।

पन्त जी की अनेक कविताओं में भी मानवता के कल्याण की भावना देखी जा सकती है। निरला साहित्य में पीड़ितों के प्रति असीम संवेदना उमड़ती दिखाई देती है –

मानव मानव से नहीं भिन्न ,
निश्चय, हो श्वेत कृष्ण अथवा
वह नहीं क्लिन्न
भेद कर पंक
निकलता कमल जो मानव का
वह निष्कलंक,
हो कोई सर ।

इस रूप में त्याग , सेवा, उदारता, सहानुभूति, सद्भाव, समता और लोक कल्याण की कामना आदि विविध भाव इन कविताओं में सर्वत्र देखे जा सकते हैं ।

छायावाद में काव्य संबंधी दृष्टिकोण कल्पनात्मक रहा है और उसमें सुंदर तत्त्व की प्रधानता बनी रही। छायावादी कवि के इस आदर्शवादी कल्पनात्मक दृष्टिकोण को उसके कला पक्ष में भी देखा जा सकता है।

९) **युग का प्रभाव :** यद्यपि की छायावादी युग में व्यक्तिवादिता का ही प्रभाव अधिक रहा फिर भी वैज्ञानिक युग की बौद्धिकता और युग का प्रभाव भी इस काल की कविताओं पर दिखाई देता है। छायावादी कवियों ने वैज्ञानिक चेतना से भी प्रभाव ग्रहण किया है । अतिशय बौद्धिकता इसी वैज्ञानिक चेतना की उपज है । प्रसाद के महाकाव्य 'कामायनी' में युग के समस्त घात-प्रतिघातों का प्रतिबिंब स्पष्ट है। मानवता के विजय की कामना करते हुए प्रसाद जी लिखते है कि,

"शक्ति के विद्युत कण, जो व्यस्त,
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय
समन्वय उनका करें समस्त
विजयिनी मानवता हो जय।"

पंत जी के काव्य में भी विकासवाद का वर्णन मिलता है। जैसे -

"जो है समर्थ जो शक्तिवान,
जीने का अधिकार उसे।"

यहाँ कहना उचित होगा कि यह युग विज्ञान का युग है अतः उससे कवियों का प्रभावित होना स्वाभाविक है।

१०) श्रृंगारिकता की भावना एवं ऐंद्रिकता

छायावादी काव्य विशुद्ध सौंदर्यवादी और प्रेमवादी काव्य है। किन्तु, इसमें कहीं-कहीं ऐंद्रिकता और अश्लीलता की भावना अपरिपक्व एवं उच्छृंखल कवियों में पाई जाती है। प्रसाद, महादेवी वर्मा तथा पंत और निराला आदि में श्रृंगार की भावना का संयमित रूप दिखाई देता है। जैसे-

"तुम कनक किरण के अंतराल में, लुक-छिपकर चलते हो क्यों।
मत मस्तक गर्व वहाँ करते, यौवन के धन रसकन ढरते।।" (जयशंकर प्रसाद)

वहीं बच्चन जी लिखते हैं कि,
"तब तक समझूँ कैसे प्यार, अधरों से जब तक न कराये,
प्यारी उस मधु रस का पान।"

छायावादी कवियों नें श्रृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन किया है। इनकी कविताओं में कहीं-कहीं मांसल श्रृंगार की भी अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है। निराला जी अपनी 'शेफालिका' कविता में लिखते हैं -

बंद कंचुकी के सब खोल दिए प्यार से
यौवन उभार ने / पल्लव पर्यंक पर सोती शेफालिके।
मूक आह्वान भरे – लाल सी कपोलों के
व्याकुल विकास पर
झरते हैं शिशिर से चुम्बन गगन के।

छायावादी कवियों की श्रृंगारी भावना अति सूक्ष्म है। यद्यपि कि इन कवियों नें कहीं-कहीं पर स्थूल श्रृंगार को भी रूपायित किया है, लेकिन इसकी व्याप्ति व्यापक नहीं है।

११) दार्शनिक चिंतन : छायावादी कविता में अनेक प्रकार की दार्शनिक विचारधाराओं का संगुफन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इन कवियों के साहित्य में वेदों-उपनिषदों का प्रभाव तो दिखाई पड़ता ही है, साथ ही साथ रवीन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी विवेकानंद, महात्मागाँधी और महर्षि अरविदं की विचारधाराओं की छाप भी है। इनके काव्य में दर्शन के कई रूप देखे जा सकते हैं। प्रसाद जी ने शैवागामों से प्रभावित होकर आनंदवाद की प्रतिष्ठा की है और कामायनी का साध्य – आनंद स्वीकार किया है –

समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था
चेतनता एक विलसती, आनंद अखंड घना था।

इसी प्रकार पन्त जी ने वेदों-उपनिषदों, अरविंद, महात्मागाँधी और विवेकानंद से प्रभाव ग्रहण कर काव्य प्रणयन किया। महादेवी वर्मा के काव्य में बौद्ध दर्शन का सविस्तार उल्लेख मिलता है और निराला जी की कविता 'तुम और मैं' में भी अद्वैत दर्शन देखा जा सकता है।

भाषा की भास्वरता और शब्दविन्यास : खड़ी बोली की प्रतिष्ठा , परिष्कार और परिमार्जन द्विवेदी युग में ही संपन्न हो गया था, छायावाद में उस खड़ी बोली ने अपना काव्यात्मक और कलात्मक रूप प्राप्त किया। छायावादी कवियों का शब्द भण्डार संस्कृत की तत्सम शब्दावली बंगला, अंग्रेजी, उर्दू-फारसी, और देशज आदि शब्दों से समृद्ध है। ये कवि शब्द चयन में बाहरी प्रभावों से अधिक प्रभावित दिखाई देते हैं। निराला की 'जूही की कली' कविता पर बँगला का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। अंग्रेजी ने भी इन कवियों को दूर तक प्रभावित किया है।

वास्तव में छायावादी साहित्य का कलापक्ष भी उतना ही सुंदर है जितना उसका भाव पक्ष है। इन कविताओं में प्रतिकात्मकता, चित्रात्मकता, भाषा एवं लाक्षणिक पदावली के साथ-साथ गेयता भी पाई जाती है। छायावादी कवि केवल साहित्यिक ही नहीं वरन संगीत का भी कुशल ज्ञाता है। छायावाद का काव्य छंद और संगीत दोनों दृष्टियों से उच्च कोटि का है। अलंकार योजना में इन कवियों ने प्राचीन अलंकारों के अतिरिक्त अंग्रेजी के दो नवीन अलंकारों - मानवीकरण तथा विशेषण विपर्यय का भी अधिक उपयोग किया है। प्राकृतिक पदार्थों प्रातःकाल, संध्याकाल, बादल, सूर्य, चंद्रमा आदि जहाँ पर मानवीय भावनाओं का आरोप किया गया है वहाँ मानवीकरण है। कल्पना की अतिवादिता ने छायावाद को हमारे जीवन से दूर कर दिया और यही इसके पतन का कारण भी बना। कल्पना, क्लिष्टता के कारण जहाँ एक ओर इसमें अस्पष्टता आई वहाँ इसे अपेक्षित जनप्रियता भी प्राप्त न हो सकी। फिर भी छायावाद आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक मील का पत्थर साबित हुआ। छायावाद के आधार स्तम्भ प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी जी ने हिन्दी साहित्य संसार को जो निधि प्रदान की वह हिन्दी साहित्य के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। डॉ. देवराज के अनुसार 'वस्तुतः आधुनिक हिन्दी काव्य को सुन्दर शब्दकोष और कोमल मधुर अनुभूतियाँ छायावाद की ऐतिहासिक देन हैं।' छायावाद आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक महान आन्दोलन के रूप में उभर कर आया और भाव तथा शैली दोनों स्तरों पर एक नई क्रांति के रूप में देखा गया।

४.४ प्रगतिवादी हिन्दी कविता

प्रगतिवाद जीवन के प्रति एक स्वस्थ्य एवं सामयिक दृष्टिकोण है। इसमें जनता की उस आशा, आकांक्षा एवं कर्मेच्छा की अभिव्यंजना हुई है जो देश, समाज और मनुष्य को राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं बौद्धिक आस्था से मुक्त होने की प्रेरणा देती है। छायावाद की प्रेम सौन्दर्य की भावव्यंजना प्रगतिशील भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त सिद्ध नहीं हुई। छायावादी 'छन्द- बन्ध' भी इस प्रगतिशील भाव सरिता को अपने कूलों (किनारा) में बांधने में समर्थ नहीं हुआ। अतः मुक्त छन्द की अवतारणा हुई जिसमें मुक्त भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रहारपूर्ण धारा में हुई। निराला जी के शब्दों में "वह कविता की स्त्री सुकुमारिता के विरूद्ध

कवित्व का पुरुष गर्व है। प्रगतिशील यथार्थवाद के लिए मुक्त छन्द अत्यंत उपयुक्त सिद्ध हुआ।" पंत जी ने 'युगांत' में छायावाद का अंत करते हुए युग वाणी में जनवादी विचारधारा को अपनाया। 'ग्राम्या' में प्रगतिवाद मान्यताओं का व्यापक प्रयोग है। प्रगतिवाद का आलंबन जन-जीवन है और भारत में जन-जीवन के केंद्र हैं गाँव। डॉ. रामविलास शर्मा ने प्रगतिवादी कविता के संबंध में लिखा है कि, "यह युग की माँग को पूरा करनेवाला साहित्य है। इसकी शक्ति इस बात में है कि, वह समाज के वास्तविक जीवन के निकट है।"

वास्तव में प्रगतिवादी साहित्यिक आन्दोलन का मूल उद्देश्य साहित्य में यथार्थवाद की स्थापना करना था। इस 'वाद' या साहित्यिक आन्दोलन में यह प्रतिबद्धता जर्मन विचारक कार्लमार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद से प्रेरित एवं प्रभावित होने के कारण आई। इस प्रकार इस वाद का आगमन आदर्शवाद के विरोध में हुआ। इसके लिए कार्लमार्क्स, लेनिन, वहाँ की मजदूर और किसानों द्वारा निर्मित सरकार तथा लाल सेना आदर्श बनी। इसीलिये प्रगतिवाद को मार्क्सवादी चिंतनधारा या साम्यवादी देशन का साहित्यिक संस्करण कहा गया। सामान्य रूप से इसका काल सन १९३८ से १९४३ तक माना गया। लेकिन, यह विचारधारा आज भी जीवित है और इसके भावों को केंद्र में रखकर रचनाएँ हो रही हैं।

प्रगतिवाद की काव्यधारा के प्रमुख कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, डॉ. रागेय राघव, डॉ. रामविलास शर्मा, भैरवप्रसाद गुप्त, भवानीप्रसाद मिश्र, त्रिलोचन, अमृतराय, राजेंद्र यादव, डॉ. महेंद्र भटनागर आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है।

४.५ प्रगतिवादी काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएँ

प्रगतिवादी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियों को निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है:

१) **सामाजिक यथार्थवाद :** जनसमूह की आर्थिक विषमता एवं राजनीतिक चेतना से उद्भुत इस जनवादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति सामाजिक यथार्थवाद की है। सामंती तथा पूँजीवादी व्यवस्था प्रधान भारतीय समाज के हर क्षेत्र में व्याप्त विकृतियों – रूढ़ियों, परम्पराओं, अंधविश्वासों, अथवा मान्यताओं से इस युग का कवि क्षुब्ध है। उसका मानना है कि इनके रहते सुन्दर समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। धर्म और अंधविश्वासों के नाम पर भोली – भाली जनता का जो शोषण हो रहा है वह एक प्रकार का शोषण है और यह सब बंद होना चाहिए और सभी के जीवनावश्यक वस्तुओं की पूर्ति होनी चाहिए -

"तन को दो आहार अन्न का,
मन को चिंतन का अधिकार।तन मन दोनों बढ़े अगर तो,
चमक उठे सचमुच संसार॥"

यदि छायावादी काव्य में कल्पना प्रवण अंतर्दृष्टि का पल्लवन हुआ तो प्रगतिवादी काव्य में सामाजिक यथार्थ दृष्टि मूल मंत्र के रूप में अभिव्यक्त हुई। यही प्रगतिवादी दृष्टिकोण है। विलासी उच्च समाज के आधार स्तम्भ कृषक और मजदूर है उन्हीं कृषक और मजदूरों को प्रगतिवाद ने अपने काव्य में प्रमुख स्थान दिया है। इसलिए इनकी कविताएँ

ग्रामीण जीवन के प्रति सहानुभूति सर्वत्र देखी जा सकती है जैसा कि - केदारनाथ अग्रवाल लिखते है कि -

"सड़े घूरे की बदबू से दबकर,
महक जिंदगी के गुलाब की मर जाती है।"

भूख से बेहाल मानव का मार्मिक चित्रण निराला जी की 'भिक्षुक' कविता में भी देखा जा सकता है ।

२) **सामाजिक समस्याओं के प्रति सचेष्टता :** प्रगतिवादी कवि सामाजिक जीवन की विभिन्न घटनाओं एवं परिस्थितियों की व्यंजना करता है। वह कल्पना लोक की उड़ानें नहीं भरता बल्कि अपने सामाजिक यथार्थ को अपनी कविताओं में स्थान दिया है । इस प्रकार जीवन और काव्य को अधिकाधिक घनिष्ठ बनाने के चेष्टा की गई । प्रगतिवाद का स्पष्ट विचार है कि -

"जो न समय की दर्दीली साँसों में मित बने,
गीतकार, ऐसे गीतों को धरती कभी न गाएगी।"

प्रगतिवादी आलोचकों का मत है कि कविता का संबंध सामाजिक वास्तविकता से है और वही कविता उत्कृष्ट है जो वास्तविकता के प्रति सजग और संवेदनशील है। ये प्रगतिवादी कवि देश की समस्याओं के प्रति तो जागरूक हैं ही इससे आगे बढ़कर विश्व में कहीं भी मानवता के प्रति अन्याय होने पर अपनी संवेदना प्रकट करते है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अमेरिका द्वारा जापान पर गिराए गए परमाणु बम का प्रगतिवादी कवियों ने सम्पूर्ण मानवजाति पर एक अमानवीय आक्रमण माना । इसीलिये 'हिरोशिमा का शाप' कविता में कवि का कहता है कि -

"एक दिन न्यूयॉर्क भी मेरी तरह हो जाएगा,
जिसने मिटाया है मुझे वह भी मिटाया जाएगा।
आज ढाई लाख में कोई नहीं जीवित रहा,
न्यूयॉर्क में भी एक दिन कोई नहीं रह पाएगा।।"

इसीप्रकार राष्ट्रपिता महात्मागांधी के ऊपर चली गोलियों से प्रगतिवादी कवि आहात हो जाता है –

बापू मरे .....
अनाथ हो गई भारत माता
अब क्या होगा .....

इसप्रकार इन प्रगतिवादी कवियों ने प्रारम्भ से ही बंगाल के अकाल, हिंदुस्तान का बँटवारा, हिन्दू-मुस्लिम झगड़े, भुखमरी, बाढ़, महामारी, महंगाई आदि सभी सामयिक घटनाओं पर अपनी जागरूकता प्रकट की है।

३) **बौद्धिकता और व्यंग्य का प्रसार :** वैसे तो आधुनिक काल में द्विवेदी युग से ही साहित्य में बौद्धिकता का समावेश हुआ है। यह यंत्र युग की देन है। इसी कारण साहित्य में भी वैज्ञानिक दृष्टि से प्राचीन रूढ़ियों एवं मान्यताओं का विश्लेषण हुआ। प्रगतिवाद में इस बौद्धिक दृष्टि का रूप जनजीवन की समस्याओं में दिखाई पड़ता है। कवि सुधार की भावना से प्रेरित होकर सामयिक समस्याओं के वर्णन में व्यंग्य दृष्टि जोड़ देता है। वह पूंजीवाद को, उसकी शोषण प्रवृत्ति को, आधुनिक राजनीति को उसकी झूठी लीडरी को तथा अन्य आर्थिक और सामाजिक विषमताओं के समर्थकों को अपने व्यंग्यों का लक्ष्य बनाता है। 'पंत जी' 'ग्राम्या' में आर्थिक कमजोरी का वर्णन करते हुए एक भिखारी के संबंध में लिखते है -

"भुला है, कुछ पैसे या गुनगुना,
खड़ा हो जाता है वह,
पिछले पैरों के बल उठ,
जैसे कोई चल रहा जानवर ।"

वही डॉ. मल्लखान सिंह की एक कविता में भी वेदनासिक्त वर्णन व्यंग्यात्मक रूप में अभिव्यक्त हुआ है -

"किसने यह संसार बनाया,
किसने रचा समाज,
श्रमजीवी का भाग भूख है,
कामचोर का काज ।"

इस प्रकार प्रगतिवादी कवियों ने सामाजिक विडम्बनाओं पर करारी चोट की है ।

४) **परिवर्तन की पुकार / क्रांति की भावना:** प्रगतिवाद में प्राचीन का परिवर्तन कर नवीन युग के अनुकूल बनाने के प्रेरणा है। इस पुकार में कवियों की क्रांति की भावना मुखरित हुई है। इस काल का कवि जीर्ण रूढ़ियों- परम्पराओं के विनाश के साथ-साथ शोषक वर्ग का भी विनाश चाहता है । इसलिए इस काल का कवि सामाजिक एवं राजनीतिक दुर्व्यवस्था से पीड़ित होकर विप्लव गान करता है -

"कवि कुछ ऐसी तान सुनाओं,
जिससे उथल-पुथल मच जाए,
नियम और उपनियमों के,
बंधन टूक-टूक हो जाएँ,
विश्वंभर की पोषक वीणा के,
सब तार मूक हो जाएँ ।"

इस काल का कवि समाज के गलित अंगों को अलग करके उसके शरीर को दृढ़ और सुरक्षित बनाना चाहता है। कार्लमार्क्स की तरह ही इस विचाधारा का कवि रक्त-क्रांति से भी नहीं डरता है । उसकी इच्छा है कि सम्पूर्ण विष का सर्वहारा वर्ग सुख-शांतिमय जीवन तभी व्यतीत कर सकेगा जब शोषकों का सम्पूर्ण विनाश हो जाएगा । इस कार्य

के लिए कवि केदारनाथ अग्रवाल साहित्य एवं कला से जुड़े लोगों का आह्वान करते हुए लिखते हैं –

हे दधीचि ! शक्ति डंका बजाओ,शांति का उल्लास सूरज उगाओ।
लाल सोने का सबेरा चमचमाओ , लेखनी के लोक में आलोक लाओ।

५) **सांस्कृतिक समन्वय की भावना :** कुछ प्रगतिशील रचनाकार एक नवीन विश्व संस्कृति की कल्पना करते हैं। मार्क्स ने जब यह कहा था कि आर्थिक व्यवस्था के आधार पर संस्कृति का निर्माण हो, तो उसका मतलब यह था कि, पुरानी संस्कृति के तत्त्व और स्वरूपों को साहित्यकार अपने में समेटकर अधिक पुष्ट और विकसित करे। इस प्रकार एक नवीन समन्वयात्मक संस्कृति को जन्म मिला। पंत जी के काव्य में सांस्कृतिक समन्वय की चर्चा है जिसके मूल में अरविंद का चेतनावाद और मार्क्स का समाजवाद है। पंत जी ने एक ऐसी संस्कृति की कल्पना की है जिसमें धर्म, जाति, वर्ण आदि के भेदभाव मिट जाएंगे और केवल मानव स्वभाव ही सुंदर मानव आदर्श बनकर अपूर्ण को पूर्ण और सुंदर बनाएगा -

"आज वृहत्त सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित,
खंड मनुष्यता को युग-युग की होना है नवनिर्मित,
विविध जाति, वर्गों, धर्मों को होना है सहज समन्वित,
मध्य युगों की नैतिकता को मानवता में विकसित॥"

६) **राष्ट्रीयता एवं अंतर्राष्ट्रीयता की भावना :** प्रगतिवादी कविता में इन दोनों भावनाओं का विकास हुआ। यहाँ राष्ट्रीयता एवं देशप्रेम की भावना का स्वरूप देश के अतीत गौरवगान से भिन्न है। इस काल का कवि अपने जनपद, प्रदेश, देश आदि की ओर देखकर प्रसन्न होता है। इन कवियों ने राष्ट्रीय भावना के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय भावना का भी विकास किया। प्रगतिवादी विचारधारा के अनुसार विश्व में पूंजीवादी अर्थ नीति से पीड़ित निम्नवर्ग का एक विशाल समुदाय निर्मित हो गया है। इन्हीं मजदूरों और दीनजनों की प्रगति इस काल का कवि चाहता है। चूंकि, रूस इस दिशा की तरफ बढ़ रहा था इसलिए उसके प्रति इन कवियों में सद्भावना के विचार मिलते है। जैसे -

"लाल रूस है, ढाल साथियों,
सब मजदूर किसानों की,
वहाँ राज है पंचायत का,
वहाँ कहाँ है बेकरी ॥"

इसके अतिरिक्त वैश्विक स्तर पर मैत्री की कामना भी इन कवियों ने की है -

"मुक्त भारत रहेगा, तब,
शांति-समता-पंथ-सहचर।
न्याय-नय का ध्वज उड़ाते,
चलोगे तुम युगल रहबर।"

७) **मानवता की महत्ता का प्रकाशन :** सामाजिक यथार्थ की दृष्टि को अपनाकर भी प्रगतिवादी कहीं भी निराश नहीं होता। उसे मानवता की असीम शक्ति पर विश्वास है। प्रगतिशील कवियों ने कर्म का संदेश सुनाया है उठते हुए व्यक्ति को उठाया है और मानवता की शक्ति पर इतना विश्वास करता है कि, ईश्वर के अस्तित्व पर भी उसे संदेह होने लगता है। जैसे -

"जिसे तुम कहते हो भगवान,
जो बरसाता है जीवन में,
रोग-शोक-दुख-दैन्य अपार,
उसे सुनाने चले पुकार?"

प्रगतिवादी कवि मानव को संसार की सर्वश्रेष्ठ रचना मानता है । उसके पास असीम शक्ति है। उसे अपने विकास के लिए भाग्य और ईश्वर नहीं बल्कि अपनी शक्ति पर विश्वास करना चाहिए । वह मानव की अनंत शक्ति के प्रति संकेत करते हुए कहता है –

सामने तूफ़ान है, पर बड़ा इंसान है ,
पैर से जिसने मिटा दी, संकटों की सृष्टि सारी ।- (महेंद्र भटनागर)

८) **प्रेम का शुष्क एवं सामाजिक रूप :** कुछ आलोचक प्रगतिवाद पर नीरसता एवं शुष्कता का आरोप लगाते हुए उसमें प्रेम वर्णन के अभाव का संकेत देते है। वस्तुतः यह धारणा गलत है। प्रगतिवादी को भी प्रेम और उसका दुखड़ा है किन्तु जीवन में अन्य कष्टों के आगे उसका स्वर दब जाता है। डॉ. रांगेय राघव का मानना है कि, "प्रेम का अपना स्थान है। प्रगतिवादियों ने प्रेम के प्रति प्रायः उदासीनता दिखाई है क्योंकि उन्होने प्रेम को उच्च वर्ग की विरासत माना है।" इनके अनुसार प्रेम भौतिक पर आश्रित होता है न की काल्पनिक पर। दो मनुष्यों की चेतना का समाश्रय प्रेम जब हृदय में उत्पन्न होता है तब व्यष्टि की भूमि में समष्टि का बीज पड़ता है और एक व्यापकता सामने आती है -

"कि चूम लिया तुमने प्यार से,
मेरी मुग्ध मुँदी पालको को
कि पुलकित हो ज्यों ही,
खोलकर आँखे देखा मैंने,
तुम्हारा वह अमिताभ मुखमंडल।
कि, लो खुल पड़े सत्ता के,
अगम देवालय के वातायन॥.....
शिशु की मुस्कान सी निर्मल,
यह दुग्ध धारा।
मानव की चिरकाम्या तुम्हारे प्यार की,
संजीवनी सुधा धारा।"

९) **नारी स्वातंत्र्य की पुकार :** प्रगतिवादी कवियों ने नारी को भी शोषित माना है। वह पुरुष की दासी बनकर बहुत समय से उसकी छाया बनी है और अपना स्वतंत्र अस्तित्व

खो बैठी है। इस प्रकार नारी को विलास की सामग्री माननेवाले सामंती आदर्शो का उन्होने खुलकर विरोध किया। जैसे -

"योनि नहीं हैं रे नारी,
वह भी मानवी प्रतिष्ठित।
उसे पूर्ण स्वाधीन करो,
वह रहे न नर पर अवसित ॥"

इस काल के कवियों ने नारी उत्थान को समाज के विकास के लिए अति आवश्यक माना। उनका मानना है कि नारी को आत्मनिर्भर बनना होगा। पुरुष की पराधीनता से वह तभी मुक्त हो सकती है। एक तरफ 'पन्त' जी ने कहा कि – ' मुक्त करो नारी को, सर्जक पत्नी प्यारी को' तो वहीं निराला जी 'विधवा' शीर्षक कविता में नारी के प्रति वेदना व्यक्त करते हुए लिखते हैं –

'वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी,
वह दीप शिखा सी शांत, भाव में लीन,
वह क्रूर काल – तांडव की समिति रेखा - सी
वह टूटे तरु की लता से दीन,
दलित भारत की विधवा है।'

यहाँ तक कि, इन प्रगतिवादी कवियों में पशु की भाँति रुदन करने वाली अबला के स्वतंत्रता की पुकार तथा वेश्या वर्ग के प्रति भी सहानुभूति दिखाई देती है। वेश्या वर्ग को प्रगतिवादी कवि मनुष्य की वासना का जीवित प्रतीक मानते है -

"माता बनी दुग्ध भर आया, किन्तु न भरता पापी पेट,
जननी बनकर भी पशुओं में, वहीं सकेगी लेट।"

१०) **साम्यवादी व्यवस्था का यशोगान :** भारत में प्रगतिवादी आन्दोलन पाश्चात्य की देन है। कार्ल मार्क्स ने जिस साम्यवादी दर्शन की परिकल्पना की, उसके आधार पर उसे पहली सफलता रूस में प्राप्त हुई। अक्टूबर १९१७ में रूसी क्रांति के फलस्वरूप राजसी का अंत हुआ और किसानों, मजदूरों तथा कामगारों की सरकार स्थापित हुई। प्रगतिवादी कवियों को भारतीय समाज में व्याप्त पूँजीवादी एवं सामन्ती व्यवस्था के विनाश के लिए साम्यवादी सिद्धांत ही सर्वाधिक उपयुक्त लगी तथा सोवियत रूस की सर्वहारा सरकार उन्हें आदर्श प्रतीत हुई। इसलिए ये कवि उस शासन व्यवस्था तथा लाल सेना का यशोगान करते रहे। इस परिप्रेक्ष्य में रांगेय राघव का 'अजेय खंडहर' प्रबंध काव्य विशेष चर्चित रहा। इस सन्दर्भ में शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कविताओं को भी देखा जा सकता है। रांगेय राघव ने तो रूस को गरीबों का मसीहा माना है –

लाल झंडा, लाल तारा, लाल सेना घर उसकी
वह समाधि हृदय –हृदय की आज अभिवादन रहे कर
वह गरीबों का मसीहा, दीप – सा अब भी चमकता
क्रान्ति के इस कठिन पथ पर एक आशा बन दमकता।

११) **प्रगतिवाद काव्य का कला-पक्ष :** प्रगतिवादी कवियों ने अपने समाज हितकारी विचारों को जन-जन को ग्राह्य बनाने के लिए सरक, व्यावहारिक भाषा अपनाई। यही कारण है कि इस काल की कविता की भाषा और शैली दोनों सुबोध और सुगम है। जैसा कि, कवि स्वयं कहता है -

"तुम वहाँ कर सको, जन-मन में मेरे विचार।
वाणी मेरी चाहिए, क्या तुम्हें अलंकार॥"

बीसवीं सदी का अधिकांश अवधी काव्य में भी प्रगतिवादी विचारों की अनुगूँज सूनी जा सकती है। भोजपुरी और राजस्थानी में भी इन कवियों सरल सुबोध भाषा का प्रयोग किया है। छंद की दृष्टि से इन कवियों ने जनगीत एवं लोकगीतो की शैली अपनाकर नई धुनों का सृजन किया है। भाषा की दृष्टि से भी इन कवियों में प्रगति के दर्शन होते हैं। इनके यहाँ छंद की गति, लय, भाषा की सरलता एवं शब्दों की योजना बड़ी ही स्वाभाविक है। यहाँ कवि पन्त जी लिखते हैं कि -

"खुल गए छंद के बंध, प्रास के रजत पाश।
अब गीत मुक्त औ, युगवाणी बहती आयास॥"

वास्तव में प्रगतिवादी कवियों ने पूरी तरह से सामान्य जीवन के दुःख-दर्द को अपने काव्य में उकेरने का प्रयास किया है। इन्होनें कला के क्षेत्र में दैनिक जीवन को स्थान दिया है। डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त के अनुसार 'इस वर्ग के अनेक कवि मूलतः छायावादी हैं , जिन्होंने बीच-बीच में प्रगतिवादी कवितायें भी प्रस्तुत की हैं। इस प्रकार के कवियों में मुख्यतः सुमित्रानंदन पन्त, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भगवतीचरण वर्मा, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', माखनलाल चतुर्वेदी, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', नरेन्द्र शर्मा, आदि का नाम उल्लेखनीय है।' इसके अतिरिक्त दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी, गोपालशरण सिंह तथा सुभद्राकुमारी चौहान आदि कवियों का नाम प्रगतिवादी कवियों में सम्मान के साथ लिया जाता है।

४.६ सारांश

छायावादी काव्य व्यक्तिवादी काव्य है इसीलिए छायावादी कविता में मानव जीवन की आशा-निराशा अभिव्यक्त हुई है आधुनिक जीवन शैली के चलते इस काव्य में एकांतता और असंतोष और स्वप्न लोक में विचरण करती मानवीय दृष्टिकोण प्रदर्शित होता है। प्रगतिवादी काव्य सामाजिक यथार्थवादी सौंदर्य दृष्टि के दर्शन करता है। यह मानवतावादी साहित्य है जिसमें उस तबके का वर्णन हुआ जो सदियों से दरिद्रता, अज्ञानी और गुलामी का जीवन जीते आये है।

४.७ बोध प्रश्न

१. छायावाद की काव्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

२. छायावाद के संबंध में कवियों आलोचकों के विचारों का परिचय दीजिए।

३. प्रगतिवाद कविता का दार्शनिकता का परिचय दीजिए।

४. प्रगतिवादी काव्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

४.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१. 'छायावादी' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया?
उत्तर - मुकुट घर पाण्डेय

२. 'छायावादी' को 'स्थूल के प्रति विद्रोह' किस विद्वान ने कहा
उत्तर - डॉ. नगेन्द्र

३. सामान्यतः छायावाद का समय माना जाता है?
उत्तर - सन १९१८ से १९३८ ई. तक

४. 'उस फैली हरियाली में, कौन अकेली खेल रही माँ। वह अपनी वय वाली में, सजा हृदय की थाली में ॥ उकत पंक्तियाँ कौनसे छायावादी कवि ने लिखी है?
उत्तर - सुमित्रानंदन पंत

५. छायावादी कवियों ने अधिकांशतः कौनसी भाषा का प्रयोग किया है?
उत्तर - खडी बोली

६. प्रगतिवादी काव्य का प्रेरणा स्रोत माना जाता है
उत्तर - मार्क्सवाद

७. पंत जी की किस रचना में जनवादी विचारधारा को अपनाया गया है
उत्तर - युगांत

८. प्रगतिवादी काव्य का प्रमुख उद्देश्य था?
उत्तर - यथार्थवाद की स्थापना

९. भवानी प्रसाद मिश्र किस वाद के कवि माने जाते है?
उत्तर - प्रगतिवाद

१०. 'सड़े घूरे की बदबू से दबकर, महक जिंदगी के गुलाब की मर जाती है।" उक्त पंक्तियाँ किस कवि की है?
उत्तर - केदारनाथ अग्रवाल

❄❄❄❄❄❄❄

५

प्रयोगवाद एवं नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

५.० इकाई का उद्देश्य

५.१ प्रस्तावना

५.२ प्रयोगवाद

५.३ प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

५.४ नई कविता

५.५ नई कविता की प्रवृत्तियाँ

५.६ सारांश

५.७ बोध प्रश्न

५.८ लघुत्तरीय प्रश्न

५.९ संदर्भ ग्रंथ

५.० उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रयोगवाद और नई कविता की चर्चा की गई है। इस इकाई के अंतर्गत उक्त दोनों काव्यान्दोलनों की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई के अंतर्गत विद्यार्थी उक्त दोनों कालों की कविताओं का प्रवृत्तिगत अध्ययन कर सकेंगे।

इस इकाई का मूल उद्देश्य आधुनिक हिन्दी साहित्य की मूल प्रवृत्तियों और उस काल के मुख्य कवियों की विचारधाराओं से विद्यार्थियों को अवगत कराना है। इनके अध्ययन से वे आधुनिक हिन्दी कविता के काल विभाजन के साथ-साथ हिन्दी कविता की विकास यात्रा से भी परिचित हो सकेंगे। अतः इस इकाई का मूल उद्देश्य हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रयोगवाद और नई कविता की मूल प्रवृत्तियों से अवगत कराना है।

५.१ प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल, जो हमारी नई सोच और नए दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्त्व करता है, उसके लिए तत्कालीन विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियाँ तो उत्तरदायी थीं ही, साथ ही उन परिस्थितियों के रूप ग्रहण के लिए वह अंग्रेजी सत्ता भी जिम्मेदार थी जिसने वास्तव में हमें प्रत्यक्षतः तथा परोक्षतः पुनर्जागरण के लिए उत्तेजित किया। १९ वीं सदी के उत्तरार्ध में नव चेतना के उदय से जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन हुआ। इस सदी में स्वतंत्रता प्राप्ति की जो ज्योति जली थी वह २० वीं सदी के प्रारंभ में ही एक मशाल के रूप में परिवर्तित हो गई । इस सदी के दूसरे दशक में

महात्मागांधी के आगमन से इस संघर्ष को मानो पंख लग गए और देखते ही देखते यह आन्दोलन भारत के जन-जन तक पहुँच गया। इस परिवर्तन ने हिन्दी साहित्य को भी विविध रूपों में प्रभावित किया। २० वीं शताब्दी में द्विवेदीयुग, छायावाद और प्रगतिवाद के बाद प्रयोगवाद और फिर नई कविता का आगमन होता है। निश्चित ही यह गुलामी का अंतिम दशक और आज़ादी का प्रथम दशक समाज और साहित्य दोनों के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण रहा। इस इकाई के अंतर्गत इन दोनों कालखंडों और उनकी प्रवृत्तियों का अध्ययन किया जाएगा।

५.२ प्रयोगवाद और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ

प्रयोगवाद का प्रारम्भ सन १९४३ में प्रथम 'तार सप्तक' के प्रकाशन से ही माना जाता है। इस 'तार सप्तक' में सात कवियों गजानन मुक्तिबोध, नेमिचन्द जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय की कविताओं का संग्रह हुआ। इसके बाद सन १९५१ में दूसरा सप्तक प्रकाशित हुआ जिसमें भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेरबहादुर सिंह, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय तथा धर्मवीर भारती की कवितायें संग्रहित हैं। समय तथा धारा परिवर्तन के साथ ये कवि नई कविता तथा उसके परवर्ती काव्यान्दोलनों के कवि के रूप में भी जाने तथा पहचाने गए।

प्रगतिवाद जब मार्क्सवादी दर्शन एवं दलगत राजनीति से बद्ध हो गया, उसमें राजनीतिक जागरूकता का प्राधान्य हो गया और सबसे अधिक मध्यमवर्गीय जीवन की चेतना का प्रकाशन करते-करते कविगण ऊब गए तो उनमें अहंवाद एवं वैयक्तिकता की भावना आई। इन भावनाओं को बढ़ानेवाला पाश्चात्य दार्शनिकों का प्रभाव भी महत्त्वपूर्ण है। इनपर फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद और डार्विन के अस्तित्ववाद का विशेष प्रभाव पड़ा। प्रयोगवाद के मूल में भी समाजशास्त्रीय दर्शन है, किन्तु वह वैयक्तिकता एवं अहंवाद से अत्यधिक प्रभावित है। प्रयोगवादी कवियों पर मार्क्स के स्थान पर फ्रायड और डार्विन का अधिक प्रभाव पड़ा। गिरिजाकुमार माथुर प्रयोगवाद के सम्बन्ध में लिखते हैं कि –'प्रयोगों का लक्ष्य है – व्यापक सामाजिक सत्य के खंड-खंड अनुभवों का साधारणीकरण करने में कविता को नवानुकूल माध्यम देना, जिसमें व्यक्ति द्वारा इस व्यापक सत्य का सर्वबोधगम्य प्रेषण संभव हो सके।' वहीं पं. नंददुलारे वाजपेयी जैसे विद्वान इसे एक अस्वस्थ धारा मानते हैं और लिखते हैं कि – 'किसी भी अवस्था में यह प्रयोगों का बाहुल्य वास्तविक सृजन का स्थान नहीं ले सकता।' यहाँ प्रयोगवाद की विशेषताओं को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत देख सकते हैं।

१) **गहन वैयक्तिकता :** प्रयोगवादी कविता में वैक्तिकता की अभिव्यंजना अनेक रूपों में हुई है। इन कवियों की यह घनघोर वैक्तिकता या तो उनका अहं है या उनके अहं भाव से ही उनकी गहन वैयक्तिकता पैदा हुई है। इस काव्यधारा में अहं एक सम्पूर्ण वाद के रूप में आया है। कवि अज्ञेय और नरेश कुमार ने इसे बड़ा विस्तार दिया है। कवि नरेश कुमार एक जगह लिखते हैं –

विश्व के इस रेत-वन पर
मैं अहं का मेघ हूँ
XX XX
क्या नहीं तुम देखते ?
आज मेरे कन्धों पर गगन बैठा हुआ है।

अज्ञेय ने भी इस अहंनिष्ठ वैक्तिकता को अपने काव्य में स्वर प्रदान किया है।

२) **सामाजिकता का अभाव :** प्रयोगवादी कवि समाज कल्याण या वास्तविक यथार्थ के आदर्श को लेकर नहीं चलते। वस्तुतः ये कवि व्यक्ति को समाज में चलते हुए देखने के अभ्यासी नहीं है बल्कि, अपनी वैयक्तिक कुरूपता का प्रकाशन करके समाज के मध्यवर्गीय मानव की दुर्बलता का प्रकाशन करते हैं । इसलिए कहीं-कहीं अपनी यथार्थवादिता एवं ईमानदारी दिखाने के लिए यौन वर्जनाओं एवं कुंठित वासनाओं का चित्रण करते हैं तथा अनेकानेक ऐसे ही कौशलों का सहारा लेते हैं जिसमें मन की नग्नता एवं अश्लील मनोवृत्तियों का चित्रण मिलता है, जैसा कि इस धारा का कवि नारी को नागिन और बाघिन के रूप में चित्रित करता है -

"आओ मेरे आगे बैठो,
जैसी बैठी होती काली
काली नागिन दो जिव्हावाली....
उगलो जहर ओंठ पर.....
जैसे बैठी होती बाघिन
लगता हो,
अब झपटे मानो अब निगले।"

३) **कल्पनाशीलता की प्रक्रिया :** छायावादी कवियों ने प्रकृति के पुराने उपमानों को अपनी कल्पना का रंग देकर मधुरता उत्पन्न किए तो प्रयोगवादी कवियों ने उसकी क्षुद्रता का उद्घाटन करने में ही अपनी यथार्थवादिता का परिचय दिया। प्रयोगवादी कवि जहाँ भी अपनी दृष्टि डालते हैं वहीं से नग्न यथार्थवादिता को ढूँढ लाते हैं। जैसा कि अज्ञेय जी चाँदनी का उपहास करते हुए लिखते हैं -

"वंचना है चाँदनी सित,
झूठ वह आकाश का निरवधि गहन विस्तार,
शिशिर की राका-निशा की शांति है निस्सार !
दूर वह सब शांति, वह सित भव्यता, वह।"

४) **लघुता के प्रति दृष्टिकोण**

प्रयोगवादी कवियों ने अपने असामाजिक एवं अहंवादी प्रकृति के अनुरूप ही मानव जगत के लघु और क्षुद्र प्राणियों पर साहित्यिक दृष्टिपात करके प्रकृति एवं यंत्र जगत की लघु वस्तुओं को अपने काव्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया। इसलिए कविता में पहली बार 'चूड़ी का टुकड़ा', 'बाथरूम', 'गरम पकौड़ी', 'फटी ओढ़नी की चिन्दियाँ', 'तीन टांगों पर खड़ा सिर झुकाया हुआ गधा' इत्यादि का चित्रण हुआ। रात के एक चित्रण में यह प्रवृत्ति यहाँ लक्षित है -

"ठंडी हो रही है सत,
धीमी,
यंत्र की आवाज,
रह-रह गूँजती अज्ञात !
स्तब्धता को चीर देती है

कभी सीटी कहीं से दूर इंजन की
कहीं मच्छर तड़प भन-भन
अनोखा शोर करते हैं,
चूहे भूखे निकलकर

तोड़-ताबड़ जोर करते हैं। (महेंद्र भटनागर-टूटती श्रृंखलाएँ)

५) बौद्धिकता की प्रतिष्ठा

अतिशय बौद्धिकता प्रयोगवादी कवियों की प्रमुख विशेषता है। वे सारे तथ्यों का दर्शन बुद्धि के ही अलोक में करते हैं। प्रयोगवादी कवियों ने भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता की प्रतिष्ठा की जैसा कि, धर्मवीर भारती ने लिखा है, "प्रयोगवादी कविता में भावना है किन्तु हर भावना के सामने एक प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है। इसी प्रश्न चिन्ह को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। सांस्कृतिक ढाँचा चरमरा उठा हैं और यह प्रश्नचिन्ह उसी की ध्वनि मात्र है।" यहाँ इस बौद्धिकता को स्पष्ट करती हुई अज्ञेय की निम्नलिखित पंक्तियाँ दर्शनीय हैं-

"चलो उठें अब,
अब तक हम थे बंधु
सैर को आए -
और बैठे रहे तो
लोग कहेंगे,
धुँधले में दुबके दो प्रेमी बैठे हैं।
वह हम हों भी
तो यह हरी घास ही जाने।"

यहाँ कवि का हृदय समाज से भयभीत है क्योंकि वह अपनी भावुकता को भूलकर बौद्धिकता के विशेष तर्कवाद को अपना चुका है।

५) **प्रेम का स्वरूप :** प्रयोगवादी कवि काव्य में प्रेम का शाश्वत स्वरूप मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित होकर प्रस्तुत करता है। उसमें साधनात्मक प्रेम का अभाव है और मांसल प्रेम एवं दमित वासना की अभिव्यक्ति की प्रचुरता है। प्रयोगवादी कवि अपनी ईमानदारी यौन वर्जनाओं के चित्रण में प्रदर्शित करता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि प्रयोगवादी कवि में न तो प्रेम का सामाजिक रूप है न रहस्यात्मक आवरण वाला और न ही छायावाद के समान सूक्ष्म एवं भावनात्मक। प्रयोगवादी कवि की वासना बादलों को देखकर उदीप्त हो उठती है और वह कहता है -

"आह मेरा श्वास है उत्तत्प -
धमनियों में उमड़ आई है लहू की धार -
प्यार है, अभिशप्त
तुम कहाँ हो नारि?"

६) **विद्रोह का स्वर :** इस काव्यधारा के अंतर्गत कला के क्षेत्र में छंद विधान तथा भाषा शैली के प्रति विद्रोह हुआ और भाव क्षेत्र में प्राचीन रूढ़ियों का परित्याग कर दिया गया।

इसका कारण युद्धोत्तरकालीन मध्यवर्ग की जर्जर व्यवस्था है। मध्यवर्ग ने ही विद्रोह किया और इसी को प्रकट करने के लिए तीव्र उद्गार व्यक्त किए। सामाजिक परिस्थिति की उलझन का जो स्वर 'कुकुरमुत्ता' में मुखरित हुआ था, वह हिन्दी कविता में लम्बे समय तक बना रहा। अज्ञेय की कविता में भी कवि द्वारा आतताई सामाजिक परिवेश को चुनौती देखी जा सकती है -

"ठहर-ठहर आततायी ! जरा सुन ले।
मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा।"

७) **प्रकृति चित्रण :** छायावादी कविता में प्रकृति जिस बहुरंगी आभा के साथ प्रस्तुत हुई है, वह अत्यंत विलक्षण है। यहाँ अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती और नरेश मेहता आदि कवियों की रचनाओं में प्रकृति के अनेक सुन्दर रूप दिखाई देते हैं। कहीं प्रकृति का स्वतंत्र रूप अपनी सहजता के कारण आकर्षित करता है और कहीं उद्दीपन रूप चित्त को चंचल बनाकर आनंदित-पीड़ित करता है। अज्ञेय की 'अरी ओ करुणामय', तथा 'ऋतुराज' में प्रकृति का आलंबनगत तथा 'बावरा अहेरी' की कुछ कविताओं में प्रकृति का उद्दीपनगत रूप चित्रित हुआ है। भवानीप्रसाद मिश्र प्रकृति के अनन्य प्रेमी हैं और वे सतपुड़ा के जंगलों का चित्रण करते हुए लिखते हैं –

सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए से
ऊंघते अनमने जंगल।
झाड़ ऊंचे और नीचे
चुप खड़े हैं और आँख मीचे ।

८) **अतृप्त रागात्मकता :** प्रयोगवादी कवियों के काव्य में अतृप्त रागात्मकता के दर्शन होते हैं। इन कवियों के प्रयोग की दिशा भी पूर्णतया निश्चित नहीं हुई है। अतः उनकी रागात्मकता वृत्ति पूर्ण तृप्त नहीं हो पाई है। अज्ञेय की 'प्रथम किरण' कविता इस प्रवृत्ति का सुन्दर उदाहरण है। शमशेर की 'शरीर स्वप्न' कविता में भी हम इस प्रवृत्ति को देख सकते हैं :

"मकई से लाल गेहुएँ तलुए
मालिश से चिकने हैं,
सुखी-भूरी झड़ियों में व्यस्त,
चलती-फिरती पिंडलियाँ।

मोटी डाले जांघों से न अड़े।
सूरज का आइना जैसे नदियाँ
इन मर्दानी रातों की चमक,
इनको खूब पसंद।"

९) **सामाजिक एवं राजनीतिक विद्रूपता के प्रति व्यंग्य :** प्रयोगवादी कवियों ने जीवन की कुरूपताओं पर सर्वत्र व्यंग्य किया है। समाज के उन पक्षों को इन कवियों ने अपने काव्य में बड़ी सच्चाई के साथ चित्रित किया है जो दूर से सहज और सुन्दर तो लगते

हैं लेकिन नजदीक जाने पर दुर्गन्ध ही आती है। यह स्थिति राजनीति की हो या किसी अन्य क्षेत्रों की, सभी विद्रूपताएँ इनके काव्य की वर्ण्य वस्तु रही हैं। महानगरों में पनपती वैश्यावृत्ति एवं क्लर्की प्रवृत्ति ने इन कवियों को अधिक आकर्षित किया। उदाहरणार्थ :

"सबेरे - सांझ चाय पीता है
डालडा खा खुशी से जीता है,
कौन जाने शरीर में क्या है
दिल है खाली, दिमाग रीता है
कलम से मन से काम करता है
यों ही हर दिन को शाम करता है
है समझदार कि साहब
बा-अदब झुककर सलाम करता है।
हौसले – दिल के थक जाते हैं ;
बाल जल्दी पक जाते हैं।

- (देवराज दिनेश)

ठीक इसी प्रकार आज के जहरीले शहरीपन पर व्यंग्य करते हुए अज्ञेय जी लिखते हैं :

साँप तुम सभ्य तो हुए नहीं, न होगे
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूँ ! उत्तर दोगे ?
फिर कैसे सीखा डसना
विष कहाँ से पाया।

१०) **वैचित्र्य प्रदर्शन :** अधिकतर प्रयोगवादी कवि वैचित्र्य प्रदर्शन को लेकर चले हैं। उसमें वृत्ति का सहज संयोजन प्रायः नहीं मिलता है। कहीं-कहीं यह उनकी मानसिक उलझन को भी व्यक्त करता है। अज्ञेय की 'हवाई यात्रा' नामक कविता में इस विशेषता को देखा जा सकता है -

"अगर कहीं मैं तोता होता!
तो क्या होता?
तो क्या होता;
तो होता। (आह्लाद से झूमकर)
तो तो तो तो ता ता ता ता (निश्चय के स्वर में)
होता, होता होता होता।"

इस कविता में वृत्ति का अभिनिवेश नाम मात्र को नहीं है। केवल वर्ण्य और वर्णन का वैचित्र्य प्रदर्शन हुआ है।

११) **व्यापक सौन्दर्य बोध :** सौंदर्यवाद एक शाश्वत प्रवृत्ति है जो युगानुयुग प्रतीकों एवं भाषा शैली के माध्यम से प्रत्येक युग के साहित्य में प्रकट होती है। छायावाद को प्रसाद जी सौन्दर्य की शाश्वत प्रवृत्ति का युगानुरूप प्रकाशन मानते हैं। प्रगतिवाद में सौन्दर्य बोध के मानदंड बदले और क्षुद्र तथा निम्नस्तर के मानव जगत में सौंदर्य का बोध उद्घाटित हुआ। प्रयोगवादी कवि उससे कुछ और आगे बढ़ा। अब सौन्दर्य का विस्तार 'बाँस की

टूटी हुई टाटी', 'कंकरीट के पोर्च', 'खंभे से लटकती ओढनी की दो-चार चिन्दियाँ' तक हो गया और इससे भी आगे बढ़कर अत्यंत गंदी जगह पर केवल 'तीन टाँगों पर खड़ा सिर झुकाया हुआ गधा' भी इन कवियों के सौन्दर्य बोध में आ जाता है। अति उपेक्षित वस्तु या स्थान का बड़ा सौंदर्यपूर्ण वर्णन करना इन कवियों की प्रमुख विशेषता रही है। 'मेघराज इन्द्र' की 'हवा चली' कविता में इस प्रवृत्ति को देख सकते हैं -

"हवा चली।
छिपकली की टाँग,
मकड़ी के जाले में फँसी-रही, फँसी-रही।"

१२) **शैली शिल्प की नवीन मान्यताएँ :** बहुत से आलोचक तो प्रयोगवाद को शैली शिल्प के नवीन प्रयोगों तक ही सीमित मानते हैं। लेकिन, अज्ञेय जी इसे प्राचीनता के बहिष्कार और नूतनता के प्रवेश के बीच के समय का विविध प्रयोग मानते हैं । प्रयोगवादी काव्य में यौन वर्जनाओं की अभिव्यक्ति अधिकतर प्रतीकों के माध्यम से हुई है। अज्ञेय की कविताओं में नग्न प्रतीकों के दर्शन होते हैं -

"सो रहा है झोंप अँधियारा,
नदी की जाँघ पर,
दो पंखुरिया,
भरी लाल गुलाब को; तकती पियासी
पिया-के ऊपर झुके उस फूल को।"

प्रयोगवादी प्रतीकात्मक शैली में छायावादी लाक्षणिक वक्रता के स्थान पर सांकेतिकता का आधिक्य है। प्रयोगवादी कवियों ने उपमानों की प्रतिक्रिया की और नए-नए उपमानों का प्रयोग किया। जैसे -

"मेरे सपने इस तरह टूट गए,
जैसे भुजा हुआ पापड़।"

प्रयोगवादी कवियों ने शैली के भी अनेकों नवीन प्रयोग किए और ऐसा करने में कहीं-कहीं भाव बिल्कुल लुप्त हो गया, केवल विलक्षणता और दुरूहता ही पाठकों के पास पहुँची। जैसे -

"खामोश
हो,
होश..... न खो
रो मगर..... जी।
xx xx
तू - ही
तू - ही
तू - ही।"

प्रयोगवादी कवि भाषा की दृष्टि से नवीन प्रयोगों के पक्षपाती हैं । इसलिए कहीं-कहीं प्रादेशिक शब्दों से और शब्दों के तोड़-मरोड़ से इनकी भाषा में भदेसपन आ गया है। जैसे - गोरियाँ, छोरियाँ, भोरियाँ आदि।

प्रयोगवादी कवियों के प्रयोगों का अंत यहीं नहीं होता बल्कि इसका प्रभाव छंदों पर भी पड़ता है। जैसे -

"चलते चलो, चलते चलो
सूरज के संग-संग चलते चलो, चलते चलो।
तम के जो बंदी थे,
सूरज ने मुक्त किए
किरणों ने गगन पोंछ
धरती को रंग दिया।"

इस प्रकार प्रयोगवादी कविता यथार्थता को अभिव्यक्त करती हुई और अपनी विशिष्ट पहचान बनाती हुई धीरे-धीरे नई कविता का रूप धारण करने लगी। इन दोनों के बीच अत्यधिक समानता भी है इसलिए आ. नन्ददुलारे वाजपेयी प्रयोगवादी कविता के संबंध में लिखते हैं कि, 'प्रयोगवादी कविताओं में अनुभूति की ईमानदारी का अभाव है। सामाजिक उत्तरदायित्व की अपेक्षा बुद्धिग्रस्तता वैचित्र्य की व्यापक प्रवृत्ति, वृत्ति के सहज अभिनिवेश का अभाव लक्षित होता है।' डॉ. नगेन्द्र को तो 'प्रयोगवादी कविता अत्यंत दुरूह और बौद्धिक' लगती है। वैसे, यदि इस दुरूहता को स्वीकार कर भी लिया जाए तो भी प्रयोगवादी कविता की इतनी उपलब्धियाँ हैं, जिससे उसके महत्त्व और आधुनिक हिन्दी काव्यधारा में उसकी अपरिहार्यता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। प्रयोगवादी कविता जीवनानुभूति की कविता है जो सीधे मिट्टी और आदमी की गहरी संवेदना से संलिप्त है। वह आदमी की सम्पूर्ण चेतना को प्रकृति में शब्दायित करती है।

५.३ नई कविता

प्रयोगवाद के अनंतर तीसरे सप्तक के प्रकाशन के बाद आधुनिक हिन्दी साहित्य में कविता का एक नया रूप उभरा, जिसे नई कविता के नाम से अभिहित किया गया। इससे पूर्व इसे अकविता, नकविता, अस्वीकृत कविता, श्मशानी कविता व भूखी पीढ़ी की कविता आदि अनेक पड़ावों से गुजरना पड़ा। किन्तु, बाद में नई कविता अस्पष्टता आदि के कुहासे को पार कर सर्वसम्मत रूप से नई कविता के नाम से पुकारी जाने लगी। इसमें आधुनिक जीवन बोध, वर्तमान जीवन की असंगतियाँ और उलझनें, एक प्रौढ़ मानवतावादी स्वर, जीवन के अजनबीपन, अकेलापन, टूटन, झटकते हुए परिसंबंध, नवजीवन सौन्दर्य, नवीन शिल्प, सपाट बयानी आदि की प्रवृत्तियाँ उभरी हैं। निष्कर्षतः 'नई कविता' एक नई मनःस्थिति का एक प्रतिबिंब है। एक नए रागात्मक संबंध का एक नया मोड़ है। मानवजाति और सृष्टि के सम्बन्धों की पृष्ठभूमि में मानव और मानवजाति का नया संबंध नई कविता की मूल विशिष्टता है।

श्री गिरिजाकुमार माथुर के अनुसार –'मौजूदा कविता के अंतर्गत वे दोनों ही प्रकार की कविताएँ कही जाती रही हैं जिनमें एक ओर या तो शैली-शिल्प और माध्यमों के प्रयोग होते रहे हैं और दूसरी ओर समाजोन्मुखता पर बल दिया जाता रहा है। लेकिन नई कविता हम उसे मानते हैं जिसमें इन दोनों के स्वस्थ तत्त्वों का संतुलन और समन्वय है। यह नई कविता नये शिल्प और उपमानों के प्रयोग के साथ समाजोन्मुखता और मानवता को एक साथ अंजलि में भरे

भविष्य की ओर अग्रसर हो रही है। उसकी नजर अतीत की श्यामलता और वर्तमान के संघर्ष से आगे भविष्य पर टिकी है।' इस कविता की विशिष्टतायें निम्नवत हैं : -

५.४ नई कविता का प्रमुख प्रवृत्तियाँ

१) **मानव ही केंद्र बिन्दु :** नई कविता में मानव को दो रूपों में चित्रित किया गया है - एक रूप में मानव व्यक्ति पर आग्रह है - उसके व्यक्तित्व के विकास, उसके मन की पहचान, उसकी राग-विरागात्मक वृत्तियों को समझना आदि। दूसरे रूप में मानव समष्टि पर आग्रह है। नई कविता का कवि आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक ऐसे मानव की स्थापना करना चाहता है, जो समाज की कुरूपताओं, कलुषताओं, रूढ़ियों और खोखली परम्पराओं के प्रति तीव्र विद्रोह कर एक स्वस्थ सामजिक जीवन दर्शन को तलाशने व उसके अनुरूप इतिहास निर्माण की चेष्टा में कुशल है। इसमें सामाजिक व आर्थिक सम्बन्धों की चर्चा व्यापक रूप में की गई है। जैसा कि - गिरिजाकुमार माथुर भावी उज्जवल मानवता की आशा करते हुए लिखते हैं कि -

"अब युग की अँधियारी रजनी मिटने को है,
जन रवि का उग्र प्रकाश चरण,
अंकित हो रहा है, धरा के मैले अंचल पर,
जिसमें मानवता छिपी धूप बन सोती है।"

२) **अनुभूति की सच्चाई तथा यथार्थवादी दृष्टि :** यह दोनों वस्तुएँ इस कविता की मुख्य तत्व हैं। अनुभूति की सच्चाई का संबंध चाहे एक क्षण से हो या चाहे समूचे काल से, किसी सामान्य व्यक्ति का हो या किसी विशेष पुरुष की, आशा का हो या निराशा का, वह सब कविता के लिए मूल्यवान है। आज का अभिनव बुद्धिवाद, आधुनिक कवि की यथार्थ दृष्टि में सन्निहित है। यही उसके मानव की चेतना की पहचान है। मनुष्य का दर्द मूलतः एक है और नई कविता का कवि बड़ी ही ईमानदारी से उस वेदना को अभिव्यक्त करता है - 'अज्ञेय' के शब्दों में-

"चेहरे थे असंख्य,
आँखे भी,
दर्द सभी में था
जीवन का दर्द सभी ने जाना था।"

३) **मानवीय प्रेम-भावना** : 'नयी कविता' में प्राप्त प्रेम-भावना की आकर्षक विशेषता उसकी नितांत मानवीयता है। हार्दिकता, सरलता, मानवीयता एवं मार्मिकता 'नयी कविता' में प्राप्त अधिकांश प्रेम-प्रसंगों की अपनी विशेषतायें हैं। नगर में नौकरी करने वाला पति छुट्टी पर गाँव में रहने वाली प्रेयसी के वियोग के समय को किस प्रकार काट रहा है-

अभी तो मेरी छुट्टी के तैतीस दिन हैं...
आज तो बीत ही चला बत्तीस समझो,
कल दिन भर व्यस्त रहूँगा
तो इकतीस –
गया एक मास , तीस रोज।

नई कविता की प्रेमभावना में कहीं-कहीं वासनामय भाव भी देखा जा सकता है –

आज मुख्य मेहमान हो तुम
रात के इस फ्लोर शो में
एक बार, बस एक बार, अपने तन की छाप
छोड़ जाओ मुझ पर।

४) **क्षणवाद का चित्रण :** यह कविता जीवन के एक क्षण को सत्य मानती है और उस सत्य को पूरी शक्ति के साथ भोगने का आग्रह करती है। क्षणबोध शाश्वत जीवन-बोध का विरोधी नहीं बल्कि उसे प्राप्त करने की यथार्थ प्रक्रिया है। क्षण में दिखाई देने वाले किसी जीवन सौन्दर्यमय भाव में अनुभूत होने वाली जीवन व्यथा, जीवन का उल्लास, क्षण में दिख पड़ने वाली मनःस्थिति या बाहरी व्यापार कोई छोटा सत्य नहीं होता। उसका जीवन और साहित्य में एक अपना मूल्य है - वह क्षण की मार्मिक सत्यानुभूति के साथ जीवन को एक नवीन सार्थकता प्रदान करती है। जैसा कि, धर्मवीर भारती जी 'अंधा युग' में लिखते है -

"जब कोई भी मनुष्य
अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को,
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है।
नियति नहीं पूर्व निर्धारित
उसको हर क्षण मानव निर्णय बनाता मिटाता है।"

५) **लोक संपर्क :** नई कविता का कवि यथार्थ के प्रति जागरूक रहना चाहता है। उसकी दृष्टि भविष्य पर भी लगी है और संघर्षजन्य कटुताओं के बीच भी लोकसम्पर्क बनाए रखना चाहता है। नई कविता के रचनाकार अधिकतर मध्यवर्ग से ही सम्बद्ध रहे हैं इसलिए इनकी रचनाओं में उनके समय का पूरा परिवेश झलकता है। यही कारण है कि यहाँ शहर और गाँव दोनों के दर्शन होते हैं। गिरिजाकुमार माथुर के शब्दों में -

"आज दुनिया के करोड़ो आदमी,
सह रहे हैं धूप, सर्दी और नमी।
जिंदगी का एक भी साधन नहीं।
उग्र तपती धूप है, सावन नहीं॥"

नई कविता किसी वाद विशेष में नहीं फँसना चाहती और जनविरोधी राजनीति की तीव्र आलोचना करती है।

६) **परंपरा विरोधी :** नई कविता में पुरातन परम्पराओं के प्रति कोई विशेष आस्था नहीं है। इस धारा का कवि आज परम्पराओं को संघर्षपूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति के लिए अपर्याप्त समझता है। यही कारण है कि नई कविता में आज का सामाजिक , आर्थिक,

धार्मिक और राजनीतिक परम्पराओं से व्याप्त मानवी जीवन के प्रति उदासीनता, निराशा और अविश्वास की भावनाएँ अधिक उभरी हैं। परंपरा के दूर हट जाने के कारण आधुनिक नवीन कवि स्वयं मोह ग्रस्त है और उसे जीवन का कोई स्पष्ट मार्ग दिखाई नहीं देता है। कुछ कवितायें स्वस्थ दृष्टिकोण में अवश्य लिखी गई हैं, जिसका एक उदाहरण यहाँ दर्शनीय है -

"जीवन कभी सुना न हो
कुछ मैं कहुं कुछ तुम कहो
संसार मेरा मीत है
सौंदर्य मेरा गीत है,
मैंने कभी सोचा नहीं
क्या हार है क्या जीत है
सुख-दुःख मुझे जो भी मिले
कुछ मैं कहूँ कुछ तुम कहो।"

७) **आधुनिकता का आग्रह :** नई कविता में आधुनिक युग बोध और आधुनिक सौंदर्य बोध ये दोनों बातें बड़ी ज़ोर-शोर से उठाई गई हैं। आधुनिकता कोई बुरी वस्तु नहीं है और प्रत्येक युग के साहित्य में आधुनिकता पाई जाती है। आज का जीवनक्रम इतनी तेजी से बढ़ रहा है कि जब तक हम आधुनिकता को समझने की चेष्टा करते हैं तब तक दूसरी आधुनिकता आ जाती है। नई कविता के कवियों ने यथासंभव इस आधुनिकता के प्रति अपना आग्रह दिखाया है।

८) **मानव मूल्यों के विघटन की पुकार :** जिन नैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक मूल्यों को शाश्वत मानकर मानव-समाज उनके सहारे जीवन में शान्ति और सुख प्राप्त करने के लिए युगों-युगों से प्रयत्नशील रहते आया है वे दोनों विश्वयुद्धों के बाद खोखले साबित होने लगे थे। चारो तरफ बढ़ती व्यक्तिवादिता, चोरी, बेईमानी और रिश्वतखोरी आदि ने इन सभी मानवीय मूल्यों के समक्ष प्रश्नचिन्ह खड़ा कर दिया था। इस विघटित अवस्था का वास्तविक चित्रण नई कविता में देखा जा सकता है। मूल्यों की दृष्टि से विघटित इसी दुनिया को देख कर कुँवर नारायण जी लिखते हैं कि –

पागल से लुटे-लुटे, जीवन से छूटे-छूटे
ऊपर से सटे-सटे
अन्दर से हटे – हटे –
कुछ ऐसी भी दुनिया जानी जाती है।

९) **नई कविता और रस :** आलोचकों द्वारा नई कविता पर यह आरोप लगाया जाता है कि, इसमें कोई रस नहीं होता और साधारणीकरण की मात्रा भी नहीं होती है किन्तु, यह आरोप पूरी तरह सत्य नहीं है। अच्छी व समर्थ नई कविता में इसकी भरपूर मात्रा होती है। भवानीप्रसाद मिश्र की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत है

"जी हाँ, हुजूर मैं गीत बेचता हूँ,
मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ,
सभी किस्म के गीत बेचता हूँ।"

नई कविता का कवि तल्खी का स्वर भी उठाता है प्रातः काल का वर्णन करते हुए कवि की त्वचा ठंडी हवा का स्पर्श नहीं करती बल्कि, वर्तमान की कठिनाई उसे दिखाई देने लगती है। जैसा कि -

"सूरज उगते ही,
मनहूस लोग भजन गाने लगते हैं।
और हम अपनी बेकारी की,
सोचने लगते है।"

इसी प्रकार समाज की व्यभिचारी प्रवृत्ति का वर्णन भी इन कवियों ने बड़े ही अच्छे ढ़ंग से किया है। जैसे -

"अकेलेपन का साँप रेंग रहा है
और उगल रहा है आत्मरति का विष,
बंद दरवाजे,
और बिस्तरों पार खामोश पड़ी रही रात
नीली रोशनी में कैद।"

१०) **कला पक्ष एवं शिल्प विधान :** नई कविता में प्रतीक और बिम्ब विधान को छोड़ कर सपाट-बयानी पर अधिक बल दिया गया है। इस काल का कवि समस्त शासन और व्यवस्था तंत्र को तोड़ने के सात-साथ भाषा तंत्र को भी तोड़ना चाहता है। इन कवियों की भाषा अनुभव के निकट की होती है। इसमें कोई संकोच और झिझक नहीं है। भाषा के सरलता की एक बानगी देखिए -

"न कोई छोटा है न कोई बड़ा है,---
मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है,
जो मेरे सामने मुरम्मत के लिए खड़ा है।

- धूमिल

नई कविता में लोकभाषा नवीन शब्दों, लोकजीवन के नवीन प्रतीकों उपमानों और छंदों का प्रयोग किया गया है। नवीन भावों के लिए भाषा में नवीनता आवश्यक भी थी। अतः इन कवियों की भाषा सरल, छोटे वाक्यों, सुबोध तथा प्रचलित शब्दों यहाँ तक कि, अंग्रेजी के शब्दों, मुहावरों और कहावतों आदि से परिपूर्ण होती है। भाषा, भाव एवं संगीतात्मकता की दृष्टि से नए कवियों ने लोक गीतों के प्रभाव को भी स्वीकार किया है।

नई कविता के नाम पर आज ढेरों कविताएं लिखी जा रही है जिनमें बहुधा परिपक्व जीवन दृष्टि और अकुशल हाथों का भोंडापन देखा जा सकता है। कहीं अनर्गल प्रलाप दिखाई देता है तो कहीं बौद्धिकता का अतिरेक, अतिशय यथार्थवाद, अस्तित्ववाद आदि का अधकचरा प्रभाव। वास्तव में नई कविता को अपने इन नकारात्मक पक्षों को छोडना होगा क्योंकि, नई कविता, नवीन काव्याभिरुचि, नवीन सौंदर्य और नए संवेदना की कविता है। निःसंदेह कुछ स्वस्थ्य दृष्टिकोण के आधुनिक कवियों ने कुछ अत्यंत सुंदर रचनाएँ की हैं। उनमें वह सब कुछ है जो जीवन के लिए है। इन कवियों ने नई

कविता को अवांछित रूढ़ियों और राजनीति से बचाया है और उसे नवीन उद्भावनाओं तथा प्रशस्य सौंदर्य से संवलित किया है।

अंत में यही कहना समीचीन है कि, नई कविता के क्षेत्र में परिपक्व और अपरिपक्व दोनों प्रकार के कवि है। कुछ लोकविरोधी रचनाएँ करते है और कुछ पूर्णतः लोकोन्मुख। आज की कविता का मूल प्रश्न जीवन और जगत के ज्ञान के अधूरेपन या पूरेपन, विकारग्रस्तता या शुद्धता के प्रश्न के साथ अटूट रूप में जुड़ा हुआ है। नए कवि को ज्ञानपक्ष की अत्यंत आवश्यकता है। नई कविता में भी उच्चमध्यवर्ग तथा गरीब मध्यवर्ग - दो दल बन गए हैं। उनकी वर्गीय वृत्तियाँ उनके काव्य तथा साहित्य संबंधी सिद्धांतों में स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है। फिर भी नई कविता का कवि अपने युग के प्रति उत्तरदायी दिखाई देता है।

नई कविता के प्रमुख कवियों में सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन 'अज्ञेय', डॉ. धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, शमशेर बहादुर सिंह, रघुवीर सहाय, विजयदेव नारायण शाही, कुँवर नारायण, केदारनाथ सिंह, भारतभूषण अग्रवाल, दुष्यंतकुमार, गिरिजाकुमार माथुर, कीर्ति चौधरी आदि प्रमुख हैं।

५.६ सारांश

प्रयोगवाद के कवियों ने बौध्दिकवादी अवधारणा का अवलबंन किया है इस कारण प्रयोग वादी काव्य में भावनाओं का अभाव है और मानव जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करते हुए प्रयोगवादी काव्य, निराशा, कुंठा और वासनात्मक प्रवृत्ति की और कब खिच जाती है पता ही नहीं चलती। नई कविता का विषय क्षेत्र अति विस्तृत है इसीलिए जीवन के सभी प्रसंगों को आन्तरिक और बाह्य दृष्टि से विस्तृत वर्णन नई कविता में हुआ है। मुक्तक शैली के प्रयोग के कारण छंद, बिम्ब, प्रतीक और अलंकार के बंधन में नहीं फंसी।

५.७ बोध प्रश्न

१. प्रयोगवादी काव्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

२. प्रयोगवादी कविता का सोदाहरण समझाइए।

३. नई कविता की प्रवृत्तियों की चर्चा कीजिए।

५.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१. प्रयोगवाद का आरंभ किस वर्ष से माना जाता है।

२. विद्वानों ने प्रयोगवाद का अर्थ क्या बताया है ?

३. प्रयोगवाद के प्रमुख कवि माने जाते है ?

४. बिंबवाद का प्रभाव किन कवियों पर रहा ?

५. किस काल के कवियों की कविताओं मे बौध्दिकता के कारण भावनात्मकता का अभाव है ?

६. नई कविता का प्रचलन कब से शुरू हुआ ?

७. 'दूसरा सप्तक' का प्रकाशन वर्ष है ?

८. 'परिवर्तन' कविता के कवि कौन है ?

९. कीर्ति चौधरी कौनसे सप्तक की कवियित्री है ?

❄❄❄❄❄❄❄

६

समकालीन हिन्दी कविता प्रवृत्तियाँ और उपलबधियाँ

इकाई की रूपरेखा

६.० इकाई का उद्देश्य

६.१ प्रस्तावना

६.२ साठोत्तरी कविता

६.३ साठोत्तरी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

६.४ समकालीन हिन्दी कविता

६.५ समकालीन हिन्दी कविता

६.६ सारांश

६.७ बोध प्रश्न

६.८ लघुत्तरीय प्रश्न

६.९ संदर्भ ग्रंथ

६.० उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आधुनिक हिन्दी साहित्य के समकालीन कविता की चर्चा की गई है। इस इकाई के अंतर्गत उक्त दोनों काव्यान्दोलनों की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई के अंतर्गत विद्यार्थी उक्त समकालीन की कविताओं का प्रवृत्तिगत अध्ययन कर सकेंगे।

इस इकाई का मूल उद्देश्य आधुनिक हिन्दी साहित्य की मूल प्रवृत्तियों और उस काल के मुख्य कवियों की विचारधाराओं से विद्यार्थियों को अवगत कराना है। इनके अध्ययन से वे आधुनिक हिन्दी कविता के काल विभाजन के साथ-साथ हिन्दी कविता की विकास यात्रा से भी परिचित हो सकेंगे। अतः इस इकाई का मूल उद्देश्य हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को आधुनिक हिन्दी साहित्य में साठोत्तरी कविता, नवगीत और समकालीन कविता की मूल प्रवृत्तियों से अवगत कराना है।

६.१ प्रस्तावना

२०वीं सदी के मध्य में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नये उमंगों की जो ज्योति जली थी वह एक – डेढ़ दशकों में ही निराशा में बदलने लगी। जिन नैतिक मूल्यों को भारतीय समाज में जीवन के लिए सर्वाधिक आवश्यक माना जाता रहा वे सब यहाँ आते-आते व्यर्थ सिद्ध होने लगे। सत्ता का अहंकार सत्ताधारियों के सिर पर सवार होकर बोलने लगा था। परिणामस्वरूप सत्ता के विरुद्ध एक आन्दोलन खड़ा होने लगा। बहुत जल्दी ही यह आन्दोलन भारत के जन-जन

तक पहुँच गया। इस परिवर्तन ने हिन्दी साहित्य को भी विविध रूपों में प्रभावित किया। २० वीं शताब्दी में द्विवेदीयुग, छायावाद और प्रगतिवाद के बाद प्रयोगवाद और फिर नई कविता उसके बाद साठोत्तरी कविता, नवगीत और समकालीन कविता का आगमन होता है। इस इकाई के अंतर्गत इन तीनों काव्यधाराओं और उनकी प्रवृत्तियों का अध्ययन किया जाएगा।

६.२ समकालीन हिन्दी कविता

हिन्दी कविता सतत प्रवाहमान ऐसी सरिता है जिसे युगीन अपेक्षाओं एवं आवश्यकताओं ने अपने-अपने ढंग से गति और आकृति प्रदान की है। वैसे तो प्रत्येक काल की कविता अपने युग की पहचान है। जीवंत दस्तावेज़ है; किन्तु स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद की कविता का मानसिक तेवर स्वतंत्रता पूर्व की कविता से सर्वथा भिन्न है और इन काव्यान्दोलनों में रचनागत चिंतनमूलक अंतर भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि समकालीन हिन्दी कविता अपने पूर्ववर्ती सभी कालों, युगों तथा आंदोलनों से अलग है, क्योंकि अन्य युगों की कविताएँ जीवन के कुछ विशिष्ट पक्षों को लेकर लिखी गयी हैं जबकि समकालीन हिन्दी कविता जीवन की सुरूपता और कुरूपता को उसके प्रकृत रूप में स्वीकार करते हुए रची गयी है। अतः समकालीन हिन्दी कविता सम्पूर्ण जीवन की कविता है - ऐसा जीवन जिसमें राजनीति, धर्म, संस्कृति, समाज, अर्थ आदि सब कुछ जटिल भाव से समाविष्ट है। सामान्यतः विद्वानों द्वारा सन १९७० के बाद की कविता को समकालीन कविता के नाम से अभिहित किया गया। आपातकाल से उत्पन्न आक्रोश ने इसे गति प्रदान की और समकालीन कविता अपने समय की अनुगूँज बन गई। 'यह कविता अमानुषीकरण की हर प्रक्रिया का विरोध करती है और मनुष्य के विवेक को जागृत करती है। इसलिए वह जहाँ समाज में व्याप्त विषमता को उजागर करती है, वहीं उन शक्तियों के खिलाफ मोर्चाबंदी भी करती है। जो इस विषमता के लिए जिम्मेदार हैं। सूचना विस्फोट, संवेदनहीनता, प्रकृति और पर्यावरण से लेकर बच्चों और बूढों तक की समस्याओं से जूझती समकालीन कविता वर्तमान के हर पक्ष तक आवाजाही करती है।'

६.३ समकालीन हिन्दी कविता की प्रवृत्तियाँ

समकालीन हिन्दी कविता में जीवन और जगत से जुड़ी प्रत्येक स्थिति-परिस्थिति को अत्यंत यथार्थपूर्ण ढंग से चित्रित किया गया है। भरसक प्रयासों के बाद भी जब स्वराज्य को आदर्श रामराज्य में परिणत न किया जा सका तो जनमानस में मोहभंग की स्थिति पैदा हो गयी। जीवन के इस कटु यथार्थ का सामना करने में उसे जिन दबावों-तनावों को झेलना पड़ा है, जिन-जिन आरोहों-अवरोहों, संकल्पों-विकल्पों में से गुजरना पड़ा है, उसकी स्पष्ट छाप हमें समकालीन हिन्दी कविता में दिखाई पड़ती है। पारम्पारिक मूल्यों-मान्यताओं का विरोध करने वाली इस कविता में प्रतिक्रियात्मक स्वर ही अधिक प्रबल है। यथास्थिति को नकारकर आमूलचूल परिवर्तन लाने की आकांक्षा तथा समकालीन परिवेश एवं यथार्थ को स्पष्ट बेलाग शब्दों में व्यंजित करना ही इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। समकालीन हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है :

१) **विघटित व्यवस्था के प्रति आक्रोश एवं विद्रोह:** व्यवस्था एक व्यापक प्रत्यय है। यह समूचे परिवेश का पर्याय है जिसके अंतर्गत समाज, धर्म, राजनीति, संस्कृति आदि सब

कुछ समाहित है। व्यवस्था ही किसी देश अथवा समाज की पहचान बनाती है। उसे स्थायित्व प्रदान करती है, किन्तु जब इस व्यवस्था के मूल्यों, आदर्शों एवं परम्पराओं की अवहेलना कर इसमें मनमाने ढंग से परिवर्तन किये जाते हैं तो यह विघटन की शिकार हो जाती है और कोई भी विघटित व्यवस्था कल्याणकारी नहीं हो सकती है। यही कारण है कि समकालीन हिन्दी कविता में भी ऐसी अव्यवस्थित व्यवस्था के प्रति तीव्र आक्रोश एवं असंतोष दिखाई पड़ता है। ढोंगी और भ्रष्ट व्यवस्था को कवि मानस एक पल भी सहन करने के लिए तैयार नहीं; उसे तो एक चिनगारी की तलाश थी, जिससे इसे सदा-सर्वदा के लिए खाक किया जा सके -

एक चिनगारी और -
जो खाक कर दे
दुर्नीत को, ढोंगी व्यवस्था को
कायर गति को
मूढ़ मति को

कवि को अकम्प विश्वास है कि इस विषम व्यवस्था को दूर करने का एक ही उपाय है - वह है जनक्रांति। केवल जनक्रांति से ही अपने 'होने का अहसास' दिलाया जा सकता है इसीलिए उसकी रुचि केवल बैठे-बैठे कविता करने तक ही सीमित नहीं है, अपितु वह आगे बढ़कर एक दावानल भड़काना चाहता है -

पुनश्च के नाम पर कविता लिखकर अपने को
बहलाना मेरा शगल नहीं
शगल तो यह भी नहीं कि
राह चलते बिम्ब या प्रतीक से
टकराऊँ और फिर उसके या अपने खून की नुमाइश
करते हुए किसी युद्ध की कहानियाँ सुनाऊँ।
एक जंगल है सिर की जगह पर और एक
माचिस है मेरे हाथ में कलाम के नाम पर।
चाह है कि एक दानावल भड़काऊँ ताकि अपने होने का
अहसास दिला सकूँ, मंजूर करने की राह पहचान सकूँ।

२) **जीवन का वास्तविक निरूपण :** कोई भी रचना तभी जीवंत एवं प्राणवान बन सकती है, जब उसका जुड़ाव जीवन से हो। जीवन के तीव्र उत्कट अनुभवों की आँच में तपे बिना साहित्य-सर्जना संभव नहीं है। चूँकि, रचनाकार अपने परिवेश के प्रति प्रतिबद्ध होता है, अतः यह आवश्यक है कि बदलते मानव-मूल्यों के साथ-साथ कविता का तेवर भी परिवर्तित हो। जहाँ तक समकालीन हिन्दी कविता का प्रश्न है इसमें जीवन की निर्मम वास्तविकताओं को अत्यंत ईमानदारी से निरूपित किया गया है। व्यक्ति के सारे खतरे उठाने को तत्पर यह कविता जीवन की विसंगतियों को बेपर्द करना चाहती है। वह उन रुग्ण एवं विकृत व्यवस्थाओं के भीतर तक झाँक लेना चाहती है, जिसके कारण जीवन दैनंदिन जटिल और संघर्षपूर्ण बनता जा रहा है –

मुझे लगा मुझे एक दाने के अंदर
घुस जाना चाहिए
पीसने के पहले मुझे पहुँच जाना चाहिए
आटे के शुरू में
चक्की की आवाज के पत्थर के नीचे
मुझे होना चाहिए इस समय
जहाँ से
गाने की आवाज आ रही थी।

यद्यपि जीवन की इन तमाम विद्रूप-विसंगतियों-व्यवस्थाओं को चित्रित करने में कवि ने पूरी ईमानदारी बरती है, फिर भी वह कहीं-न-कहीं स्वयं को लाचार, विवश पाता है, क्योंकि जितनी पीड़ा, जितना संत्रास इन वर्षों में आम आदमी को झेलना पड़ा है, उसे कविता में बयान कर पाना संभव नहीं है -

संभव नहीं है
कविता में यह सब कह पाना
जो घटा है
बीसवीं शताब्दी में मनुष्य के साथ

३) **मोहभंग की स्थिति:** इस काल की कविता पूर्णतः मोहभंग की कविता है । भ्रष्ट व्यवस्था, राजनेताओं की वादाखिलाफी, बढ़ते विदेशी ऋण, पूंजीवादी अधिनायकत्व, महँगाई, भुखमरी, बेरोजगारी, कालाबाजारी आदि समस्याओं ने आम आदमी के मन में असंतोष एवं आक्रोश की भावना को ही उपजाया। आजादी उसके लिए महज तीन थके हुए रंगों का नाम बनकर रह गयी -

बीस साल बाद और इस शरीर में
सुनसान गलियों से चोरों की तरह गुजरते हुए
अपने आप से बात करता हूँ -
क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब है।

लोकतन्त्र के पहरेदारों के हाथों ही लोकतान्त्रिक मूल्यों की हत्या होते देखकर यह मोहभंग और गहरा हो जाता है। ऐसी हत्यारी व्यवस्था से अलग होने के लिए जनता को आगाह करते हुए कवि कहता है -

आदमी को तोड़ती नहीं हैं लोकतान्त्रिक पद्धतियाँ
केवल पेट के बल
उसे झुका देती हैं धीरे-धीरे अपाहिज
धीरे-धीरे नपुंसक बना लेने के लिए उसे शिष्ट राजभक्त देशप्रेमी
नागरिक बना देती हैं
आदमी को इस लोकतंत्री सरकार से अलग हो जाना चाहिए।

४) **राजनेताओं के प्रति क्षोभ की अभिव्यक्ति :** देश की उत्तरोत्तर ह्रासोन्मुखी स्थिति के लिए कवि भ्रष्ट राजनेताओं को ही दोषी मानता है, क्योंकि इनकी क्षुद्र राजनीति केवल कुर्सी तक सीमित है, इनका दिन-ईमान सब कुर्सी है -

अरमान बसे हैं कुर्सी में
मन प्राण बसे हैं कुर्सी में
भगवान बसे हैं कुर्सी में
सब धर्म-कर्म कुर्सी, उनके
वे कुर्सी छोड़ नहीं सकते लाचारों को आवाज न दो।

ये राजनेता इस कुर्सी के लिए वे अपना धर्म-ईमान सब बेचने के लिए तैयार हो जाते हैं। यदि आवश्यकता हो तो वे दलबदल करने से भी नहीं चूकते हैं -

लाल टोपी पहनकर गया हुआ विधायक
सफ़ेद टोपी पहनकर लौट आता है
और सफ़ेद वाला काली
इसके अतिरिक्त कुछ भी तो नहीं बदलता

किन्तु कवि इन विषम परिस्थितियों से घबराकर चुप बैठने वाला नहीं है, इसलिए वह साफ-साफ दो टूक शब्दों में ऐलान करता हुआ चलता है -

सुनें कि मेरी कविता में उनकी मौत की सजा का
ऐलान किया जा रहा है
आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसो। और हर पेड़
पर लटकती मिलेगी हिंदुस्तानियों के
मुसोलिनियों की लाशें
और.....
इसके बाद भी कुछ कहना बाकी रह जाता है क्या?

५) **व्यक्ति और सामान्य सत्ता की प्रतिष्ठा :** जनतंत्र में जन की महत्ता निर्विवाद है। साधारण जनता की उपेक्षा करके न तो राजनीति ही की जा सकती है और न कविता, क्योंकि इतिहास साक्षी-

जब-जब भी
लोगों को
इतिहासहीन कर देने की चेष्टा की गई है
तब-तब
वे लोग
अपनी पिपीलिकावत साधारणता के साथ
इतिहास की आग पर चलकर
पुराण पुरुष बन जाते रहे हैं।

धूमिल की 'मोचीराम', 'पटकथा', त्रिलोचन की 'नगई मेहरा', केदारनाथ सिंह की 'माँझी का पुल' तथा रघुवीर सहाय की 'रामदास' आदि कविताएं इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं ।

६) **परंपरागत मूल्यों का विघटन :** सन साठ के बाद के वर्षों में उपजी मोहभंग की स्थिति ने पारंपरिक प्रणाली के प्रति नकार का भाव अपनाया। धर्म, सत्य, ईश्वर, न्याय उसके लिए बेमानी शब्द हो गए, क्योंकि विज्ञान की महती उपलब्धियों ने आज मनुष्य को इतना समर्थ और शक्तिसंपन्न बना दिया कि मिथ्या दर्प में चूर होकर वह स्वयं को ईश्वर के समकक्ष समझने लगा। पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, धर्म-अधर्म आदि किसी चीज से उसे भय नहीं रह गया, मानवीय मूल्य अपने जीवन से अपना महत्त्व खोने लगे। ऐसी ह्रास की स्थिति में रचनाकार का चिंतित होना स्वाभाविक है; इसीलिए वह कहता है

प्राण हुए सस्ते अब पानी के मोल बिके
स्नेह, प्रेम, नेह, मोह दिखते हैं थके-थके
घर से निष्कासित हो शांति खड़ी होती है
उसको अपनाओ आलम्बन बदनाम न हो।

समकालीन हिन्दी काव्य पर विदेशी जीवन-पद्धतियों - बीट, हिप्पी, सन ट्राइबर्स, हैपनिंग - का भी गहरा प्रभाव है। गिंसबर्ग, नित्शे, किर्केगार्द को अपना आदर्श मानने वाले कवियों के लिए ईश्वर किसी कारागार में जन्म लेकर किसी पागलखाने में मर चुका है। उसे किसी ऐसे ईश्वर में आस्था नहीं है जो नकली मुखौटे लगाकर स्वयं तो सोने की मूर्तियों में रहता हो, स्वयं तो सर्वशक्तिसंपन्न कहलाता हो और जरूरत पड़ने पर स्वयं की भी रक्षा करने में असमर्थ हो। ऐसे अक्षम ईश्वर के विरुद्ध कवि एक लम्बी लड़ाई की बात करता है। 'ईश्वर तुम नहीं हो' काव्य संग्रह में जे.पी.नारायण ईश्वर से सीधे प्रश्न करते हैं –

ईश्वर ! तुम्हारे धार्मिक कुहासे के विरुद्ध
तुम्हारे शोषण के विरुद्ध
तुम्हारी अपवित्र आस्था के विरुद्ध
तुम्हारे लापता –लावारिस श्रद्धा
और विश्वास के विरुद्ध
तुम्हारे मायालोक, तुम्हारे आध्यात्मिक झूठ
और काल्पनिक देवत्व के विरुद्ध
लड़नी है हमें लम्बी लड़ाई।

७) **आस्था और अनास्था का संकुल चित्रण :** समकालीन हिन्दी काव्य में आस्था और अनास्था दोनों का संकुल चित्रण मिलता है । बदलते मानव-मूल्यों ने मानवीय संवेदनाओं को थोथरा बना दिया है। प्यार-प्रेम जैसी सुकोमल भावनाएँ केवल छलावा बनकर रह गयी हैं। इनकी आड़ में मनुष्य कोई भी घटिया-से-घटिया कर्म करने से नहीं चूकता -

सहानुभूति और प्यार
अब एक ऐसा छलावा है
जिसके जरिये
एक आदमी दूसरे को अकेले
अंधेरे में ले जाता है और
उसकी पीठ में
छूरा भोंक देता है

किन्तु फिर भी कवि को विश्वास है कि एक-न-एक दिन नया प्रभात अवश्य आयेगा और सबमें सहज समता का भाव उपस्थित होगा -

सहज समता हो सभी में व्याप्त
व्यवस्था के हेतु यह पर्याप्त
भूमि पर फिर भूमि की संतान
करे शासन, श्रम बने श्रीमान।

८) **व्यक्ति-मन का सहज चित्रण :** समकालीन कविता की सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि इसमें पूरी ईमानदारी के साथ आम आदमी के दैनंदिन संसार को चित्रित किया गया है। यहाँ औसत व्यक्ति की सहज-साधारण संवेदनाओं को इतने कलात्मक ढंग से उकेरा गया है कि वह स्वयं में अद्भुत-असाधारण बन गयी है । इस उपभोक्तावादी संस्कृति की त्रासदियों को झेलते-झेलते मनुष्य की चेतना इतने खंडों में बंट गयी है कि उसे हर चीज से वितृष्णा-सी हो गयी है, इसी मनःस्थिति को व्यक्त करती हुई निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

क्या मैं छपाऊँ इश्तिहार?
क्या मैं बन जाऊँ किसी क्लब का सदस्य?
क्या मैं बैठे.... बैठे
करूँ सभी
परिचित-अपरिचित को फोन?
क्या मैं तमाम मूर्ख स्त्रियॉं से हँस-हँसकर
बात करूँ झुक-झुक नमस्कार?
दूसरों के बच्चों से
झूठ-मूठ प्यार?

९) **काम का उन्मुक्त चित्रण :** पाश्चात्य जीवन-दृष्टि से प्रभावित समकालीन साहित्यकारों की रचनाओं में काम का उन्मुक्त चित्रण देखने को मिलता है । भारतीय संस्कृति के चतुर्वर्गों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाला 'काम' अपनी प्राचीन गरिमा को खोकर केवल पाशविक उपभोग तक सीमित रह गया है। नारी को केवल भोग-विलास की वस्तु माना जा रहा है और अधिक आश्चर्य होता है, यह देख कर कि अश्लीलता की इस दौड़ में कवयित्रियाँ भी पीछे नहीं हैं । भारतीय नारी की सारी मान-मर्यादा को भूलकर वह निःसंकोच स्वर में कहती है -

सुबह से दिन डूबने तक
मैं इंतजार करती हूँ
रात का
जब हम दोनों एक ही कोने में सिमटकर
एक दूसरे को कुत्ते की तरह चाटेंगे।

चाहे जो हो, इस प्रकार के गर्हित चित्र न तो समाज के लिए कल्याणकारी हैं और न साहित्य के लिए। मात्र भोगवाद पर टिका हुआ कोई भी चिंतन अधिक दिन तक स्थायी नहीं रह पाता है और यही कारण रहा कि यह प्रवृत्ति भी जल्दी दम तोड़ गयी।

१०) **प्रकृति चित्रण :** समकालीन हिन्दी कविता में प्रकृति का वह बहुरंगी रूप देखने को नहीं मिलता जो छायावाद में था। प्रकृति के प्रति इस तटस्थ रागात्मकता का कारण इसके केंद्र में स्वयं मानव का होना है, फिर भी जगदीश गुप्त, नरेश मेहता, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, त्रिलोचन, प्रयाग शुक्ल आदि के काव्य में प्रकृति का सुंदर रूप दिखाई पड़ता है। यहाँ एक उदाहरण देखें -

स्लेटी बादल आसमान को घेर घिरे हैं
कहीं जरा भी रंध्र नहीं है। जब तक बूँदा-
बाँदी हो जाती है। फैल फैल कर मूँदा
बदली ने नभ-नील-नयन को। उधर तीरे हैं
बादल के ऊपर बादल, चहुँ ओर फिरे हैं।
नाना रूपों-रेखाओं में, जैसे खूंदा
खूँदी बंधे अश्व करते हैं। सुंदर फूंदा
किरणों का निकला, जिससे सांध्य चिरे हैं।

इस काल का कवि प्रकृति संरक्षण के प्रति जागरूक भी दिखाई देता है। वह प्रकृति के विनाश के दुष्परिणामों से आज के मानव को सावधान करता दिखाई देता है। गंगा प्रसाद विमल 'काश पेड़ों के पाँव होते' कविता में लिखते हैं –

उन्हें काटते हैं लोग
तो काट देते हैं
पक्षियों के आवास
प्रकृति का सदाबहार / यौवन
काट देते हैं लोग / स्मृति
और सरहद रेगिस्तान की।

११) **जनवादी चेतना की विस्तृत व्यंजना :** सामान्य रूप से, जनवाद से तात्पर्य उन मार्क्सवादी-माओवादी विचारधाराओं से है - इसमें सर्वहारा वर्ग की मुक्ति और संघर्ष के लिए किए गए सचेतन प्रयास एवं वर्गविहीन समाज की परिकल्पना प्रमुख है। लोकतन्त्र की इस वनतंत्री व्यवस्था से क्षुब्ध होकर कवि-मानस का ऐसा विराट विश्वव्यापी चिंतन-प्रक्रिया के प्रति आकर्षित होना सहज-स्वाभाविक ही था। कवि का पूर्ण विश्वास है कि इन भयावह परिस्थितियों से टकराने का एकमात्र विकल्प संघर्ष ही

है, इसके लिए वह सामान्य से सामान्य व्यक्ति के पास जाना चाहता है, चाहे वह प्रेमचंद का 'होरी' किसान हो या धूमिल का 'मोचीराम' -

राजतंत्र की इस वनतंत्री व्यवस्था में
मैं अकेला और असक्षम हूँ
मेरे स्नायुतंत्र पर भय और आतंक की कंटीली/झाड़ियाँ
उग आयी हैं / जिन्हें काटने के लिए
ठीक हाथों और ठीक शब्दों की तलाश में
मैं होरी किसान और मोचीराम के
पास जाऊँगा / मैं अपने मुहल्ले के पास जाऊँगा।

१२) **बच्चों और बूढों की चिंता :** समकालीन कविता का कवि समाज के हर पक्ष पर अपनी पैनी नजर रखता है। ऐसे में आज के परिवेश में बच्चे और बूढ़े उसे निहायत लाचार दिखाई देते हैं। एक तरफ लोगों की भागमभाग वाली जिन्दगी नें बच्चों को उनके माता-पिटा के प्रेम से वंचित कर दिया है तो दूसरी तरफ हिलते-काँपते खड़े होने की कोशिश करते बच्चों को स्कूल भेजकर उन्हें बस्तों के बोझ से लाद दिया जाता है। वहीं गरीब बच्चों का बचपन अन्धकार की ओर बढ़ रहा है। जिसे देखते हुए चन्द्रकांत देवताले लिखते हैं –

ढेर सारे बच्चे /
सार्वजनिक दीवारों पर गालियाँ लिख रहे हैं
ढेर सारे बच्चे बीड़ी के अड्डे ढूँढ रहे हैं
ढेर सारे बच्चे होटलों में / कप बसियाँ रगड़ रहे हैं
उनके चेहरे मेमनों की तरह दयनीय हैं।

बच्चों की तरह ही समकालीन कवियों ने वृद्ध जीवन की वास्तविकताओं को भी अपनी कविताओं में बड़ी यथार्थता के साथ अभिव्यक्त किया है। भौतिकता की अंधी दौड़ में लोगों के लिए घर के वृद्ध एक संकट की तरह लगने लगे हैं। यदि कुछ परिवारों में उनके लिए कोई जगह है भी तो केवल इसलिए कि वे घर के अनेक छोटे-मोटे कार्यों को करते रहते हैं। इसी उपयोगिताधर्मी पीढी की मानसिकता इस कविता में व्यक्त हुई है –

आखिर मर गया बूढा
वो बड़ा अच्छा था आटा पिसवाता था
सफाई वाली से अच्छी तरह सफाई करवाता था
सादगी से रहता था / बच्चों को खाना सिखाता था /
उसके रहते घर को ताला नहीं लगाना पड़ता था।

१३) **भाषिक भंगिमा :** भाषा भावों-विचारों की संवाहिका होती है। भाव-विचार जैसे होंगे, भाषा का तेवर भी वैसा ही होगा। यदि कविता का प्रतिपाद्य यथार्थपरक और आम आदमी के दैनंदिन से लिया गया है तो स्वाभाविक है कि उसका शिल्प भी तदनुरूप सहज-सपाट होगा। चूँकि, समकालीन कविता अपने परिवेश के प्रति प्रतिबद्ध कविता है। अतः पारिवेशिक विसंगतियों-विद्रूपताओं की बेपर्द अभिव्यक्ति के लिए जो दो टूक

शैली अपनायी गई है, उसने भाषा को नयी शक्ति प्रदान की है। समकालीन काव्य-भाषा आभिजात्य और संस्कार की भाषा नहीं है, अपितु अनुभवों की भट्टी में तपी-निखरी आम बोलचाल की भाषा है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

बाबू जी! सच कहूँ-मेरी निगाह में
न कोई छोटा है न कोई बड़ा है
मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने मरम्मत के लिए खड़ा है
असल में वह एक दिलचस्प गलतफहमी का
शिकार है। जो यह
सोचता है कि पेशा एक जाति है।
और भाषा पर।
आदमी का नहीं किसी जाति का अधिकार।

व्यंग्य भाषा का अचूक बाण है, यही वह धारदार अस्त्र है जिसके माध्यम से जीवन और जगत की अनगिनत विसंगतियों-विद्रूपताओं के मर्म पर सीधा प्रहार किया जा सकता है। समकालीन कवियों को जहाँ भी दोगलापन नजर आया वहाँ वे चूके नहीं, चाहे वह देश का प्रधानमंत्री हो या कोई अमीर-धनकुबेर या फिर अन्य कोई और। नेहरू की गिरती साख को रुपये के अवमूल्यन से जोड़कर कितना तीखा-चुभता व्यंग्य किया गया है, देखें -

हिंदुस्तानी रुपये पर छपी है जवाहरलाल नेहरू की तस्वीर
और इस तस्वीर की कीमत अभी तक
कुल ३६.५ प्रतिशत नीचे गिरी है।

१४) **अप्रस्तुत विधान :** प्रस्तुत को अधिक स्पष्ट-सुबोध बनाने के लिए रचनाकार अप्रस्तुत का संयोजन करता है। प्रस्तुत का यह संयोजन सादृश्य-संस्थापन के माध्यम से होता है, इन्हें उपमान भी कहा जाता है। समकालीन वस्तुस्थिति से अवगत कराने के लिए कवि ने अप्रस्तुत विधान हमारे आस-पास के परिवेश, हमारे रोज़मर्रा जीवन के चिरपरिचित क्षेत्रों से ही लिए हैं। यद्यपि ये उपमान सामान्य जीवन में से ही लिए गए हैं, फिर भी इनमें एक विशिष्ट भंगिमा है -

बुद्धि पर पर्त/ की पर्त प्रवंचना
चेहरे पर मक्खनी नरमाई
वह समय बीत गया, जब एक बात
कोई एक बात होती थी

शरद ऋतु की रजनी-प्रभात का मानवीकरण करके कितने सूक्ष्म एवं ललित अप्रस्तुतों की नियोजन की गयी है, यह देखते ही बनता है -

मैला तन चीर फाड़
स्वर्ण ज्योति मचल रही
डाह भरी रजनी के आभूषण कुचल रही

फेंक रही इधर-उधर
लत्ते-सा अंधकार

१५) **बिम्ब-विधान :** बिम्ब-विधान का जितना संबंध काव्य के विषय से है, उतना ही संबंध उसके रूप से भी है इसलिए काव्य में बिम्बों की महत्ता स्वयंसिद्ध है । जहाँ तक समकालीन काव्य का प्रश्न है तो स्पष्ट है कि इसमें बिम्बों की अत्यंत सुंदर एवं कलात्मक नियोजना हुई है। चाहे वह मुक्तिबोध हों या सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, नरेश मेहता हों या शमशेर बहादुर सिंह, रघुवीर सहाय हों या लीलाधार जगूड़ी सभी ने उच्च कोटि के सुंदर एवं कलात्मक बिम्बों को प्रस्तुत किया है।

नाव को केवट-वधू के रूप में चित्रित करने वाला यह सुन्दर बिम्ब यहाँ दर्शनीय है -

हवा से उभरा हुआ कुछ पाल
शीश पर आँचल लिया है डाल
दूर नदिया के किनारे गाँव
जा रही केवट वधू-सी

१६) **प्रतीक विधान :** अमूर्त भावों को मूर्तता प्रदान कर अभिव्यक्ति को सशक्त-प्रखर बनाने में प्रतीकों का बहुत बड़ा योगदान है। समसामयिक युगबोध को व्यंजित करने के लिए समकालीन रचनाकारों ने जहाँ पारंपरिक प्रतीकों को अभिनवता प्रदान की है, वहीं नए-नए प्रतीकों का भी निर्माण किया है।

वर्तमान जीवन में व्याप्त विसंगतियों को छोटे-मोटे आश्वासनों से नहीं अपितु समूची व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन लाने से ही सुधार लाया जा सकता है। अपनी इस दृढ़ मान्यता को मौसम के प्रतीक रूप में व्यक्त करते हुए कवि कहता है कि -

क्या हुआ कभी कभार / छोटी मोटी बूँदियाँ गिर पडीं
उससे तो और बढ़ती है उमस
अब पछवा को पुरवा मान लेने
(लेते रहने) से / नहीं चलेगा
मौसम ही बदले तो बदले।

कहीं-कहीं यह प्रतीक शब्दों में है तथा कहीं-कहीं पूरी कविता ही प्रतिकात्मक है । धूमिल की 'वसंत', जगूड़ी की 'पाटा' तथा राजकमल चौधरी की 'मुक्ति प्रसंग' इस दृष्टि से उल्लेखनीय कविताएँ हैं।

१७) **छंद-योजना :** यद्यपि समकालीन रचनाकार अपनी रचनाओं को पारंपरिक छंद-बंध में बांधने के कायल नहीं थे, फिर भी कविता के अनिवार्य तत्त्व लय की उपेक्षा वे सहन नहीं कर पाये और जहाँ लयात्मकता हो, वहाँ तुकबंदी भी होगी। लय, तुक, छंद से अनुशासित कुछ पंक्तियाँ यहाँ देखी जा सकती हैं -

ये डरी-डरी हवाएँ
ये बुझी-बुझी बहारें

न हंसी की खनखनाहट
न तो रसभरी फुहारें
रुकी धड़कनें सभी की
सभी हो गए हैं पत्थर
कहीं थरथरी नहीं है।

समकालीन हिन्दी कविता की उपलब्धियाँ

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि समकालीन हिन्दी कविता युगीन सच का साक्षात्कार करने वाली कविता है। परिवेश का जितना सच्चा और बेबाक चित्रण इस कविता में हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। पहली बार आम आदमी को उसके सम्पूर्ण रूप के साथ कविता में स्थान दिया गया है। मुक्ति की आकांक्षा मन में सँजोये समकालीन कविता उन लाखों-करोड़ों शोषितों-पीड़ितों के साथ है, जिनके मन में इस भ्रष्ट व्यवस्था के प्रति विक्षोभ है। समाज को सही प्रगति के मार्ग पर लाना और सार्थक ढंग से लिखना ही इन रचनाकारों की मूल रचनाधर्मिता है। इन दीन-हीन, शोषित-पीड़ित व्यक्ति के प्रति इनके मन में करुणा है, सहानुभूति है, मात्र सहानुभूति दर्शाकर वह उन्हें पंगु नहीं बनाना चाहते, बल्कि वे उनके भीतर सोये हुए उस ज्वार को जगाना चाहते हैं जो समाज में नयी क्रांति ला सकता है। आम आदमी की संवेदना ही काव्य की संवेदना बनी है और यही कारण है कि इसकी भाषा भी आम बोलचाल की भाषा है। प्रतीक, बिम्ब भी सामान्य जीवन से ग्रहण किए गए हैं। मानवीय सरोकारों से जुड़ी यह कविता जीवनानुभूत कविता है, जमीन से जुड़ी हुई कविता है। साधारण व्यक्ति, साधारण घटनाओं को अपना प्रतिपाद्य बनाने वाली यह कविता सचमुच, अपने-आप में अनन्य-असाधारण है।

६.४ सारांश

समकालीन कविता सत्य की बिन्धास्त प्रदर्शित करने में कारगर सिद्ध् हुई। दीन-हीन, शोषित-पीड़ित व्यक्ति के प्रति सहानुभूति, किसानों की परिस्थिति का यथार्थ चित्रण के साथ-साथ मानवीय सरोकारों से यह कविता जुड़ी हैं।

६.५ बोध प्रश्न

१. समकालीन हिन्दी कविता की प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए।

२. समकालीन हिन्दी कविता की विशेषताओं का वर्णन करते हुए इसकी उपलब्धियों का विवरण दिजिए

६.६ लघुत्तरीय प्रश्न

१. १९७० के बाद की कविता को किस काल की कविता माना गया है?

२. युगीन सच का साक्षात्कार करने वाली किस काल की कविताएँ कहलाती है?

❊❊❊❊❊❊❊

७

उपन्यास विधा का विकास

इकाई की रूपरेखा

७.० इकाई का उद्देश्य

७.१ प्रस्तावना

७.२ हिन्दी उपन्यास की पृष्ठभूमि

७.३ प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास

७.४ हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा

- ७.४.१ प्रेमचंद पूर्व युग
- ७.४.२ प्रेमचंद युग
- ७.४.३ प्रेमचंदोत्तर युग
- ७.४.४ स्वातंत्र्योत्तर युग

७.५ सारांश

७.६ बोध प्रश्न

७.७ लघुत्तरीय प्रश्न

७.८ संदर्भ ग्रंथ

७.० इकाई का उद्देश्य

विद्यार्थी हिन्दी साहित्य के गद्य साहित्य में उपन्यास विधा का विस्तृत अध्ययन करेंगे । प्रेमचंद पूर्व युग, प्रेमचंद युग और प्रेमचंदोत्तर युग के प्रमुख उपन्यासकार और उनके उपन्यास का अध्ययन करेंगे।

७.१ प्रस्तावना

हिन्दी गद्य साहित्य में उपन्यास अपेक्षाकृत नवीन साहित्यिक विधा मानी जाती है। अन्य विधाओं की तुलना में उपन्यास साहित्य लेखक एवं पाठक दोनों से अधिक समय की मांग करता है। अपने विस्तृत कलेवर एवं देशकाल के बावजूद यह पाठक वर्ग द्वारा सर्वाधिक पसंद की जाने वाली विधा है। उपन्यास में सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन को उभारने का प्रयास विशेष रूप से किया जाता है। इसमें सामान्य जीवन के द्वन्द्व, फैलाव और गति का समावेश अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में अधिक होता है। इस विधा का प्रारम्भ हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में हुआ। भारतेन्दु युग में ही ऐसी स्थिति बनने लगी थी कि लेखकों ने एक नई विधा की आवश्यकता महसूस की। दरअसल वे अपनी पूरी - पूरी बात खुलकर नहीं कह

पा रहे थे। कविता, निबन्ध, नाटक, प्रहसन आदि साहित्य की अन्यान्य विधाएँ युगीन चेतना को पूरी तरह प्रस्तुत करने में असफल साबित हो रही थीं। ऐसी दशा में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का ध्यान उपन्यास विधा की तरफ गया। वे बंगला उपन्यासों से परिचित थे और उसी तर्ज़ पर हिन्दी में भी उपन्यास लेखन चाहते थे। स्वतन्त्र उपन्यासों की रचना न होने की स्थिति में कुछ बंगला उपन्यासों के अनुवाद के भी पक्षधर थे। उनके प्रयास से अनेक बंगला उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद हुआ और कुछ उपन्यास हिन्दी में भी लिखे गए। वे खुद भी उपन्यास लिखना चाहते थे, पर शुरुआती पृष्ठ ही लिख सके। उन्होंने अपने उपन्यास का नाम रखा था– 'एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती।' हिन्दी साहित्य जगत में अंग्रेजी ढंग का मौलिक उपन्यास पहले पहल हिन्दी में लाला श्रीनिवास दास का 'परीक्षा गुरु' (सन् १८८२) ही निकला। यही कारण है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी द्वारा लिखित उपन्यास 'भाग्यवती' (सन् १८७७) की बजाय 'परीक्षा गुरु' को प्रथम उपन्यास माना है। वैसे बहुत से आलोचक 'भाग्यवती' को प्रथम हिन्दी उपन्यास का दर्जा देते हैं। वैसे निर्विवाद तथ्य है कि हिन्दी में उपन्यास लेखन की परम्परा बंगला के प्रभाव से प्रारम्भ हुई। भारतेन्दु युग में ही उपन्यास लेखन की नींव रखी जा चुकी थी, पर उसे प्रेमचंद युग में सही रूपाकार और व्यापकता मिली। देवकीनंदन खत्री ने अपने जासूसी उपन्यासों से पाठकों का एक बहुत बड़ा वर्ग तैयार कर दिया, जिसे जोड़े रखने एवं उनकी संख्या में गुणोत्तर वद्धि करने का कार्य प्रेमचंद जी ने किया। इसमें उन्हें अपने समकालीन उपन्यासकारों से भी पर्याप्त सहयोग मिला। प्रेमचंद के लेखन के सम्बन्ध में हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है– "अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार - विचार, भाषा - भाव, रहन - सहन, आशा - आकांक्षा दु:ख और सूझ - बूझ जानना चाहते हैं, तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता।" प्रेमचंद ने हिन्दी गद्य साहित्य की भूमि को अपनी रचनात्मकता से जो उर्वरा शक्ति प्रदान की, उससे गद्य साहित्य की फसल लहलहा उठी। प्रेमचंद जी के समकालीन रचनाकारों ने तो उपन्यास लिखे ही, उनके बाद में तो उपन्यास साहित्य हिन्दी गद्य साहित्य की पहचान बन गया।

७.२ हिन्दी उपन्यास की पृष्ठभूमि

हिंदी उपन्यास-साहित्य के लेखन का प्रारम्भ **१९**वीं शताब्दी के सातवें दशक के उपरांत हुआ। यद्यपि भारत में कथा-साहित्य की परम्परा अत्यंत प्राचीन और समृद्ध थी तथापि जिस रूप में हिंदी उपन्यास साहित्य का जन्म और विकास हुआ उसका इतिहास उतना पुराना नहीं है। हिंदी लेखकों या उपन्यासकारों को उपन्यास लेखन की प्रेरणा सीधे-सीधे पश्चिमी उपन्यासकारों और उनके उपन्यासों से मिली। इस अर्थ में हिंदी उपन्यास साहित्य को 'आधुनिक युग की देन' कहना ज़्यादा उपयुक्त है। उपन्यास साहित्य के अस्तित्व में आ जाने के बाद उस पर संस्कृत साहित्य की आख्यायिका आदि का प्रभाव पड़ा हो पर यह वास्तविकता है कि उसके जन्म में इसका किंचित भी योगदान नहीं है। हिंदी में प्रथम कहानी की तरह हिंदी के प्रथम उपन्यास और उपन्यासकार का प्रश्न अत्यंत विवादास्पद दिखता है। हिंदी साहित्य में उपन्यास-लेखन का प्रारम्भ मौलिक सृजन की अपेक्षा विभिन्न भाषाओं में रचित उपन्यासों के अनुवादों के माध्यम से हुआ जान पड़ता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कहना है कि "इस द्वितीय (गद्य) उत्थान में आलस्य का जैसा त्याग उपन्यासकारों में देखा गया, वैसा किसी अन्य वर्ग के लेखकों में नहीं।" और वस्तुतः उपन्यास लेखन के क्षेत्र में

आलस्य-त्याग की यह चेतना सर्वप्रथम अनूदित उपन्यासों के रूप में प्रस्फुटित होते हुए दिखाई देती है। प्राचीन भारतीय साहित्य में कथा - साहित्य का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'वृहत्कथा' मिलता है और संस्कृत में भी पौराणिक आख्यान तथा अन्य उपन्यास - जातीय काव्य मिलते हैं किन्तु आधुनिक युग में उपन्यास एक विशेष शैली पर रचित कथा - गद्य है, जिसका मुख्य आधार वास्तविकता है। प्राचीन कथा - साहित्य में जीवन का कल्पनाजन्य विवेचन मिलता है। हिन्दी में 'उपन्यास' नामक गद्य विधा का वर्तमान रूप में प्रादुर्भाव आधुनिक काल से ही माना जा सकता है। उपन्यास का प्रादुर्भाव पाश्चात्य प्रणाली पर ही हुआ है, भारतीय परम्परा में नहीं। हिन्दी में जब उपन्यास साहित्य का प्रारम्भ हुआ तब तक पाश्चात्य साहित्य में इसका पूर्ण रूप से विकास हो चुका था और अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से बंगला में भी धड़ाधड़ उपन्यास निकल रहे थे। हिन्दी में यह प्रवृत्ति वहीं से आयी। इस बात को अधिकांश विद्वानों ने स्वीकार किया है। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने उपन्यास के सम्बन्ध में कहा है – "मैं उपन्यास को मानव - चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव - चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्य को खोलना ही उपन्यास का तत्व है।" प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास का कालखण्ड सन् १८७७ से १९१८ माना जा सकता है। सन् १८७७ में श्रद्धाराम फिल्लौरी ने भाग्यवती उपन्यास लिखा था। यह उपन्यास उपदेशात्मक है। यह अंग्रेजी ढंग का मौलिक उपन्यास तो नहीं था, परन्तु इसमें विषय - वस्तु की नवीनता थी। इसीलिए इसे हिन्दी का पहला उपन्यास कहा गया है। हिन्दी उपन्यासों के प्रेरणास्रोत रहे बंगला उपन्यासों की भूमि बहुत उर्वर रही है। बंगला में सन् १८७७ के पहले बहुत से उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे। सन् १८७३ ई. में सबसे पहले गदाधरसिंह ने बंगला के दो उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया। भारतेन्दु युग में बंगला के बहुत - से उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद हुआ। गदाधरसिंह ने बंगविजेता और दुर्गेशनन्दिनी, राधाकृष्णदास ने स्वर्णलता, मरता क्या न करता, कार्तिकप्रसाद खत्री ने इला, प्रमोला, जया, मधुमालती इत्यादि राधाचरण गोस्वामी ने जावित्री, मृण्मयी, बिरजा इत्यादि बंगभाषा के उपन्यासों के अनुवाद किये। यह अनुवादों की परम्परा **२०**वीं शताब्दी के प्रथम चरण तक अबाध रूप से चलती रही। तत्कालीन उपन्यासों में भवानीचरण बन्द्योपाध्याय का नवबाबू विलास (सन् १८२५) और टेकचन्द ठाकुर (पियारीचन्द्र मित्रा) का आलालेर घरेर दुलाल (सन् १८५७) बहुत लोकप्रिय हुए। बंगला के कई उपन्यासों का प्रभाव हिन्दी उपन्यासों पर स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। हिन्दी उपन्यासों की भूमि बंगला उपन्यासों के अनुवाद द्वारा भी समृद्ध हुई है। बंगला के अलावा अंग्रेजी उपन्यासों का भी अप्रत्यक्ष प्रभाव हिन्दी उपन्यासों पर पड़ा है। 'परीक्षागुरु' पर तो अंग्रेजी का सीधा प्रभाव स्वीकार किया जाता है। 'परीक्षागुरु' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास होने का दर्जा प्राप्त है।

७.३ प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास

हिन्दी उपन्यास साहित्य विषय वैविध्य एवं पाठनीयता के लिए लोकप्रिय है। हिन्दी साहित्य में उपन्यास लेखन कार्य कब शुरू हुआ इस विषय पर भी अन्य विधाओं की तरह पर्याप्त मतभेद हैं। कुछ विद्वान भारतेंदु को ही हिंदी के प्रथम उपन्यास-लेखक और प्रवर्तक का श्रेय देना चाहते हैं। उनकी कृति 'पूरन प्रकाश और 'चंद्रप्रभा' को हिंदी का प्रथम उपन्यास माना है। पर वास्तव में भारतेंदु जी की यह कृति उनकी मौलिक रचना न होकर मराठी से अनुदित है।

किंतु हिंदी में उपन्यास लेखन की परम्परा का सूत्रपात अनुवादों से मानते हुए आचार्य शुक्ल, रामकृष्ण वर्मा को उनके द्वारा अनुदित उपन्यासों के कारण, हिंदी का प्रथम उपन्यास लेखक होने का गौरव प्रदान करना चाहते हैं। इस परम्परा का प्रारम्भ सन **१९५१** से रामकृष्ण वर्मा के अंग्रेजी उपन्यासों के हिंदी अनुवादों के माध्यम से हुआ। तत्पश्चात् इस अनुवाद कार्य में कार्तिक प्रसाद खत्री सामने आए। हिंदी उपन्यास के इस ऐतिहासिक विकासक्रम को स्पष्ट करते हुए शुक्ल जी हिंदी के प्रथम उपन्यासकार के रूप में भारतेंदु जी को स्वीकृति प्रदान करते नजर नहीं आते। परंतु वार्श्नेय जी संकेत देते हैं कि "भारतेंदु ने पौराणिक, ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासों की ओर ध्यान दिया। उन्होंने स्वयं अनुवाद किया और दूसरों को इस ओर उत्साहित किया।" इससे स्पष्ट होता है कि वे भारतेंदु को हिंदी का प्रथम उपन्यास लेखक मानते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा का तो ऐसा स्पष्ट मत है। 'हिंदी साहित्य कोश' (प्रथम भाग) में उल्लिखित है कि "इसी समय भारतेंदु हरिश्चंद्र ने मराठी से अनुदित 'पूरन प्रकाश और चंद्रप्रभा' नामक हिंदी का प्रथम सामाजिक उपन्यास प्रस्तुत किया।" लेकिन कतिपय इतिहास लेखकों का मत है कि भारतेंदु के समकालीन लेखक लाला श्रीनिवासदास हिंदी के प्रथम उपन्यास लेखक हैं और उनका उपन्यास 'परीक्षा गुरु' हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास है। शुक्ल जी अनुदित उपन्यासों की परम्परा का ख़्याल करते हुए रामकृष्ण वर्मा और कार्तिक प्रसाद खत्री को यह श्रेय देना चाहते हैं। परंतु डॉ. श्रीकृष्ण का विचार है कि "देवकीनन्दन खत्री के 'चंद्रकांता संतति' के पहले हिंदी में उपन्यास के साहित्य रूप की प्रतिष्ठा न हो सकी।" लेकिन लाला श्रीनिवास दास उनसे पहले के उपन्यासकार हैं और 'परीक्षा गुरु' एक बड़ी सीमा तक, औपन्यासिक तत्त्वों से समन्वित हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास है। अतः इस उपन्यास को हिंदी का प्रथम उपन्यास कहना बिलकुल उपयुक्त है।

इस युग के पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी, लाला श्रीनिवास दास, बालकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह, राधकृष्ण दास, लज्जाराम मेहता, किशोरीलाल गोस्वामी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, ब्रजनन्दन सहाय और मन्नन द्विवेदी प्रमुख सामाजिक उपन्यासकार हैं। पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी ने भाग्यवती (सन् १८७७) लिखकर स्त्रियों को गृहस्थ धर्म की शिक्षा दी थी। लाला श्रीनिवास दास ने परीक्षागुरु (सन् १८८२) में यह सन्देश दिया कि जो बात सौ बार समझाने से समझ में नहीं आती, वह एक बार की परीक्षा से मन में बैठ जाती है। जासूसी उपन्यासकारों में गोपालराम गहमरी ने सर्वाधिक प्रसिद्धि प्राप्त की। उन पर अंग्रेजी के सर आर्थर कानन डायल का स्पष्ट प्रभाव दिखलाई पड़ता है। उन्होंने सन् १९०० में जासूस नामक मासिक पत्र निकाला। उन्होंने इस पत्र के लिए कई उपन्यास लिखे। अद्भुत लाश (सन् १८९६), गुप्तचर (सन् १८९९), बेकसूर की फाँसी (सन् **१९००**), सरकटी लाश (सन् १९००) आदि उनके कुछ प्रमुख उपन्यास हैं। उन्हें हिन्दी का 'आर्थर कानन डायल' कहा गया है। उनके अलावा रामलाल वर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी, जयरामदास गुप्त, रामप्रसाद लाल आदि ने भी ऐसे कुछेक उपन्यास लिखे हैं।

७.४ हिन्दी उपन्यासों की विकास यात्रा

हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास यात्रा को अलग-अलग विद्वानों ने अपनी मान्यता एवं शोध के आधार पर विभिन्न नाम देते हुए परिभाषित करने का प्रयास किया है। कुछ विद्वानों ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा किये गये गद्य साहित्य के विभाजन को केन्द्र में रखते हुए उपन्यास साहित्य का विभाजन किया है। उन विद्वानों ने उपन्यास साहित्य की विकास यात्रा

को प्रथम उत्थान, द्वितीय उत्थान, तृतीय उत्थान के रूप में प्रस्तुत किया है। यहां प्रथम एवं द्वितीय उत्थान से तात्पर्य प्रारंभिक उपन्यासों अर्थात प्रेमचंद पूर्व युग के उपन्यासों से है। हालांकि कुछ विद्वान प्रथम उत्थान को भारतेंदु युगीन उपन्यास तथा द्वितीय उत्थान को द्विवेदी युग भी कहते हैं। वहीं अधिकांश विद्वानों ने उपन्यास सम्राट प्रेमचंद जी को ही केन्द्र में रखते हुए विभाजन करना उचित समझा है। इस विचार धारा से प्रभावित विद्वानों ने उपन्यास साहित्य की विकास यात्रा को निम्नलिखित ४ भागों में बांटा है-

१. प्रेमचंद पूर्व युग

२. प्रेमचंद युग

३. प्रेमचंदोत्तर युग

४. स्वातंत्र्योत्तर युग

७.४.१ प्रेमचंद पूर्व युग

हिन्दी उपन्यास साहित्य का प्रेमचंद पूर्व युग भारतेंदु जी के प्रभामंडल से आलोकित रहने वाला युग है। भारतेंदु हरिश्चंद्र जी ने हिंदी की विभिन्न विधाओं में महत्त्वपूर्व योगदान दिया परंतु उपन्यास के विकास में उनका योगदान अधिक नहीं है। उन्होंने कुछ उपन्यासों का अनुवाद अवश्य किया परंतु किसी मौलिक उपन्यास की रचना नहीं की। उन्होंने एक उपन्यास लिखना आरम्भ किया था परंतु वह पूर्ण नहीं हो पाया। यही कारण है कि अधिकांश विद्वानों ने हिन्दी उपन्यास साहित्य के इस प्रारंभिक चरण को भारतेंदु युग कहने के बजाय प्रेमचंद पूर्व युग कहना कहीं ज्यादा श्रेयस्कर समझा। वहीं कुछ विद्वानों ने इसे प्रथम एवं द्वितीय उत्थान के रूप में प्रस्तुत किया है। विद्वानों ने इस युग की समयावधि १८७०-१९१६ तक मानी हैं, वहीं कुछ विद्वान इसका विस्तार १९१८ तक स्वीकारते हैं। इस युग में कुछ उपन्यासकारों ने तिलिस्मी व जासूसी उपन्यास लिखे। इस काल के उपन्यासकारों में देवकीनंदन खत्री, गोपालराम गहमरी और किशोरीलाल गोस्वामी का नाम उल्लेखनीय है। देवकीनंदन खत्री ने चंद्रकांता व चंद्रकांता संतति जैसे तिलिस्मी और ऐयारी उपन्यास लिखे। ये उपन्यास इतने अधिक लोकप्रिय हुए कि इन्हें पढ़ने के लिए लाखों लोगों ने हिंदी सिखी। गोपालराम गहमरी ने पाँच दर्जन से अधिक जासूसी उपन्यास लिखे। किशोरीलाल गोस्वामी ने तिलिस्मी उपन्यासों का ढेर सा लगा दिया। बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी', 'सौ अजान, एक सुजान' उपन्यास लिखे। अयोध्या सिंह उपाध्याय भी एक लोकप्रिय उपन्यासकार हुए। उन्होंने 'ठेठ हिंदी का ठाठ' तथा 'अधखिला फूल' उपन्यासों की रचना की। भारतेंदु काल में जो अन्य लेखक उपन्यास-लेखन की ओर प्रवृत्त हुए उनमें राधारमण गोस्वामी, कार्तिक प्रसाद खत्री, राधाकृष्ण दास, बालमुकुंद शर्मा, गोकुल नाथ शर्मा आदि प्रमुख हैं। इन उपन्यास लेखकों ने सामाजिक ऐतिहासिक वृत्तों के आधार पर प्रेम, शौर्य, सतीत्व, जातीय गौरव और राष्ट्रीयता की प्रखर चेतना से समन्वित उपन्यास लिखे। सामाजिक उपन्यासों की ही एक शाखा के रूप में नैतिक शिक्षाओं से पूर्ण उपन्यासों की परम्परा विकसित हुई। नैतिक शिक्षापरक अनेक परम्परा की सर्जना हुई। इसमें बालकृष्ण भट्ट, रत्नचंद प्लीडर आदि के उपन्यासों ने इस साहित्यिक विद्या का भंडार काफ़ी समृद्ध बनाया। इस युग के प्रसिद्ध उपन्यासों में 'दीप निर्वाण', 'सरोजिनी', 'दुर्गेशनंदिनी', 'मधुमती', 'राधारानी', 'त्रिवेणी', 'स्वर्गीय कुसुम', 'हृदयहारिणी', 'लवंगलता', 'नूतन ब्रह्मचारी', 'सौ अजान एक सुजान', 'नूतन चरित्र', 'सुख

शर्वरी', 'स्वतंत्र रमन और परतंत्र लक्ष्मी', 'धूर्त रसिक लाल', 'बड़ा भाई', 'सास पतोहू' एवं 'दिनानाथ' आदि उल्लेख्य हैं। इन उपन्यासों में राष्ट्र प्रेम का प्रचार, प्रचलित सामाजिक कुरीतियों और कुप्रथाओं के मूलोच्छेदन का उद्देश्य ही प्रमुख है। गुण-दोषों का ठीक-ठाक विवेचना करना इन उपन्यासों का अंतिम लक्ष्य है। भारतेंदु युग में ही "तिलस्मी अय्यारी और जासूसी उपन्यास लेखन की पुख़्ता नींव पड़ चुकी थी।" इस प्रवृत्ति की स्पष्ट झलक किशोरी लाल गोस्वामी और गोपालराम गहमरी के उपन्यासों में मिलती है। ऐसे उपन्यासों में चमत्कार प्रदर्शन, कौतूहल वृद्धि, जादू-टोना, घटना-वैचित्र्य, प्रेम-प्रसंग, मिलन की उत्सुकता, विश्व की व्याकुलता, कथानक की जटिलता, चरित्र-संघटन और सुखान्तता की प्रवृत्ति मिलती है। 'चंद्रकांत संतति' यद्यपि इसी तिलस्मी अय्यारी और जासूसी स्रोत से लिखा गया उपन्यास है। तथापि पहले मौलिक उपन्यास लेखक जिनके उपन्यासों की सर्वसाधारण में धूम हुई वे देवकी नंदन खत्री ही थे। उपन्यासकला की दृष्टि से यह उपन्यास 'चंद्रकांता संतति' हिंदी का प्रथम मौलिक और साहित्यिक उपन्यास है। यद्यपि शुक्ल जी किशोरी लाल गोस्वामी के उपन्यास को प्रथम बार साहित्यिक कोटि की रचनाएँ मानते हैं तथापि इस सहित्यिकता का प्रथम प्रस्फुटन 'चंद्रकांता संतति' में ही हुआ था।

भारतेंदु काल में जासूसी, अय्यारी और तिलस्मी उपन्यासों की ही प्रधानता रही और इन उपन्यासों ने जनसाधारण का भरपूर मनोरंजन किया परंतु साहित्यिक समाज का मनोविनोद नहीं हो सका। इस काल में अनुवादों को छोड़कर कथासृष्टि की दृष्टि से मौलिक प्रौढ़ और उच्च कोटि के उपन्यास, नहीं के बराबर लिखे गए हैं। लेकिन इसके बावजूद कहना पड़ता है कि 'चंद्रकांता' में जिस शिल्प तथा लोकप्रचलित कथाओं के स्रोत को ग्रहण किया गया, उससे ऐसे उपन्यासों में इतना कलात्मक सौंदर्य आ गया है कि तिलस्मी उपन्यासों को ही कलापूर्ण उपन्यासों का प्रथम स्वरूप मानना पड़ेगा। भारतेंदु युग यानी प्रेमचंद पूर्व युग में बहुत - सी पत्रिकाएँ भी निकलने लगी थीं। उस युग की प्रसिद्ध पत्रिका देवकीनन्दन खत्री द्वारा सम्पादित उपन्यास लहरी है, इस युग में तिलस्म की प्रवृत्ति फारसी से आई। फारसी से तिलस्म उर्दू में आया और देवकीनन्दन खत्री ने उर्दू से लेकर उसे हिन्दी में प्रयुक्त किया। १९वीं शताब्दी के प्रमुख उपन्यासकारों की बात करें तो देवकीनन्दन खत्री प्रथम हैं। चन्द्रकान्ता, नरेन्द्रमोहिनी, वीरेन्द्रवीर, कुसुमकुमारी, काजर की कोठरी, चन्द्रकान्ता संतति, गुप्त गोदना और भूतनाथ (छ: भाग) इनके प्रमुख उपन्यास हैं। पं. किशोरी लाल गोस्वामी के प्रणयिनी परिणय, लवंगलता, जिन्दे की लाश, लीलावती, राजकुमारी, लखनऊ की कब्र, अंगूठी का नगीना, रंगमहल के हलाहल, तारा आदि हैं। तीसरे कथाकार गोपालराम गहमरी के चतुरचला, गुप्तचर, डबल जासूस, जमुना का खून, चक्करदार चोरी, बेकसूर फाँसी, पड़े में धाली, जासूस की बुद्धि, मेरी और मेरीना, खूनी की खोज आदि उपन्यास हैं। गहमरी ने मनुष्य की अपराध - वृत्ति को अपने उपन्यासों का मूल आधार बनाया है। उनके उपन्यासों के मूल विषय हैं - चोरी, डकैती, हत्या - विशेष रूप से हत्याएँ। लेखक ने ग्राम, नगर और महानगर सभी स्थानों से सनसनीपूर्ण घटनाएँ जुटाई हैं। द्विवेदी युग में हिन्दी उपन्यास में ऐय्यारी और तिलस्मी उपन्यासों का प्राधान्य हो गया। इस काल के उपन्यासकार हैं - अयोध्या सिंह उपाध्याय, ब्रजनन्दन सहाय, ईश्वरी प्रसाद आदि। प्रेमचंद पूर्व युग के उपन्यासों को अध्ययन की सुविधा के लिए हम पाँच भागों में विभाजित कर सकते हैं—सामाजिक उपन्यास, तिलस्मी तथा ऐय्यारी के उपन्यास, जासूसी उपन्यास, प्रेमाख्यात्मक और ऐतिहासिक उपन्यास।

सामाजिक उपन्यास : सामाजिक उपन्यासों में श्रद्धाराम फिल्लौरी का 'भाग्यवती' सामाजिक समस्या को लेकर लिखा हुआ प्रथम मौलिक उपन्यास था। इसकी रचना १८७७ में हुई थी। यह अपने समय में बहुत लोकप्रिय रहा। श्रीनिवासदास का 'परीक्षा गुरु' भी मौलिक सामाजिक उपन्यास है, परन्तु इसका वस्तु-विन्यास ऐसा है कि पाठक का हृदय ऊबने लगता है। स्थान-स्थान पर अंग्रेजी, फारसी और संस्कृत के नीतिपूर्ण उद्धरणों के कारण पाठक का हृदय भरने लगता है । बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी', किशोरी लाल गोस्वामी का 'हृदयहारिणी', लज्जा राम मेहता का 'परतन्त्र लक्ष्मी', कार्तिक प्रसाद का 'दीनानाथ', हनुमन्तसिंह का 'चन्द्रकला', राधाकृष्णदास का 'निःसहाय हिन्दू' अच्छे सामाजिक उपन्यास थे। कुछ और भी उपन्यास लिखे गये थे, जिनमें सामाजिक कुरीतियों पर प्रकाश डाला गया था, परन्तु उनमें उपदेश वृत्ति इतनी अधिक है कि उपन्यास की रोचकता नष्ट हो जाती है।

तिलस्मी तथा ऐय्यारी उपन्यास : हिन्दी में तिलस्मी और ऐय्यारी का भाव फारसी कहानियों के अनुकरण से आया। सन् **१८९१** में देवकीनन्दन खत्री ने 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकांता संतति' नामक दो उपन्यास लिखे। ये ऐय्यारी की रचनायें इतनी लोकप्रिय हुईं कि जो हिन्दी पढ़ना भी नहीं जानते थे उन्होंने केवल इन उपन्यासों को पढ़ने के लिए ही हिन्दी पढ़ना सीखा। इससे प्रभावित होकर अन्य उपन्यासकारों ने भी तिलस्मी और ऐय्यारी का प्रयोग किया। किशोरीलाल गोस्वामी जैसे प्रसिद्ध लेखक भी अपने स्वर्गीय 'कुसुम' और 'लवंगलता' नामक उपन्यासों में इस बीमारी से बच न सके। देवकीनन्दन खत्री के अतिरिक्त देवीप्रसाद शर्मा ने 'सुन्दर सरोजनी', हरे कृष्ण जौहर ने 'भयानक भ्रम', जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने 'बसन्त मालती' आदि उपन्यास लिखकर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस प्रकार के उपन्यासों का एक ढेर-सा लगा दिया।

जासूसी उपन्यास : हिन्दी के उपन्यासकारों को जासूसी उपन्यासों की प्रेरणा, पश्चिम की पुलिस खोजों से भरे हुए उपन्यासों से प्राप्त हुई। इस शाखा के सबसे प्रमुख लेखक गोपालराम गहमरी थे। इनके कथानक स्वाभाविक होते थे। 'जासूस की चोरी', 'जासूसों पर जासूस', 'किले में खुन', 'खून का भेद', 'खुनी खोज' आदि आपके प्रसिद्ध उपन्यास थे। चन्द्रशेखर के 'अमीर अली ठग', 'शशिबाला' किशोरीलाल गोस्वामी का 'जिन्दे की लाश' आदि इस कोटि के उपन्यास हैं।

प्रेमाख्यात्मक उपन्यास : सामाजिक उपन्यासों को छोड़कर अन्य सभी उपन्यासों का विषय प्रेम ही होता था। तिलस्मी और ऐय्यारी के उपन्यासों में भी प्रेम के अतिरिक्त रूप के दर्शन होते हैं । इनके अतिरिक्त किशोरीलाल गोस्वामी ने भी 'लीलावती', 'चन्द्रावती', 'तरुण तपस्विनी' आदि उपन्यासों में भी प्रेम का ही आश्रय लिया है।

ऐतिहासिक उपन्यास : ऐतिहासिक उपन्यास भी इस युग में लिखे गये, परन्तु उनमें ऐतिहासिक अनुसंधान के आधार पर राजनीतिक एवम् आर्थिक परिस्थितियों के चित्रण का अभाव है । मिश्र बन्धुओं का 'वीरमणि', किशोरीलाल गोस्वामी का राजकुमारी', 'तारा', 'चपला', 'लखनऊ की कब्र' इस प्रकार के उपन्यास हैं। प्रेमचंद के पूर्ववर्ती उपन्यासों में औपन्यासिक तत्वों के समुचित सामंजस्य का अभाव था। अधिकांश उपन्यास घटना-प्रधान, मनोरंजन या कौतूहलवर्धक होते थे। फिर भी आगे के युग के लिये उपन्यास के पाठकों को

तैयार करने का श्रेय इन्हीं उपन्यासों एवं उपन्यासकारों को है । देवकीनन्दन खत्री की व्यावहारिक भाषा को ही प्रेमचंद ने अपना आधार बनाया ।

७.४.२ प्रेमचंद युग

हिन्दी उपन्यास साहित्य का स्वर्ण काल कहे जाने वाले प्रेमचंद युग का समय १९१६-१९३६ माना गया है । हालांकि अधिकांश विद्वाना प्रेमचंद युग की शुरूआत १९१८ से मानते हैं । इस युग को हिन्दी उपन्यास साहित्य का 'तृतीय उत्थान' भी कहा गया है । इस युग में सम्राट प्रेमचंद का प्रादुर्भाव हुआ और उपन्यास साहित्य का सर्वांगीण विकास हुआ ।

प्रेमचंद 'उपन्यास सम्राट' कहलाते हैं । उन्हीं के उपन्यास-क्षेत्र में पदार्पण से एक नए युग का आरंभ हुआ । वस्तुतः वे हिंदी के प्रथम मौलिक उपन्यासकार थे । उन्होंने उपन्यास विधा को नई पहचान दी । उनके उपन्यासों में निम्न वर्ग, मध्यमवर्ग, भारतीय किसान व समस्त शोषित वर्ग की विभिन्न समस्याओं का चित्रण मिलता है । प्रेमचंद युग में सामाजिक, ऐतिहासिक तथा मनोवैज्ञानिक तीन प्रकार के उपन्यास लिखे गए । प्रेमचंद के अधिकांश उपन्यास सामाजिक हैं । सन १९१८ में प्रेमचंद का उपन्यास 'सेवासदन' प्रकाशित हुआ । इसके साथ ही उपन्यासों की स्वस्थ परंपरा चल निकली । प्रेमाश्रम (१९२१ ई.), रंगभूमि (१९२५ ई.), कायाकल्प (१९२६ ई.), निर्मला (१९२७ ई.), गबन (१९३१ ई.), कर्मभूमि (१९३२ ई.), गोदान (१९३६ ई.) और मंगलसूत्र (१९३६ ई.- अधूरा) आदि प्रेमचंद के प्रसिद्ध उपन्यास हैं । उनके उपन्यासों में तत्कालीन समाज की यथार्थ झांकी मिलती है । उस समय के समाज में जितनी भी बुराइयां थी उनका वर्णन प्रेमचंद के उपन्यासों में मिलता है । गोदान तो प्रेमचंद की ही नहीं वरन हिंदी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है । अब तक उपन्यास - निर्माण का प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन था, प्रेमचंद ने सर्वप्रथम यथार्थ को भूमिका पर चरित्र - चित्रण की ओर पूर्णरूप से ध्यान दिया और मानव जीवन और मुख्यतया कृषक वर्ग एवं राष्ट्रीय आन्दोलन को अपने उपन्यासों में बड़ी संवेदनशील शैली में प्रदर्शित किया । इसलिए उन्हें कुछ परिस्थिति - चित्रण भी करने पड़े, जो बड़े सजीव एवं यथार्थ हैं । उनकी सबसे बड़ी विशेषता सरलता एवं अकृत्रिमता ही है । वस्तुतः हिन्दी उपन्यासों में यथार्थवादी विचारधारा का उचित प्रकाशन प्रेमचंद से ही प्रारम्भ होता है । वैसे तो भारतेन्दु युग में भी यथार्थ की प्रवृत्ति थी, किन्तु इस समय इसका मूल राष्ट्रीय चेतना और जीवन की विविध परिस्थितियाँ थी । इसीलिए इस युग की यथार्थानुभूति में वंदना की विवृत्ति है ।

प्रेमचंद ने हिन्दी कथा साहित्य को एक नया मोड़ प्रदान किया, अपनी कृतियों से अपने समकालीन अन्य साहित्यकारों को प्रेरणा दी । प्रेमचंद जी के लिखने के समय देश में राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ हो गये थे । आर्य समाज का सुधार आन्दोलन तेजी से चल रहा था । प्रेमचंद जी के उपन्यासों पर तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । उन्होंने उपन्यास को तिलस्मी और प्रेमाख्यान की दलदल से निकालकर मानव जीवन की दृढ़ नींव पर लाकर खड़ा कर दिया । उनके उपन्यासों की कथावस्तु कल्पना-प्रसून न होकर मानव-जीवन की वास्तविकता से ओत-प्रोत है । चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में प्रेमचंद जी ने नवीन परिवर्तन उपस्थित किया । उसमें उन्होंने स्वाभाविकता की प्रतिष्ठा की । उनकी सूक्ष्म दृष्टि महलों से लेकर झोपड़ियों तक, खेतों और खलिहानों से लेकर बड़ी-बड़ी मिलों तक समान रूप से पड़ी । उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि कोरा

यथार्थवाद या कोरा आदर्शवाद जन-कल्याण नहीं कर सकता । अत: उनका साहित्य आदर्शोन्मुख यथार्थवादी ही रहा । उन्होंने इस तथ्य का उद्घाटन किया कि मनुष्य का चरित्र कोई स्थिर वस्तु नहीं है, संगति और सम्पर्क से उसमें परिवर्तन होता रहता है । भले आदमी बुरे बन सकते हैं और बुरे आदमी भले । जो लोग यह चिल्लाते हैं कि कला, कला के लिये है उनका उन्होंने खूब विरोध किया । उनका विचार था कि कला वह है, जिससे हमारी सुरुचि जाग्रत हो, हमें आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति प्राप्त हो, हममें शक्ति और गति आये । यही कारण है कि उन्होंने सभी समस्याओं के विषय में चाहे वह राजनीतिक हों या सामाजिक, आर्थिक हों या धार्मिक अपना पृथक् दृष्टिकोण प्रस्तुत किये । यह निश्चित है कि कहीं-कहीं वे साहित्यकार न रहकर एक उपदेशक का रूप ग्रहण कर लेते हैं परन्तु समाज में फैली कुरीतियों का स्पष्ट दिग्दर्शन कराने में वे पूर्ण सफल हुए हैं । 'सेवा सदन' में उस भयंकर सामाजिक दोष का चित्रण किया गया है जिससे विवश होकर हमारी कुल कन्यायें और कुल वधुएँ वेश्या बन जाती हैं । 'प्रेमाश्रम' में एक ओर भारतीय किसान की निर्धनता और विवशता तथा दूसरी ओर विधवाओं की समस्या दिखाई गई है । 'निर्मला' वृद्ध विवाह और दहेज-प्रथा के दुष्परिणामों का भंडाफोड़ करता है । 'गबन' में यह दिखाया गया है कि स्त्रियों का आभूषण-प्रेम, हरी-भरी गृहस्थी को किस प्रकार ध्वस्त कर देता है । 'गोदान' में किसान की विवशता तथा 'कर्मभूमि' में जमींदार-किसान सम्बन्ध, अछूतोद्धार, मन्दिर प्रवेश, म्युनिसिपल कमेटी आदि सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है । इस उत्थान के दूसरे महत्वपूर्ण लेखक जयशंकर प्रसाद हैं जो अपने 'कंकाल' में समाज के वर्तमान नर - कंकाल का चित्र उतारने में सफल हुए हैं । इस उपन्यास में प्रसाद जी ने भाव प्रधान एवं कल्पनाप्रवण शैली का प्रयोग करके नई सम्भावनाओं को जन्म दिया । इस उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक समस्याओं को हल करने की चेष्टा की गयी है । जयशंकर प्रसाद जी के उपन्यासों में सुधार का मूल मन्त्र निहित है । 'कंकाल', 'तितली', 'इरावती' (अपूर्ण) में 'कंकाल' उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास हैं । उपन्यासकार प्रसाद की भाषा न दुरूह है और न दार्शनिकता से युक्त । वह स्वाभाविक है, फिर भी प्रेमचन्द्र जैसी नहीं है । सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने भी तीन उपन्यास लिखे अप्सरा, अलका तथा निरुपमा लेकिन उन्हें उपन्यास विधा में उतनी सफलता नहीं मिली जितनी काव्य के क्षेत्र में । विशम्भरनाथ कौशिक उपन्यास लेखन में प्रेमचंद जी के अनुयायी थे ऐसा कहा जाये तो गलत नहीं होगा । उनके वर्णन, कथोपकथन, पात्रों का चरित्र-चित्रण सभी कुछ प्रेमचंद के समान है । परन्तु मन को आन्दोलित करने की जितनी क्षमता कौशिक जी में है उतनी प्रेमचंद में नहीं । 'माँ' और 'भिखारिणी' इनके प्रमुख उपन्यास हैं । बैचेन शर्मा उग्र, ऋषभचरण जैन तथा चतुरसेन शास्त्री आदि उपन्यासकार प्रेमचंद युग के ऐसे उपन्यासकार हैं जिन्होंने केवल यथार्थ के नग्न चित्रण पर ही अपनी दृष्टि डाली । इनकी दृष्टि केवल वैश्यालय और मदिरालयों के चारों ओर चक्कर लगाकर ही लौट जाती है । इस युग में हिन्दी उपन्यास के एक विशेष अभाव की पूर्ति वृन्दावन लाल वर्मा ने की । प्रेमचंद के पहले और बहुत से ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये थे परन्तु उनमें न लेखकों का ऐतिहासिक ज्ञान प्रकट होता था और न ही तत्कालीन समाज का चित्रण देखने को मिलता । इतिहास के आवरण में लिपटी ये केवल प्रेम कथाएँ होती थीं । वृन्दावन लाल वर्मा ने 'गढ़ कुण्डार' और 'विराट की पद्मनी' उपन्यास लिखकर इस दिशा को एक नया मोड़ दिया । भगवती चरण वर्मा का 'चित्रलेखा' इस युग का महत्त्वपूर्ण उपन्यास है । इसमें पाप क्या वस्तु है इसका व्यक्तिगत ढंग से बहुत सुन्दर विवेचन किया गया है । 'चित्रलेखा' के पात्र प्रेम की एक नवीन परिभाषा गढ़ते हैं । इस युग में प्रेमचंद की भारतीय में कुछ अन्य सामाजिक उपन्यासकार हुये बाबू प्रताप नारायण श्रीवास्तव

(बिंदा, विकास, विजय और विसर्जन के लेखक) श्री जैनेन्द्रकुमार (तपोभूमि, सुनीता, परक, कल्याणी रसखस) प्रति प्रमुख है इन उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक स्थिति का पता मिला। वृंदावनलाल वर्मा अपनी ऐतिहासिकता के साथ उपन्यास क्षेत्र में सम्भावनाओं को लेकर प्रकट हुए। हरी वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में नई उद्भावनाओं के साथ प्राचीन बंटर का मेल करके नये ढंग से इतिहास और साहित्य का समन्वय प्रस्तुत किया है। इनके बहुत से उपन्यास है जिसमें 'शानी को रानी', 'गद कुन्दार', 'मृगनयनी, गढ़कुंडार', 'विराटा की पद्मिनी', 'रानी लक्ष्मीबाई' प्रमुख है। इन सभी उपन्यासों में लेखक का दृष्टिकोण पूर्णतया समाज मुखापेक्षा रहता है। प्रेमचंद युगीन उपन्यासकारों में शिवपूजन सहाय का एक मात्र उपन्यास देहाती दुनिया (१९२६ ई.) प्रसिद्ध है। चंडीप्रसाद 'हृदयेश' के उपन्यासों में भावपूर्ण आदर्शवादी शैली में मनुष्य की सद्वृत्तियों की महिमा अंकित की गई है। प्रेमचंद की तरह ही राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह (१८९० ई.- १९७१ ई.) और सियारामशरण गुप्त ने भी गांधीवादी दर्शन से प्रभावित होकर उपन्यासों की रचना की है। प्रेमचंद पहले ऐसे उपन्यासकार हैं, जिन्होंने भारतीय जन - जीवन की समस्याओं को गहराई से समझा। उनके उपन्यास आम आदमी के दुख - दर्द की दास्तान हैं।

७.४.३ प्रेमचंदोत्तर युग

हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास यात्रा के चतुर्थ चरण को विद्वानों ने प्रेमचंदोत्तर युग का नाम दिया है। इसका समय काल सन १९३६ से १९६० माना गया है। वहीं कुछ विद्वान स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास को अलग करने के बजाय उसे भी प्रेमचंदोत्तर उपन्यास साहित्य के अंतर्गत ही मानकर चलते हैं। हालांकि हम यहां दोनों युगों को अलग-अलग रखकर बात करेंगे। सन् १९३६ के उपरान्त प्रेमचंद के उत्तर युग में उपन्यास क्षेत्र में व्यक्ति के मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति बढ़ी। एक पात्र को विभिन्न परिस्थितियों में डालकर उसके हृदयगत भावों, प्रेरणाओं, रहस्यों का उद्घाटन और विश्लेषण करना ही उपन्यासकारों का उद्देश्य हो गया। सामाजिक समस्यायें अब भी उपन्यास में होती थी, परन्तु लक्ष्य व्यक्ति ही होता है, समाज नहीं, समाज को गौण स्थान दिया जाने लगा। इस नवीन धारा के प्रवर्तक श्री जैनेन्द्र ने 'परख', 'तपोभूमि', 'सुनीता', 'कल्याणी', 'त्याग-पत्र' आदि उपन्यास लिखे हैं। इलाचन्द्र जोशी ने कथा-क्षेत्र में फ्राइड और एडरर के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग किया है। 'संन्यासी' इनका सर्वोत्तम उपन्यास है। 'शेखर' एक जीवनी अज्ञेय जी का उपन्यास के क्षेत्र में एक नवीन प्रयोग है। कथावस्तु की दृष्टि से न उसमें कोई कथा है और न घटनाओं की तारतम्यता। इसलिये इसमें कोई मनोरंजन की सामग्री भी नहीं है, केवल व्यक्ति विशेष द्वारा अतीत की घटनाओं का विश्लेषण मात्र है।

यशपाल के उपन्यासों में मार्क्सवादी सिद्धान्तों का प्रचार है। 'दादा कामरेड', 'देश विद्रोही', 'पार्टी कामरेड', 'मनुष्य के रूप' उनके प्रमुख उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में लेखक ने कांग्रेस कार्यक्रम की अपेक्षा कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम को अधिक उपयोगी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। वैसे यशपाल व्यक्तिगत रूप से भी मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित थे, उनकी गिनती प्रमुख क्रांतिकारियों के रूप में भी की जाती है। रामेश्वर शुक्ल अंचल ने 'चढ़ती धूप', 'उल्का', 'नई इमारत' और 'मरु प्रदीप' आदि उपन्यास लिखे हैं। सामाजिक जीवन में परिवर्तन और क्रान्ति के लिए उनके उपन्यासों में विशेष प्रेरणा है। यात्रा साहित्य के कुलश्रेष्ठ तथा अन्यान्य भाषाओं के जानकार राहुल सांकृत्यायन ने 'जय-यौधेय' और 'सिंह सेनापति' उपन्यासों में भारत के बहुत पुराने गणतन्त्रों की पृष्ठभूमि बनाकर तथा कल्पित पात्रों का आश्रय लेकर

ऐतिहासिक उपन्यासधारा को एक विशेष दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया है। वृन्दावन लाल वर्मा ने तो इस युग में कई ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। उनके द्वारा लिखे गये उपन्यास 'झाँसी की रानी' तथा 'मृगनयनी' सर्वाधिक ख्याति प्राप्त हैं। यशपाल की 'दिव्या' भी ऐतिहासिक उपन्यास है। ऐतिहासिक वातावरण की दृष्टि में लेखक पर्याप्त सफल हुआ है। चतुरसेन शास्त्री की 'वैशाली की नगर वधू' सर्वोत्तम ऐतिहासिक कृति है। गोविन्दबल्लभ पन्त के 'अमिताभ' नामक उपन्यास में गौतम बुद्ध की जीवन गाथा वर्णित है। यह उपन्यास और जीवन-चरित्र के बीच की रचना है।

प्रेमचन्दोत्तर युग में दो पीढ़ियाँ उपन्यास लेखन में सक्रिय रही हैं। एक पीढ़ी उन उपन्यासकारों की है, जिनका मानस संस्कार प्रेमचंद युग में बना लेकिन उन्होंने बाद में अपनी नई राह बना ली। दूसरी पीढ़ी उन उपन्यासकारों की है जो स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस क्षेत्र में आई। उन उपन्यासकारों ने उपन्यास लेखन में नई सम्भावनाओं की ओर संकेत किया। वर्गीकरण की बात की जाए तो सामान्यत: इन उपन्यासों को सामाजिक, मानवतावादी, स्वच्छन्दतावादी, प्राकृतवादी, व्यक्तिवादी, मनोविश्लेषणवादी, सामाजिक यथार्थवादी, ऐतिहासिक और आंचलिक वर्गों में रखा जा सकता है। वैसे इस वर्गीकरण के बावजूद कई ऐसे उपन्यास हैं, जिनमें कई वर्गों की प्रवृत्तियाँ घुल - मिल गई हैं। इस वर्गीकरण के अलावा कई उपन्यासों में आधुनिकता और जनवाद को केन्द्र में रखा गया है। इस युग में अमृतलाल नागर ने अपने उपन्यासों में विविध विषयों को सफलतापूर्वक कथानक का रूप दिया। बूँद और समुद्र में नागर की औपन्यासिक शक्ति पूरी तरह उभर कर सामने आई है। बूँद और समुद्र के माध्यम से उन्होंने व्यक्ति और समाज की बात की है। उन्होंने 'शतरंज' और 'खिलाड़ी' जैसा ऐतिहासिक उपन्यास लिखा तो 'सुहाग के नुपूर', 'नाच्यौ बहुत गोपाल' और 'अग्निगर्भा' जैसे सामाजिक समस्याओं पर केन्द्रित उपन्यास भी लिखे। इस युग में दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का भी भरपूर लेखन हुआ। दार्शनिक तथ्यों के विवेचन से पूर्ण और जीवन संबंधी गहन विचारों का बड़ा ही सुलझा हुआ रूप प्रस्तुत करने वालों में अज्ञेय जी प्रमुख हैं। इन्होंने हिन्दी उपन्यासों को एक नया मोड दिया। इनका शेखर : एक जीवनी' (दो खण्ड) हिन्दी उपन्यास संसार में टाइप बन गया है। इसमें मनावैज्ञानिक विश्लेषण में दार्शनिकता का पुट देकर अज्ञेय जी ने एक नूतनता ला दी है। इस उपन्यास का चित्रपट अत्यन्त विशाल है और स्पष्ट भी। शेखर की अतीत को स्मृतियों के आधार पर किसी स्वतंत्र निर्णय पर पहुँचना कठिन है क्योंकि उसके अतीत की जो सामग्री मिलती है वह शेखर के रंग में रंगी हुई है। इस उपन्यास की टेकनीक अतीत को स्मृतियों के विश्लेषण द्वारा वर्तमान की व्याख्या प्रस्तुत करना है। इस प्रकार सह - स्मृतियों के आधार पर आत्म - विश्लेषण द्वारा चरित्र का क्रमिक विकास दिखाना इस उपन्यास का प्रधान लक्ष्य है। यही आधुनिक उपन्यास की मूल समस्या है। इसके बाद 'नदी के द्वीप' में अज्ञेय जो प्राकृतवादी अधिक हो गए हैं। इसमें सेक्स की भावना अधिक उभर आयी है। इस उपन्यास में और लॉरिस के 'लेडीचैटलीज लवर' में आश्चर्यजनक समानता मिलती है। अज्ञेय जी का 'अपने - अपने अजनबी' उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' के समान मृत्यु का साक्षात्कार है। आजकल मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास - लेखकों ने सेक्स को प्रधानता देना शुरू कर दिया है। द्वारिकाप्रसाद मिश्र का 'धेरे के बारह' यौन वर्जनाओं को अभिव्यक्ति में ही मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद को इति मानता है। डॉ. देवराज के चारों उपन्यास पथ की खोज, बाहर - भीतर, 'रूई और पत्थर' तथा अजय की डायरी। इनमें मध्यवर्ग के शिक्षित बुद्धिजीवी समाज के जीवन की करुण यथार्थता एवं विडम्बना का मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है।

भगवतीचरण वर्मा का कृतित्व बड़ा उत्कृष्ट है। उनका सुप्रसिद्ध उपन्यास 'चित्रलेखा' अत्यन्त लोकप्रिय हुआ । इसके आधार पर एक फिल्म भी बनी, इसके रेडियो रूपान्तर भी हुए । सुप्रसिद्ध आलोचक पद्मभूषण आचार्य डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी के चार ऐतिहासिक उपन्यास बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। पहला बाणभट्ट की आत्मकथा, दूसरा चारुचन्द्रलेख और तीसरा पुनर्नवा तथा चौथा अनामदास का पोथा। चारों ही उपन्यासों में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का चित्रण बहुत सुन्दर है। ये उपन्यास बाणभट्ट की शैली का अनुकरण करते हुए से प्रतीत होते हैं। अत: इन्हें गद्य - महाकाव्य कह सकते हैं। बाणभट्ट की आत्मकथा उपन्यास के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कुछ इसको आत्मकथा मानते हैं, दूसरे उपन्यास, और इनसे भी आगे कुछ इसे हर्षकालीन संस्कृति, साहित्य और कला का इतिहास । इतना तो निश्चित है कि इसमें उपन्यास, आत्मकथा और संस्कृति के इतिहास - तीनों के ही तत्व मिल जाते हैं।

रोमानी प्रवृत्ति को प्रधानता देने वाले अश्क जी भी उल्लेखनीय हैं । इसी कोटि के अन्य लेखकों में उग्र जी, रामचन्द्र तिवारी, विष्णु प्रभाकर, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला (निरूपमा तथा प्रभावती) प्रमृति हैं। भगवतीचरण वर्मा ने अपने उपन्यासों में स्वयं को तटस्थ रखकर समस्याओं का विवेचन किया है। 'चित्रलेखा' में पाप - पुण्य की समस्या है तो 'टेढ़े - मेढ़े रास्ते' और 'भूले बिसरे चित्र' में लेखक ने आधुनिक काल के प्रश्नों का बौद्धिक विश्लेषण किया है। 'रेखा' और 'सीधी सच्चो बातें' शीर्षक दो नवीन उपन्यासों में वर्मा जी ने प्रगतिशील दृष्टि अपनाई है। इसके अतिरिक्त तीन वर्ष, आखिरी दाँव, थके पाँव, पतन, वह फिर नहीं आई, अपने खिलौने, सामर्थ्य और सोमा, सबहि नचावत राम गुसाई आपके अन्य रोचक उपन्यास हैं । उपेन्द्रनाथ अश्क इस क्षेत्र में अधिक प्रगतिशील है । 'गिरती दीवारें' में अश्क जी ने मध्यवर्गीय काम और अर्थ को समस्याएं प्रस्तुत को हैं। 'गर्म राख' में अश्क जी प्रकृतिवादिता को लेकर चले हैं। 'शहर में घूमता आईना' (१९३६) में अश्क जी ने अपने 'गिरती दीवारें 'के नायक चेतन को जालंधर शहर में घुमाया है और इस प्रकार जालंधर के जीवन का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। अमृतलाल नागर इस क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ है। वे पूंजीवादी सभ्यता के दोषों और समाजवादी व्यवस्था के गुणों से परिचित होते हुए भी किसी एक विचारधारा में बंधे नहीं है। 'अमृत और विष' उनका प्रसिद्ध सामाजिक नाटक है।

आधुनिक उपन्यासकारों का एक वर्ग विदेशी साम्यवादी धारा को लेकर चला। इस दिशा में सर्वप्रथम सफल प्रयत्न करने वालों में यशपाल प्रमुख हैं। इस धारा के अन्य लेखकों में डॉ. रागेय राय, उपेन्द्रनाथ अश्क, नागार्जुन, अमृतलाल नागर आदि उपन्यासकार है । इन सभी कलाकारों ने सामाजिक विषमता, दरिद्रता एवं वर्ग - संघर्ष के भाव मनोविश्लेषणवाद को धारा से समन्वित करके प्रस्तुत किये हैं। इस धारा के अन्य लेखकों में डॉ. रांगेय राधव, नागार्जुन, भगवतीप्रसाद वाजपेयो. गरवप्रसाद मिश्र इत्यादि मुख्य हैं। इन सभी कलाकारों में सामाजिक विषमता, दरिद्रता एवं वर्ग - संपर्क के भाव मनोविश्लेषणवाद की धारा से समन्वित होकर व्यक्त हुए हैं। इन्होंने समाज के नवीन स्टार - भेदों का सविस्तार वर्णन किया है और उसके बीच सामाजिक जीवन के छोटे से छोटे सम्बन्धी परिस्थितियों के अनुरूप निराकरण प्रस्तुत किया है । डॉ. रांगेय राघव ने अपने घरी नायक उपन्यास के अन्तर्जातीय प्रणय को वास्तविक परिणय के रूप में सामाजिक मान्यता दिला दी है। इस सामाजिक उपन्यासों में मानवता की पुकार का स्वर नवीन परिस्थितियों के अनुरुप बनाने की चेष्टा की गई है। इसमें आर्त व्यक्ति के करुण - क्रन्दन को सुना गया है और उसे आश्वासन देने चेष्टा के उपयोग का चित्रण किया

है साथ ही प्रेम पाप पुण्य विवाह इत्यादि सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रतीक नवीन दृष्टिकोण से अपनाने की चेष्टा की है।

प्रेमचंदोत्तर युगीन उपन्यासों का विषयगत विभाजन : प्रेमचंदोत्तर युग में उपन्यास के क्षेत्र में अनेक नवीन प्रवृतियां दिखाई देती हैं। कला की दृष्टि से यह युग निश्चित ही प्रेमचंद युग से श्रेष्ठ है लेकिन भावों की दृष्टि से प्रेमचंद-साहित्य से उच्च नहीं है। इस काल के उपन्यासों को उनकी विषय वस्तु के आधार पर निम्नलिखित प्रकार से विभाजित किया जा सकता है:

सामाजिक उपन्यास : सामाजिक उपन्यास प्रेमचंद युग में भी बड़ी संख्या में लिखे गए थे। प्रेमचंदोत्तर युग में सामाजिक उपन्यासों की परंपरा और सुदृढ़ हुई। इस युग के सामाजिक उपन्यासकार थे-भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर, यशपाल, मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती आदि।

'टेढ़े-मेढ़े रास्ते व 'भूले बिसरे चित्र' भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास हैं। 'अमृत और विष' व 'नाच्यो बहुत गोपाल' अमृतलाल नागर के उपन्यास हैं। 'झूठा सच यशपाल का प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास है। 'अंधेरे बंद कमरे' व 'अंतराल' मोहन राकेश के उपन्यास है।

'सारा आकाश' उपन्यास की रचना राजेंद्र यादव ने की। कमलेश्वर का प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास 'काली आंधी' है। मन्नू भंडारी ने 'महाभोज', 'आपका बंटी' आदि उपन्यासों की रचना की। कृष्णा सोबती का प्रमुख उपन्यास 'जिंदगीनामा' है।

साम्यवादी उपन्यास : यशपाल के उपन्यास साम्यवादी विचारधारा के उपन्यास हैं। उनके द्वारा रचित उपन्यास 'दादा कामरेड', 'पार्टी कामरेड' साम्यवादी विचारधारा के पोषक उपन्यास हैं। राजेंद्र यादव का उपन्यास 'सारा आकाश' भी साम्यवादी उपन्यास की श्रेणी में आता है। नागार्जुन, डॉ. रांगेय राघव व अमृतराय भी साम्यवादी उपन्यासकार हैं। इन उपन्यासों में समाज के खोखलेपन को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। ये उपन्यास कार्ल मार्क्स की विचारधारा से प्रेरित होकर लिखे गए।

ऐतिहासिक उपन्यास: प्रेमचंदोत्तर युग में ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गए लेकिन इनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वृंदावनलाल वर्मा, निराला व हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम उल्लेखनीय है। वृंदावन लाल वर्मा के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास हैं- गढ़कुंडार, विराटा की पद्मिनी व रानी लक्ष्मीबाई। हजारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' भी प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। यशपाल साम्यवादी उपन्यासकार हैं परन्तु 'दिव्या' व 'अमिता' उनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास : जैनेन्द्र कुमार ने मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की रचना की। उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं– सुनीता, कल्याणी,परख, सुखदा, विवर्त आदि। जैनेन्द्र के बाद अज्ञेय ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। अज्ञेय ने 'शेखर:एक जीवनी', 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी' उपन्यास लिखे। इलाचंद्र जोशी ने मनोविश्लेषण पर बल दिया। उन्होंने 'सन्यासी', 'निर्वासित' और 'जहाज का पंछी'जैसे उपन्यासों की रचना की।

आंचलिक उपन्यास : आंचलिक उपन्यास में किसी क्षेत्र विशेष की संस्कृति का चित्रण किया जाता

है। इस दृष्टि से फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास 'मैला आंचल' विशेष उल्लेखनीय है। मैला आंचल को हिंदी-उपन्यास साहित्य का सर्वश्रेष्ठ आंचलिक उपन्यास कहा जा सकता है। शिवपूजन सहाय का 'देहाती दुनिया' भी प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास है। 'बाबा बटेसरनाथ' नागार्जुन का प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास है। डॉ. रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूं', शैलेश मटियानी का 'होल्दार' तथा राही मासूम रजा का 'आधा गांव' भी आंचलिक उपन्यास हैं। रामदरश मिश्र का प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास 'पानी के प्राचीर' है।

प्रयोगशील उपन्यास : उपन्यास के क्षेत्र में कुछ अनूठे प्रयोग भी किए गए हैं ; जैसे डॉ. धर्मवीर भारती ने अपने उपन्यास 'सूरज का सातवा घोडा' में अलग-अलग व्यक्तियों की अलग-अलग कहानियों को एक सूत्र में पिरोने का प्रयास किया है।

गिरधर गोपाल ने 'चांदनी के खंडहर' में केवल २४ घंटों की कथा को अपने उपन्यास का विषय बनाया है। 'ग्यारह सपनों का देश' एक ऐसा उपन्यास है जो अनेक लेखकों द्वारा लिखा गया। ठीक ऐसे ही 'एक इंच मुस्कान' उपन्यास राजेंद्र यादव व मन्नू भंडारी के द्वारा मिलकर लिखा गया। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के उपन्यास 'सोया हुआ जल' में एक सराय में ठहरे हुए यात्रियों की एक रात की जिंदगी का वर्णन है। आधुनिक युग बोध के उपन्यास: आज का उपन्यास आधुनिक युगबोध का उपन्यास है। यह उपन्यास औद्योगीकरण, शहरीकरण, आधुनिकता, बौद्धिकता व पश्चिमी विचारधारा से प्रभावित है। मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, नरेश मेहता, भीष्म साहनी आदि उपन्यासकारों के उपन्यास में यह युगबोध सरलता से देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए राजकमल चौधरी का उपन्यास 'मरी हुई मछली' समलैंगिक यौन सुख में लिप्त महिलाओं की कहानी है। श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' उपन्यास आधुनिक जीवन पर सुंदर व्यंग्य है।

७.४.४ स्वातंत्र्योत्तर युग

स्वतंत्रता के पश्चात साहित्य जगत में भी व्यापक परिवर्तन देखने को मिलता है। स्वतंत्रता के पश्चात ऐसी अनेक घटनायें हुई, जिसने देश के विकास में बाधा पहुंचाई। इतना ही नहीं देश के विभाजन एवं दंगों ने पूरे देश को झकझोर कर रख दिया। इनका प्रभाव साहित्य जगत पर भी पड़ा। हिंदू-मुस्लिम दंगे, शरणार्थी समस्या जैसी स्थितियों का उपन्यास साहित्य पर व्यापक प्रभाव पड़ा। ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक जैसे अनेक स्तरों पर रचनायें सामने आईं ।

भारतीय स्वतंत्रता के इतिवृत्त को मन्मथनाथ गुप्त ने अपने कथानक में स्थान दिया। 'बहता पानी' (१९५५) और 'रंगमंच' (१९६५) इनके प्रमुख उपन्यास हैं। अनन्त गोपाल शेवडे ने सन १९४२ को आधार बनाकर उपन्यास 'ज्वालामुखी' (१९६५) की रचना की। सम्राट अशोक के कलिंगा विजय पर आधारित यशपाल का 'अमिता' (१९५६), देश विभाजन की पीड़ा को व्यक्त करता 'झूठा सच' (१९५८), सांप्रदायिक विडंबनाओं को प्रस्तुत करता राही मासूम रजा का 'आधा गाँव' (१९६६) कुछ प्रमुख उपन्यास हैं। सामाजिक दृष्टि से लिखे गये उपन्यासों में नागार्जुन का 'बलचनामा' (१९५९), भैरव प्रसद गुप्त का 'गंगा मैया' (१९५३), मोहन राकेश का 'अंधेरे बंद कमरे' (१९६१), उषा प्रियंवदा का रूकोगी नहीं राधिका' (१९६७), उदयशंकर भट्ट का नये मोड़' (१९५४), तथा सागर लहरे और मनुष्य' (१९५५), रामदरश मिश्र का पानी का प्राचीर' (१९६१) और जल टूटता हुआ' (१९६९) विशेष रूप से

उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यासों में जीवन संघर्षों के साथ-साथ मानवता की प्रतिष्ठा हुई है। वहीं नागार्जुन के उपन्यास बाबा बटेसर नाथ' (१९५४), तथा रामदरश मिश्र के उपन्यास जल टूटता हुआ' (१९६९), में हमें भारत के ग्रामीण जीवन एवं वहां की समस्याओं का दिग्गदर्शन होता है।

साठोत्तरी उपन्यासों में हमें उपनरीय नारकीय जीवन एवं मानव के यथार्थ की जीवंत प्रस्तुति देखने को मिलती है। वहीं सातवें दशक के उपन्यासों में स्तरहीन राजनीति का प्रस्तुतिकरण है। साथ ही छूआछूत, जांत-पात, कट्टर धार्मिकता एवं मजदूरों के शोषण आदि ने कथानक के रूप में जगह बनायी है। सन् १९९० के आस - पास भारतीय समाज में नवीन हलचलें प्रारम्भ हुईं। सन् १९९२ में मन्दिर - मस्जिद का विवाद उठा और बाबरी मस्जिद तोड़ी गई। समाज में एक तरफ साम्प्रदायिक शक्तियाँ सक्रिय थीं, तो दूसरी तरफ लोग जातियों में भी लामबंद होने लगे थे। मण्डल - कमण्डल और मन्दिर - मस्जिद विवाद ने ऐसी सामाजिक हलचल को जन्म दिया जहाँ से उपन्यासकारों को उपन्यास लेखन की नई खुराक मिली। दूधनाथ सिंह (आखिरी कलाम), संजीव (त्रिशूल), अब्दुल बिस्मिल्लाह (मुखड़ा क्या देखे), असग़र वजाहत (सात आसमान, कैसी आगि लगाई), मैत्रेयी पुष्पा (अल्मा कबूतरी), चित्रा मुद्गल (आंवा), मृदुला गर्ग (इदन्नम), गीतांजलि श्री (माई), नासिरा शर्मा (जिन्दा मुहावरे), गोविन्द मिश्र आदि इस काल खण्ड के प्रमुख हस्ताक्षर हैं।

समकालीन समय में काशीनाथ सिंह, मंजूर एहतेशाम, असगर वजाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह, विनोदकुमार शुक्ल, मनोहरश्याम जोशी, संजीव, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, अलका सरावगी, जया जादवानी, मधु कांकरिया आदि उपन्यास लेखन में सक्रिय हैं। समकालीन हिन्दी उपन्यास साहित्य आदिवासी विमर्श को भी अपने केन्द्र में रखता है। इन उपन्यासों में आदिवासियों का जंगल - जमीन से जुड़ाव, उन्हें जंगल - जमीन से दूर करने के सरकारी पैतरों और उनकी अस्मिता से जुड़े प्रश्न उठाए गए हैं। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में कथ्य एवं शिल्प दोनों ही धरातल पर सफल प्रयोग किए गए। कथानक कल्पनालोक से निकल कर यथार्थ के धरातल पर खड़े नजर आते हैं। ये उपन्यास पाठकों को सिर्फ बांधकर ही नहीं रखते बल्कि उसे झकझोड़ते भी हैं। उसे कल्पना लोक की यात्रा कराने के बजाय यथार्थ का सामना कराने में ज्यादा यकीन रखते हैं।

७.५ सारांश

हिन्दी उपन्यास का प्रारंभिक हेतु मनोरंजन या समय के साथ रोचकता और सामाजिक समस्या के उल्लेख से उपन्यास में समाज सुधार की भावना पनपने लगी और जैसे-जैसे यह विधा विकसित हुई वैसे-वैसे कलात्मकता बढ़ती गई और भाषा शैली, संवाद, विषय कथा की दृष्टि से उपन्यास को ध्यान में रखकर इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी उपन्यास विधा से अवगत हुए।

७.६ बोध प्रश्न

१. हिन्दी उपन्यास के क्रमिक विकास का उल्लेख कीजिए।

२. प्रेमचंद युग के प्रमुख उपन्यासकार और उनके उपन्यासों का वर्णन कीजिए।

३. हिन्दी उपन्यास के विकास के सभी चरणों का विवरणात्मक उल्लेख कीजिए।

४. प्रेमचंदोत्तर काल के उपन्यास की विशेषताएँ समझाते हुए प्रमुख उपन्यासकारों का वर्णन कीजिए।

७.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१. हिन्दी का प्रथम उपन्यास कौनसा है व उसके लेखक कौन है?
उत्तर - 'परिक्षा गुरू' - लेखक - लाला श्रीनिवास दास

२. हिन्दी उपन्यास के विकास चरण का विभाजन कितने भागों में किया है?
उत्तर - चार भागों में

३. प्रेमचंद युग का समय कब से कब तक माना जाता है?
उत्तर - सन १९१६ से सन १९३६ तक

४. तिलस्मी और ऐय्यारी उपन्यास किस काल में लिखे गए?
उत्तर - प्रेमचंद पूर्व युग

५. 'जिन्दे की लाश' उपन्यास के लेखक है?
उत्तर - किशोरी लाल गोस्वामी

७.८ संदर्भ ग्रंथ

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास - नगेन्द्र

३. आधुनिक हिन्दी साहित्य - वाद, प्रवृत्तियाँ एवं विमर्श

❄❄❄❄❄❄❄

८

हिन्दी कहानी का क्रमिक विकास

इकाई की रूपरेखा

८.० इकाई का उद्देश्य

८.१ प्रस्तावना

८.२ कहानी शब्द की व्याख्या

८.३ हिन्दी की प्रथम कहानी

८.४ हिन्दी कहानी की विकास यात्रा

- ८.४.१ प्रेमचंद पूर्व युग
- ८.४.२ प्रेमचंद युग
- ८.४.३ प्रेमचंदोत्तर युग
- ८.४.४ स्वातंत्र्योत्तर युग

८.५ सारांश

८.६ बोध प्रश्न

८.७ लघुत्तरीय प्रश्न

८.८ संदर्भ ग्रंथ

८.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी कहानी का आरम्भ और विकास क्रम को समझ सकेंगे साथ ही कहानी के प्रकार, प्रमुख कहानी कार उनकी कहानियों का अध्ययन कर सकेंगे। युग विभाजन की दृष्टि से कहानी विधाा से अवगत होंगे।

८.१ प्रस्तावना

कहानी एक ऐसी विधा है जिसे समय के दायरे में बांधा नहीं जा सकता। कहानी का अस्तित्व मानव के सभ्य होने की परंपरा से रहा है; यदि ऐसा कहा जाये तो गलत नहीं होगा। क्योंकि मानव समाज में आदि काल से कहानी कहने, सुनने, सुनाने की प्रवृत्ति चली आ रही है। भारतीय वांगमय में वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश तथा पुरानी हिन्दी में किसी न किसी स्वरूप में कहानी विद्यमान है, इसके अतिरिक्त पुराणों, उपनिषदों, ब्राह्मणों, रामायण, महाभारत, पालि जातक, तथा पंचतंत्र आदि में कहानियों का भंडार भरा पड़ा है। इन सभी कहानियों में उपदेशात्मक अथवा धार्मिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। प्राचीनकाल में सदियों तक वीरों तथा राजाओं के शौर्य, प्रेम, न्याय, ज्ञान, वैराग्य, साहस,

समुद्री यात्रा, दुर्गम पर्वतीय प्रदेशों में प्राणियों का अस्तित्व आदि की प्रचलित कथाएँ, जिनकी कहानियाँ घटनाओं पर आधारित हुआ करती थीं, ये भी कहानी के ही रूप हैं। 'गुणढ्य' की 'वृहत्कथा' को, जिसमें 'उदयन', 'वासवदत्ता', समुद्री व्यापारियों, राजकुमार तथा राजकुमारियों के पराक्रम की घटना प्रधान कथाओं का बाहुल्य है, प्राचीनतम रचना कहा जा सकता है । वृहत्कथा का प्रभाव 'दण्डी' के 'दशकुमार चरित', 'बाणभट्ट' की 'कादम्बरी', 'सुबन्धु' की 'वासवदत्ता', 'धनपाल' की 'तिलकमंजरी', 'सोमदेव' के 'यशस्तिलक' तथा 'मालतीमाधव', 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्', 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय', 'रत्नावली', 'मृच्छकटिकम्" जैसे अन्य काव्यग्रंथों पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इसके पश्चात् छोटे आकार वाली 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश', 'बेताल पच्चीसी', 'सिंहासन बत्तीसी', 'शुक सप्तति', 'कथा सरित्सागर', 'भोजप्रबन्ध' जैसी साहित्यिक एवं कलात्मक कहानियों का युग आया। इन कहानियों से श्रोताओं को मनोरंजन के साथ ही साथ नीति का उपदेश भी प्राप्त होता है। प्रायः कहानियों में असत्य पर सत्य की, अन्याय पर न्याय की और अधर्म पर धर्म की विजय दिखाई गई हैं । जहाँ तक हिन्दी में कहानी लेखन के विकास की बात है...हमारे देश में कहानियों की बड़ी लंबी और सम्पन्न परंपरा रही है। ये गद्य लेखन की ही एक विधा है जिसका विकास उन्नीसवीं सदी में बड़ी तेज़ी से हुआ। वेदों, उपनिषदों तथा ब्राह्मणों में वर्णित 'यम-यमी', 'पुरुरवा-उर्वशी', 'सौपर्णी-काद्रव', 'सनत्कुमार- नारद', 'गंगावतरण', 'श्रृंग', 'नहुष', 'ययाति', 'शकुन्तला' जैसे आख्यान कहानी के ही प्राचीन रूप हैं। हिन्दी कहानी को सर्वश्रेष्ठ रूप देने वाले 'प्रेमचंद' ने कहानी की परिभाषा इस प्रकार से की हैः 'कहानी वह ध्रुपद की तान है, जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी संपूर्ण प्रतिभा दिखा देता है, एक क्षण में चित्त को इतने माधुर्य से परिपूर्ण कर देता है, जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता।" हिन्दी के लेखकों में प्रेमचंद पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने अपने तीन लेखों में कहानी के सम्बंध में अपने विचार व्यक्त किए हैं– "कहानी एक रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास, सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानव-जीवन का संपूर्ण तथा बृहत रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता। वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल-बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।"

८.२ कहानी शब्द की व्याख्या

'कहानी' आज बहुश्रुत विधा है। इसे अलग-अलग जगहों एवं अलग-अलग भाषाओं में विभिन्न नामों से जाना जाता है। हालांकि इसका प्रभाव सभी जगहों पर समान रूप से देखने को मिलता है। 'कहानी' का प्राचीन नाम संस्कृत में 'गल्प' या 'आख्यायिका' मिलता है। 'कहानी' शब्द संस्कृत कथानिका प्राकृत कहाणिआ, सिंहली-मराठी कहानी से विकसित हुआ है जिसका अर्थ मौखिक या लिखित कल्पित या वास्तविक, तथा गद्य या पद्य में लिखी हुई कोई भाव प्रधान या विषय प्रधान घटना, जिसका मुख्य उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना, उन्हें कोई शिक्षा देना अथवा किसी वस्तु स्थिति से परिचित कराना होता है। इसका अंग्रेजी पर्याय 'स्टोरी' है। पाश्चात्य साहित्य में कहानी-कला का उद्भव सर्वप्रथम अमेरिका में एडलर एलन पो (१८०९-४९ ई.) द्वारा हुआ । उन्होंने कहानी की परिभाषा देते हुए कहा है कि "छोटी कहानी एक ऐसा आख्यान है, जो इतना छोटा है कि एक बैठक में पढ़ा जा सके और जो पाठक पर एक ही

प्रभाव उत्पन्न करने के उद्देश्य से लिखा गया हो।" मुंशी प्रेमचन्द कहानी पर विचार करते हुए कहते हैं कि "कहानी (गल्प) एक रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या मनोविज्ञान को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली तथा कथा-विन्यास सब उसी एक भाव को पुष्ट करते है।" वहीं कहानी का शाब्दिक अर्थ 'कहना' है। इस अर्थ के अनुसार जो कुछ भी कहा जाये कहानी है। किंतु विशिष्ट अर्थ में किसी विशेष घटना के रोचक ढंग से वर्णन को 'कहानी' कहते हैं। 'कथा' एवं 'कहानी' पर्यायवाची होते हुए भी समानार्थी नहीं हैं। दोनों के अर्थों में सूक्ष्म अंतर आ गया है। कथानक व्यापक अर्थ की प्रतीति कराता है इसमें कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी आदि का समावेश हो जाता है। कथा साहित्य के अंतर्गत मुख्य रूप से कहानी एवं उपन्यास को ही माना जाता है जबकि कहानी के अंतर्गत कहानी और लघु कथाएं ही आती हैं। यूरोप में विकसित कहानी का स्वरूप अंग्रेजी और बंगला के माध्यम से बीसवीं शताब्दी के आरंभ में भारत आया। प्राचीन कहानी एवं आधुनिक कहानी के स्वरूप में पर्याप्त अंतर है। आधुनिक कहानी जनसाधारण मनुष्य जीवन से संबंधित लौकिक यथार्थवादी, विचारात्मक धरती के सुख तक सीमित है।

८.३ हिन्दी की प्रथम कहानी

हिन्दी उपन्यास साहित्य की तरह हिन्दी कहानी साहित्य में भी प्रथम रचना को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। अलग-अलग विद्वान अपने अध्ययन एवं तर्कों के आधार पर अलग-अलग कहानियों को हिन्दी की प्रथम कहानी का दर्जा देते हैं। कुछ विद्वान सन् १८०३ ई. में लिखी गई, हिन्दी गद्य में कहानी शीर्षक से प्रकाशित होने वाली इंशा अल्ला खां द्वारा रचित 'रानी केतकी की कहानी (१८०३ ई.) को हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं। डॉ. राम रतन भटनागर ने 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी प्रथम कहानी स्वीकारा है। किंतु इसकी संयोग बहुलता, अतिमानवीयता के कारण इसे प्रथम कहानी के रूप में नहीं स्वीकारा जा सकता है क्योंकि ये विशेषताएं आधुनिक कहानी में क्षम्य नहीं है। इसके विषय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन समीचीन प्रतीत होता है कि यह नई परंपरा की प्रारंभिक कहानी नहीं है, बल्कि मुस्लिम प्रभावापन्न परंपरा की अंतिम कहानी है।

डॉ. बच्चन सिंह ने किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'प्रणायिनी परिणय' (सन् १८८७ ई.) को हिन्दी की प्रथम कहानी माना है जबकि स्वयं इसके लेखक ने इसे उपन्यास कहा है। कारण यह बताया गया है कि सन् १९०० ई. तक कथा साहित्य को उपन्यास कहने की परिपाटी थी। इसलिए यह भी प्रथम कहानी नहीं है। क्योंकि इसका विभाजन सात निकषों में किया गया है। प्रत्येक निष्क को अलग खंड मान लेने पर कहानी कई खंडों में विभक्त प्रतीत होती है। इस तरह खंडों में विभाजित कर कहानी लिखने की परिपाटी चलती रही है। प्रत्येक निकष या खंड के प्रारंभ में श्लोक बद्ध नीति कथन हैं जो कहानी के रूप विन्यास में बाधक सिद्ध होते हैं। इस कहानी के रूप बंध पर आख्यान पद्धति का पूर्ण प्रभाव हैं। संस्कृतनिष्ठ शब्दावली में केन्द्रीय भाव प्रगाढ़ प्रेम की सुखद परिणति दिखलाई गई है। अमेरीकी पादरी रेवरेंड जे. न्यूटन द्वारा रचित 'एक जमींदार का दृष्टान्त' (१८७१ ई.), तथा अनाम 'छली अरबी की कथा' नामक दो कहानियां अलीगढ़ से प्रकाशित 'शिलापंख' मासिक के 'कल की कहानी' स्तंभ में प्रकाशित देखकर यह अनुमान लगाया किंचित ये ईसाई धर्म प्रचार हेतु लिखी गई है। 'शिलापंख' के संपादक राजेंद्र गढ़वालिया ने सन् १८७१ ई. में प्रकाशित इस कहानी को अब तक प्राप्त कहानियों में प्राचीनतम माना है। प्राचीनतम होकर भी यह प्रथम कहानी नहीं है क्यों क यह

कहानी धर्म प्रचार हेतु लिखी गई है। 'राजा भोज का सपना' (राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद), एक अद्भूत अपूर्व स्वप्न (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)', 'ग्यारह वर्ष का समय (१९०३ ई.)' (आचार्य रामचंद्र शुक्ल), 'इंदुमती (१९०० ई.)' (किशोरी लाल गोस्वामी) आदि कहानियों पर भी हिन्दी की प्रथम कहानी को लेकर चर्चा हुई। अधिकांश विद्वान जहाँ किशोरी लाल गोस्वामी की कहानी 'इंदुमती' को हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं वहीं आधुनिक शोध के अनुसार माधव प्रसाद मिश्र के द्वारा रचित 'एक टोकरी भर मिट्टी (१९०१ ई.)' को हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी माना जाता है।

डॉ. सुरेख सिन्हा ने गोस्वामी कृत 'इन्दुमती' को प्रथम कहानी मानने पर बल देते हुए लिखा है, "प्रथम कहानी का निर्धारण समय क्रम से होना चाहिए न कि कथानक, शिल्प, विचार धारा, या अन्य किसी दृष्टिकोण से।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक ढंग की कहानियों का आरंभ 'सरस्वती पत्रिका' के प्रकाशन काल से स्वीकारा है। किशोरी लाल गोस्वामी कृत इंदुमती (१९०० ई.), किशोरी लाल गोस्वामी कृत गुलबहार (१९०२ ई.), मास्टर भगवान दास कृत प्लेग की चुडैल (१९०२ ई.), राम चन्द्र शुक्ल कृत ग्यारह वर्ष का समय (१९०३ ई.), पंडित और पंडितानी - गिरजादत्त बाजपेयी (१९०३ ई.), दुलाई वाली - बंग महिला (१९०७ ई.) 'सरस्वती' में प्रकाशित प्रमुख कहानियां हैं। इस प्रकार प्रथम कहानीकार किशोरी लाल गोस्वामी तथा प्रथम कहानी 'इंदुमती' प्रमाणित होती है। 'इंदुमती' की चर्चा प्राय: प्रत्येक समीक्षक ने की है। इस पर टेम्पेस्ट की छाया मानकर इस की मौलिकता पर भी प्रश्न चिह्न लगा दिया।

रामचन्द्र शुक्ल 'इंदुमती' को ही प्रथम कहानी मानते हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, 'यदि 'इंदुमती' किसी बंगला कहानी की छाया नहीं है तो हिन्दी की यही पहली मौलिक कहानी ठहरती है इसके उपरांत 'ग्यारह वर्ष का समय' और 'दुलाईवाली' का नंबर आता है।" सुरेश सिन्हा को शुक्ल के कथन में चालाकी की गंध आती है। उन्हें लगता है कि इंदुमती को अनूदित करार देकर अपनी कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' को प्रतिष्ठित करना चाहते थे। किंतु यह प्रमाणित हो चुका है कि 'इंदुमती' मौलिक रचना नहीं है। डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल शिल्प की दृष्टि से रामचन्द्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय' (सन् १९०३) हिन्दी की प्रथम कहानी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी इसे आधुनिकता के लक्षण से युक्त माना है।

देवी प्रसाद वर्मा, ओंकार शरद और देवेश ठाकुर आदि समीक्षकों ने 'छत्तीसगढ़ मित्र' में प्रकाशित माधव राव सप्रे कृत 'एक टोकरी भर मिट्टी' (सन् १९०१) को हिन्दी की प्रथम कहानी का श्रेय दिया है। 'दुलाईवाली' (सन् १९०७ ई.) को यथार्थवादी चित्रण की सर्वप्रथम रचना माना है। किंतु वंग महिला का नाम नहीं ज्ञात है। प्रो. वासुदेव 'इंदु' में प्रकाशित 'ग्राम' (१९११ ई.) को हिन्दी की पहली कहानी का गौरव प्रदान करते हैं। प्रसाद की यह पहली कहानी है। शिवदान सिंह चौहान के विचार में हिन्दी कहानी का श्रीगणेश प्रसाद और प्रेमचंद से माना जाना चाहिए। राजेन्द्र यादव चन्द्रधर शर्मा गुलेरी कृत 'उसने कहा था' (१९१६) को हिन्दी की पहली मौलिक कहानी मानते हुए इसी से आधुनिक हिन्दी कहानी का श्रीगणेश मानना चाहिए अब तक 'दुलाई वाली' को ही प्रथम कहानी माना जाता है। 'दुलाईवाली' या 'ग्यारह वर्ष का समय' को हिन्दी की प्रथम कहानी का श्रेय मिलना श्रेयस्कर है।

८.४ हिन्दी कहानी की विकास यात्रा

हिन्दी कहानी के विकास की यात्रा 'सरस्वती'तथा 'इंदु' पत्रिकाओं के प्रकाशन से आरंभ हुई। हिन्दी की आरंभिक कहानियां इन्ही पत्रिकाओं में छपी। सन १९०७ में बंग महिला (राजेंद्र बाला घोष) की कहानी 'दुलाईवाली' (१९०७ ई.) प्रकाशित हुई। सन १९१०-११ में जयशंकर प्रसाद की कहानी 'ग्राम' (१९११ई.) प्रकाशित हुई। प्रेमचंद-युग में चंद्रधर शर्मा गुलेरी का नाम भी प्रमुख है। उनके द्वारा लिखित कहानी 'उसने कहा था' (१९१५ ई.) अत्यंत लोकप्रिय हुई। यह कहानी उदात्त प्रेम की कहानी है। कला की दृष्टि से यह कहानी उत्कृष्ट मानी जाती है। प्रेमचंद-पूर्व युग में प्रेमचंद, विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, पांडेय बेचैन शर्मा उग्र, आचार्य चतुरसेन शास्त्री आदि कहानीकार आते हैं। प्रेमचंद की कहानी 'पंच परमेश्वर' तथा विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक की कहानी 'रक्षाबंधन' (१९१३ ई.) प्रेमचंद-पूर्व युग की कहानियां कही जा सकती है। इस युग में चरित्र-प्रधान, घटना-प्रधान व ऐतिहासिक कहानियां लिखी गई। कहानी का वास्तविक स्वरूप प्रेमचंद युग में निखर कर सामने आया। प्रेमचंद के आगमन से हिन्दी का कथा-साहित्य की दिशा कुछ हद तक 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' की ओर मुड़ गई और 'प्रसाद' के आगमन से 'रोमांटिक यथार्थवाद' की ओर। सन १९२२ में 'उग्र' का हिन्दी-कथा-साहित्य में प्रवेश हुआ। उग्र न तो 'प्रसाद' की तरह रोमैंटिक थे और न ही प्रेमचंद की भाँति आदर्शोन्मुख यथार्थवादी। वे केवल 'यथार्थवादी' थे– प्रकृति से ही उन्होंने समाज के नंगे यथार्थ को सशक्त भाषा-शैली में उजागर किया। १९२७ से १९२८ आ आसपास जैनेन्द्र ने कहानी लिखना आरंभ किया। उनके आगमन के साथ ही हिन्दी-कहानी का नए युग आरम्भ हुआ। १९३६ तक 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हो चुकी थी। इस समय के लेखकों की रचनाओं में प्रगतिशीलता के तत्त्व का जो समावेश हुआ उसे युगधर्म समझना चाहिए। 'यशपाल' राष्ट्रीय संग्राम के एक सक्रिय क्रांतिकारी कार्यकर्ता थे, अतः वह प्रभाव उनकी कहानियों में भी आया। 'अज्ञेय' प्रयोगवादी कलाकार थे, उनके आगमन के साथ कहानी नई दिशा की ओर मुड़ी। जिस आधुनिकता बोध की आज बहुत चर्चा की जाती है उसका श्रेय अज्ञेय को ही जाता है। 'अश्क' प्रेमचंद परंपरा के कहानीकार हैं। अश्क के अतिरिक्त वृंदावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, अमृतलाल नागर आदि उपन्यासकारों ने भी कहानियों के क्षेत्र में काम किया है। किन्तु इनका वास्तविक क्षेत्र उपन्यास है कहानी नहीं। इसके बाद सन १९५० के आसपास से हिन्दी कहानियाँ नए दौर से गुजरने लगीं। जिसमें आधुनिक विचारधारा की छाप नज़र आती है। आज़ के परिदृश्य की बात की जाए तो अब कहानियों में आधुनिकता का समावेश हो गया है जिसमें विज्ञान कथा, सामाजिक संदेश, धर्म, राजनीति, भविष्य, रोमांच, रहस्य, शौर्य, बलिदान, त्याग आदि चीज़े शामिल हो गई हैं।

हिन्दी कहानी की विकास यात्रा को निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है :

८.४.१ प्रेमचंद पूर्व युग

८.४.२ प्रेमचंद युग

८.४.३ प्रेमचंदोत्तर युग

८.४.४ स्वातंत्र्योत्तर युग

८.४.१ प्रेमचंद पूर्व युग

१९वीं शताब्दी के आरंभ से ही हिन्दी साहित्य जगत कहानी लेखन का प्रादुर्भाव पूर्ण रूप से देखने का मिलता है। इस युग का कालखंड कुछ विद्वानों ने प्रथम कहानी अथवा सन १८७० -१९१५ ई. तक स्वीकारा है। हालांकि कहानी का वास्तविक रूप सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के बाद ही सामने आता है, लेकिन इससे पूर्व भी कुछ कहानियों का उल्लेख मिलता है। इन रचनाओं में इंशाअल्ला खाँ द्वारा सन १८०३ में लिखी 'रानी केतकी की कहानी' प्रमुख है। हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानों और 'रानी केतकी की कहानी' में मात्र इतना अंतर है कि सूफी काव्य पद्य में लिखा गया है और इसकी रचना गद्य में हुई है। सूफी मसनवियों की शैली में इसमें भी आरंभ में ईश्वर वंदना की गई है और रचना का कारण बताया गया है। इसी प्रकार इसके प्रत्येक परिच्छेद का लंबा शीर्षक दिया गया है। सूफी प्रेम कहानियों के समान 'रानी केतकी की कहानी' अस्वाभाविक, अलौकिक, ईरानी कथारुढ़ियों और अतिशयोक्तिपूर्ण वृत्तातों से भरपूर एक प्रेमकथा है। इसमें नायिका के नखशिख, सौंदर्य और वैवाहिक तैयारियों का अतिशयोक्तिपूर्ण और वस्तु परिगणनात्मक वर्णन मिलता है। भूत-प्रेत, मंत्र-तंत्र, जादू-टोना, देवी-देवता जैसे अलौकिक वर्णनों से यह कथा भरी पड़ी है। इसलिए मौलिक गद्य कथा होने के बावजूद 'रानी केतकी की कहानी' को आधुनिक कहानी नहीं कहा जा सकता। 'रानी केतकी की कहानी' मध्यकाल में प्रचलित प्रेमाख्यानकों का आधुनिक गद्य रूप है। इसके अतिरिक्त इस शताब्दी के प्रथम सात दशकों में संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी में उपलब्ध कथाओं के हिंदी रूपांतरण प्रस्तुत किए गए। पं. गौरीदत्त ने 'देवरानी जेठानी की कहानी' (१८७०) लिखी जो अपनी प्रकृति में उपन्यास और कहानी दोनों का मूल रूप है। आधुनिक कहानी यथार्थ के आधार पर खड़ी होती है और 'देवरानी जेठानी की कहानी' यथार्थ की जमीन से दृढ़तापूर्वक जुड़ी हुई है। पर 'देवरानी जेठानी की कहानी' से - यद्यपि इसके शीर्षक में कहानी शब्द जुड़ा हुआ है - हम हिंदी कहानी का आरंभ नहीं मान सकते। विधा के रूप में कहानी का जन्म उसके बीस वर्ष बाद १९०१ ई. में प्रकाशित माधवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' से हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में फोर्ट विलियम कॉलेज के तत्वावधान में 'बैताल पचीसी', 'प्रेमसागर', 'राजनीति' और 'चंद्रावती' या 'नासिकेतोपाख्यान' का अनुवाद किया गया। इसके अलावा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम तीन दशकों में 'माधोनल', 'माधव विलास', 'नीति-कथा', 'गोरा बादल की बात', 'सुखसागर', 'उपदेश कथा' नामक कथा पुस्तकें अनूदित की गई। 'गोरा बादल की बात' को छोड़कर सभी पुस्तकों की रचना पाठ्यपुस्तकों के रूप में की गई थी। इस समय 'किस्सा हातिमताई', 'किस्सा चहादरवेश', 'सूरजपुर की कहानी', 'कथासागर', 'वीरसिंह का वृत्तांत', 'वामामनरंजन', 'लड़कों की कहानी', 'रॉबिन्सन क्रूसो का इतिहास', 'यात्रा स्वप्नोदय', 'गुलबकावली' आदि रचनाएँ प्रकाशित हुईं। ये सभी रचनाएँ अनूदित हैं। १८८६ ई. में राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' ने 'राजा भोज का सपना' लिखा। इन कहानियों में कहीं भी यथार्थ का आग्रह नहीं है। इनमें 'आधुनिक कहानी' का कोई गुण नहीं है। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी में प्राचीन और मध्यकालीन कथाओं की परंपरा चलती रही। मौलिक लेखन का अभाव रहा और ज्यादातर अनूदित रचनाएँ ही सामने आयीं।

बाद में माधवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' का पता चला जो १९०४ ई. में लिखी गई थी। यह कहानी आधुनिक ढंग की कहानी है। कुछ विद्वान 'इंदुमती' को हिंदी की पहली कहानी मानते हैं। परंतु यह मौलिक कहानी नहीं है। इसकी कथावस्तु शेक्सपियर के नाटक 'टेम्पेस्ट' पर आधारित है। अंतर केवल यह है कि इसमें वातावरण भारतीय है। यह कहानी भी

परंपरागत किस्से की शैली से मुक्त नहीं हो सकी है। इससे भी पहले १८८७ ई. में 'प्रणयिणी परिणय' नाम से किशोरीलाल गोस्वामी की एक कहानी प्रकाशित हो चुकी थी। परंतु इसे किसी भी कोण से आधुनिक कहानी नहीं कहा जा सकता। इसका कथ्य, शिल्प, भाषा सब कुछ पारंपरिक गद्य कथाओं का अनुकरण है।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में ही वृंदावनलाल वर्मा की कहानी 'राखीबंद भाई' (१९०९ ई.) प्रकाशित हुई । उनकी दूसरी कहानी 'तातार और वीर राजपूत' (१९१०) थी । बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में आधुनिक ढंग की कहानियों की धूम मच गई। पत्र-पत्रिकाओं में आधुनिक ढंग की कहानियाँ प्रकाशित होने लगीं। 'इंदु' पत्रिका में जयशंकर प्रसाद की पहली कहानी 'ग्राम' १९११ ई. में प्रकाशित हुई। १९११ ई. में ही 'भारत मित्र' में चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'सुखमय जीवन' छपी। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह प्रेमचंद युग के एक महत्वपूर्ण कहानीकार हैं। हालांकि इनकी पहली कहानी 'कानों में कंगना' १९१३ ई. में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी सामंती पारिवारिक संरचना की विडंबनापूर्ण स्थिति को सामने लाती है। इस कहानी में पत्नी तथा वेश्या के प्रति प्रेम और इससे उत्पन्न टकराहट भरी स्थिति को चित्रित किया गया है। 'सुरबाला' 'मरीचिका', 'बिजली' आदि इनकी अन्य कहानियाँ हैं। कहानियाँ तो इस दशक में खूब लिखी गई पर चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' ने सबको पीछे छोड़ दिया। यह कहानी १९१५ ई. में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। गौरतलब है कि प्रेमचंद की पहली कहानी 'सौत' भी इसी वर्ष 'सरस्वती' में ही प्रकाशित हुई थी। परंतु अपने कथ्य, शिल्प, भाषा और पूरी बनावट में 'उसने कहा था' समय से काफी आगे की कहानी है। 'उसने कहा था' युद्ध विरोधी कहानी है। इसका कलेवर प्रेमकथा का है, जिसमें एक प्रेमी अपनी बचपन की प्रेमिका के पति और बेटे के लिए अपने आपको न्यौछावर कर देता है। परंतु यह कहानी का ऊपरी आवरण है। मूलचेतना युद्ध विरोधी है। कथ्य ही नहीं शिल्प की दृष्टि से भी यह कहानी बेजोड़, अनुपम और अपूर्व है। पूर्वदीप्ति शैली (फ्लैशबैक) का इस्तेमाल पहली बार इसी कहानी में किया गया। पूरी कहानी संकेतों और प्रतीकों के सहारे ही आगे बढ़ती है। कथा में कालक्रम की रूढ़ि को तोड़ने का पहला प्रयास इसी कहानी में किया गया है। वस्तुत: सन १९०० ई. से १९१५ ई. तक हिन्दी कहानी के विकास का पहला दौर था। मन की चंचलता (माधवप्रसाद मिश्र) १९०७ ई. गुलबहार (किशोरीलाल गोस्वामी) १९०२ ई., पंडित और पंडितानी (गिरिजादत्त वाजपेयी) १९०३ ई., ग्यारह वर्ष का समय (रामचंद्र शुक्ल) १९०३ ई., दुलाईवाली (बंगमहिला) १९०७ ई., विद्या बहार (विद्यानाथ शर्मा) १९०९ ई., राखीबंद भाई (वृन्दावनलाल वर्मा) १९०९ ई., ग्राम (जयशंकर 'प्रसाद') १९११ ई., सुखमय जीवन (चंद्रधर शर्मा गुलेरी) १९११ ई., रसिया बालम (जयशंकर प्रसाद) १९१२ ई., परदेसी (विश्वम्भरनाथ जिज्जा) १९१२ ई., कानों में कंगना (राजाराधिकारमणप्रसाद सिंह)१९१३ ई., रक्षाबंधन (विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक') १९१३ ई., उसने कहा था (चंद्रधर शर्मा गुलेरी) १९१५ ई., आदि के प्रकाशन से सिद्ध होता है कि इस प्रारंभिक काल में हिन्दी कहानियों के विकास के सभी चिह्न मिल जाते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिन्दी का कहानी का जन्म एवं शुरुआत दोनों प्रेमचंद से पहले का है। हां यह जरूर है कि प्रेमचंदजी ने हिन्दी कहानी को एक नई ऊंचाई प्रदान की। साथ ही उनके समकालीन कहानीकारों ने भी अपने महत्वपूर्ण योगदानों उनके काम को और आसान कर दिया।

८.४.२ प्रेमचंद युग

हिन्दी कहानी साहित्य में प्रेमचंद युग को स्वर्ण युग माना जाता है। इस युग का कालखंड कुछ विद्वानों ने सन १९१६-१९३५ ई. तक माना है। प्रेमचंद युग से अभिप्राय उस युग से है जिसमें प्रेमचंद ने प्रौढ़ कहानियों की रचना की। इस युग में हिन्दी कहानी के स्वरूप का विकास हुआ। इस युग में हिन्दी कहानी में कलात्मकता का विकास हुआ। इस युग में हिन्दी के संस्कृत, परिष्कृत व कलात्मक रूप का प्रयोग कहानी में हुआ। कहानी के सभी आवश्यक तत्व यथा कथानक, संवाद व कथोपकथन, चरित्र-चित्रण, देशकाल व वातावरण, भाषा, उदेश्य आदि सभी में निखार आया। किसी युग में कहानी में भावनाओं व मानसिक द्वंद्व का समावेश हुआ। इस युग के सबसे बड़े कहानीकार प्रेमचंद जी हैं। उन्होंने ३०० से अधिक कहानियां लिखीं, जो मानसरोवर के आठ भागों में संकलित हैं। इसके अतिरिक्त इनकी कहानियों के संग्रह 'सप्तसरोज', 'नव निधि', 'प्रेम पचीसी', 'प्रेम पूर्णिमा', 'प्रेम द्वादशी', 'प्रेम तीर्थ', तथा 'सप्त सुमन' आदि हैं। प्रेमचंद पहले उर्दू में लिखते थे। उनका उर्दू में लिखा हुआ प्रसिद्ध कहानी संग्रह 'सोजे वतन' सन् १९०७ ई. में प्रकाशित हुआ था जो स्वातंत्र्य भावनाओं से ओत-प्रोत होने के कारण अंग्रेजी सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था। सन् १९१९ ई. में उनकी हिंदी रचित प्रथम कहानी 'पंच परमेश्वर' प्रकाशित हुई। उनकी कहानियों में इसके अतिरिक्त 'आत्माराम', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'रानी सारंघा', 'वज्रपात', 'अलग्योझा', 'ईदगाह', 'पूस की रात', 'सुजान भक्त', 'कफन', 'पंडित मोटे राम' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रेमचंद की कहानियों में जन साधारण के जीवन की सामान्य परिस्थितियों, मनोवृत्तियों एवं समस्याओं का मार्मिक चित्रण हुआ है। वे साधारण से साधारण बात को भी मर्मस्पर्शी रूप में प्रस्तुत करने की कला में निपुण कहानीकार थे। उनकी शैली सरल स्वाभाविक एवं रोचक है। जो पाठक के हृदय पर सीधा प्रहार करती है। उनकी सभी कहानियां सोद्देश्य हैं - उनमें किसी न किसी विचार या समस्या का अंकन हुआ है किन्तु इससे उनकी रागात्मकता में कोई न्यूनता नहीं आई है। प्रेमचंद ने अपनी कहानी-यात्रा आदर्शवाद से आरंभ की परंतु धीरे-धीरे वे यथार्थवाद की ओर उन्मुख हुए। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों की विभिन्न समस्याओं व बुराइयों का वर्णन किया। उन्होंने हिन्दी कहानी को नया आयाम प्रदान किया इसीलिए उन्हें 'कहानी-सम्राट' भी कहा जाता है। प्रेमचंद-युग के दूसरे प्रमुख कहानीकार जयशंकर प्रसाद जी हैं। आकाशदीप, पुरस्कार, गुंडा आदि उनकी प्रतिनिधि कहानियां हैं। उन्होंने मुख्यतः ऐतिहासिक कहानियां लिखी। इनके अलावा विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक की कहानियां 'ताई', 'रक्षाबंधन', 'पगली', 'काकी' हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। सुदर्शन की कहानियां आदर्शवादी हैं। उनकी कहानी 'हार की जीत' हिन्दी साहित्य जगत में बहुत अधिक लोकप्रिय हुई। प्रेमचंद युग के दो अन्य प्रसिद्ध साहित्यकार हैं- पांडेय बेचैन शर्मा 'उग्र' व यशपाल। उग्र की कहानियाँ कटु यथार्थवादी हैं। उन्होंने समाज के विभत्स चित्र अपनी कहानियों में प्रस्तुत किये। उनकी प्रतिनिधि कहानियों में प्रमुख हैं- 'उसकी माँ'व 'सनकी अमीर'। वहीं यशपाल मार्क्सवादी विचारधारा के कवि हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में ऐसे समाज व परम्पराओं की आलोचना की जो गरीबों का शोषण करते हैं। तर्क का तूफ़ान, फूलों का कुर्ता, अभिशाप आदि उनकी प्रमुख कहानियां हैं। उपेंद्रनाथ अश्क़, भगवती चरण वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि भी प्रेमचंद-युग के कहानीकार हैं।

प्रेमचंद युग में हिंदी कहानी दो विशिष्ट धाराओं में विभक्त होकर चलती है-

१. प्रथम धारा व्यक्ति हित या व्यक्ति सत्य के भावात्मक अंकन की है, जिसके सर्वप्रथम प्रमुख कहानीकार जयशंकर प्रसाद हैं और रायकृष्ण दास, विनोद शंकर व्यास तथा चतुरसेन शास्त्री इस परंपरा को अग्रसर करने वाले सहयोगी हैं।

२. द्वितीय धारा के विषय में डॉ. इंद्रनाथ मदान का कथन है 'हिंदी कहानी के विकास की दूसरी दिशा जिसमें समष्टि-सत्य की संवेदना है, समष्टि - विकास की संचेतना है, समष्टि मंगल की भावना है, समष्टि यथार्थ को आत्मसात करने की प्रेरणा है, प्रेम चन्द के कहानी साहित्य से आरंभ होती है।" प्रेमचंद के समसामयिक कहानीकार सुदर्शन और विश्वंभरनाथ शर्मा, प्रेमचंद की कथा दृष्टि का समर्थन करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। प्रेमचंद और उनके सहयोगी कहानीकारों में समकालीन यथार्थ की आदर्शात्मक परिणति मिलती है। अपनी कहानी यात्रा के अंतिम चरण में प्रेमचंद ने स्वयं को आदर्श के मोह से अलग कर दिया था लेकिन सुदर्शन, विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' ज्वाला दत्त शर्मा आदि बराबर आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहानियां लिखते रहे।

प्रेमचंद युग के प्रमुख कहानीकारों एवं उनकी रचनाओं को केन्द्र में रखकर काफी कुछ लिखा जा सकता है, लेकिन यहां हम कुछ चुनिंदा कहानीकारों एवं उनकी रचनाओं का ही उल्लेख कर रहे हैं-

१. **प्रेमचंद एवं उनकी कहानियां:-** प्रेमचंद द्वारा रचित 'पंच परमेश्वर', 'बड़े घर की बेटी', 'नमक का दरोगा' आदि प्रारंभिक कहानियों में उनका आग्रह पुरातन आदर्शों को प्रतिष्ठित करता प्रतीत होता है। इन कहानियों में उपदेश का प्रच्छन्न स्वर सुनाई देता है। वहीं सन् १९२०-३० ई. के मध्य लिखी गई कहानियां गांधी वादी विवाद धारा सतह पर है। जबकि 'मैकू', 'शेख नाद', 'दुर्गा मन्दिर', 'सेवा मार्ग' आदि कहानियों में प्रेम चन्द स्थूल कथात्मकता को छोड़कर यथार्थ को विश्लेषण और संकेत के स्तर पर ग्रहण करते दिखाई देते हैं। डॉ. बचन कुमार सिंह के अनुसार, 'चरित्रों के चित्रण में मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताओं का समावेश भी उनमें आ गया है। नाटकीयता तथा व्यंग्य के पैनेपन के कारण उसमें जीवंतमयता और प्रभान्विति की घनता आ गई है। 'नशा', 'पूस की रात' और 'कफन' आदि कहानियां प्रेम चन्द की कहानी कला के अंतिम चरण की है। यहां तक आते-आते प्रेम चन्द अपनी सारी आस्थाओं का परित्याग कर देते हैं और जीवन के प्रति उनकी दृष्टि अधिक तीखी और निर्मम हो गई है। इन कहानियों में जो सूक्ष्मता और सांकेतिकता विद्यमान है वह 'नई कहानी' की अच्छी कहानियों में भी नहीं है। यह कम महत्वपूर्ण नहीं है कि हिंदी कहानी का विकास प्रेमचंद द्वारा संकेतित दिशा में ही हुआ है। प्रेमचंद की कहानियों में जहां एक ओर युग का सच्चा चित्रण है, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संदर्भों के विश्लेषण की कोशिश है वहीं दूसरी ओर प्रेम, सहानुभूति, तपस्या, सेवा आदि महनीय मूल्यों का जोरदार समर्थन उनमें है। अधिकांश कहानियों में प्रेम चंद ने जन साधारण के जीवन को उसी की भाषा में उपस्थित किया है। वे संभवत: पहले कहानीकार हैं जिनकी कहानियों में ग्रामीण जीवन अपनी समूची शक्ति और सीमा के साथ उभरा है। डॉ. भगवत स्वरूप मिश्र ने लिखा है, "मानव स्वभाव के परिचय, युगबोध, विषय क्षेत्र के विस्तार, कहानी कला के उत्कर्ष

आदि की दृष्टि से प्रेमचंद स्कूल का एक भी कहानीकार प्रेमचंद की गरिमा को नहीं पहुंच सका।"

२. **जयशंकर प्रसाद -** जयशंकर प्रसाद की प्रथम कहानी 'ग्राम' सन् १९११ ई. में 'इंदु' में प्रकाशित हुई और जीवनपर्यंत उन्होंने कुछ ६९ कहानियां लिखीं। 'प्रसाद जी' पहले कहानीकार हैं जिन्होंने हिंदी को बंगला, अंग्रेजी तथा फ्रेंच अनुवादों सें मुक्त कर, उसके स्वरूप को मौलिकता और स्थिरता प्रदान की।" इसी आधार पर कुछ आलोचक प्रसाद को प्रथम कहानीकार तथा उनकी कहानी 'ग्राम' को प्रथम कहानी मानते हैं। प्रसाद की कहानियों की विशिष्टता उनके पात्रों के अंतर्द्वन्द्व उद्घाटन, काव्यात्मक अभिव्यक्ति और कहानी के मार्मिक अंत में निहित है, यद्यपि कविता और नाटक का शिल्प कभी कहानी में प्रमुख हो उठता है और उसकी संरचना में गड़बड़ी पैदा करता है। प्रसाद की कहानियों में वस्तुगत वैविध्य बिल्कुल न हो, ऐसा नहीं है। 'पुरस्कार', 'दासी' तथा 'गुंडा' आदि में इतिहास का प्रयोग किया गया है जबकि 'मछुआ बड़ा' और 'छोटा जादूगर' में सामाजिक विषमता को उभारा गया है। अधिकतर कहानियों में कथा सूत्र की क्षीणता दृष्टिगोचर होती है। लेकिन 'दासी' एवं 'सालवती' आदि कहानियों में अनावश्यक अंश भी कम नहीं है। भावुकता की स्फीति कहानी को प्रतिघातित करती है। इन दोषों के होते हुए भी प्रसाद की कथन भंगिमा और चारित्रिक सृष्टि कहानियों को अविस्मरणीय बना देती है। प्रसाद का शिल्प प्राय: 'ग्राम' कहानी से लेकर 'सालवटी' तक एक समान रहा है और इसका अनुकरण नहीं हो पाया है।

प्रसाद की शैली में लिखी गई हृदयेश और विनोद शंकर व्यास की अनेक कहानियां असफल रही हैं। उनके शिल्प के संबंध में डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल ने लिखा है, "हिन्दी कहानी साहित्य में प्रसाद जी एक ऐसे कहानीकार हैं जिनकी कहानी भावों की अनुवर्तिनी रही है। शिल्प की अनुवर्तिनी नहीं।"

३. **विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' -** विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' (सन् १८९१ - १९४६ ई.) उर्दू से हिंदी में आने वाले प्रेमचंद युगीन कहानीकार हैं। उनकी प्रथम कहानी 'रक्षाबंधन' सन् १९१३ ई. में प्रकाशित हुई थी। विचारधारा की दृष्टि से कौशिक प्रेमचंद की परंपरा में आते हैं। उन्होंने समाज सुधार को कहानी का लक्ष्य बनाया। उनकी कहानियों की शैली अत्यंत सरस, सरल एवं रोचक है।

उनकी हास्य एवं विनोद से भरी हुई कहानियां 'चांद' में 'दुबे जी की चिट्ठीयाँ' के रूप में प्रकाशित हुई थीं। उन्होंने लगभग ३०० कहानियां लिखीं। जो 'कल्पमंदिर', 'चित्रशाला' आदि में संग्रहीत हैं।

४. **आचार्य चतुर सेन शास्त्री -** आचार्य चतुर सेन शास्त्री ने अपनी कहानियों में सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। उनकी कहानियों के संग्रह 'रजकण' और 'अक्षत' आदि प्रकाशित हुए हैं। उनकी प्रमुख कहानियां में 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी', 'दे खुदा की राह पर', 'भिक्षुराज' तथा 'ककड़ी की कीमत' विशेष उल्लेखनीय हैं।

५. **चन्द्रधर शर्मा गुलेरी -** प्रेमचंद युगीन कहानीकारों में मात्र तीन कहानी लिखकर ख्याति प्राप्त करने वाले चंद्रधर शर्मा गुलेरी हैं। हिंदी कहानी साहित्य में इनका बहुत ऊँचा

स्थान है। उनकी प्रथम कहानी 'उसने कहा था' सन् १९१५ में प्रकाशित हुई थी जो अपने ढंग की अनूठी रचना है। इसमें किशोरावस्था के प्रेमांकुर का विकास, त्याग, और बलिदान से ओत-प्रोत पवित्र भावना के रूप में किया गया है। कहानी का अंत गंभीर एवं शोकप्रद होते हुए भी इसमें हास्य एवं व्यंग्य का समन्वय इस ढंग से किया गया है कि उसमें मूल स्थायी भाव को कोई ठेस नहीं पहुंचती है। विभिन्न दृश्यों के चित्रण में सजीवता, घटनाओं के आयोजन में स्वाभाविकता एवं शैली की रोचकता सभी विशेषताएं एक से बढ़कर एक हैं। कहानी की प्रथम पंक्ति ही पाठक के हृदय को पकड़कर बैठ जाती है और जब तक वह पूरी कहानी को पढ़ नहीं लेता है उसे छोड़ती नहीं है तथा जिसने एक बार कहानी पढ़ लिया वह 'उसने कहा था' वाक्य को आजीवन विस्मृत नहीं कर पाता है। भाव, विचार, शिल्प तथा शैली आदि सभी दृष्टियों से यह कहानी एक अमर कहानी है। गुलेरी की दूसरी कहानी 'सुखमय जीवन' भी पर्याप्त रोचक एवं भावोत्तेजक है। इसमें एक अविवाहित युवक के द्वारा विवाहित जीवन पर लिखी गई पुस्तक को लेकर अच्छा विवाद खड़ा किया गया है। जिसकी परिणति एक अत्यंत रोचक प्रसंग में हो जाती है। 'बुद्धू का कांटा' भी अच्छी कहानी है।

६. **पं. बद्रीनाथ भट्ट 'सुदर्शन' -** सुदर्शन का जन्म सन् १८९६ ई. में हुआ था। कहानी कला में इनका महत्व कौशिक के समान स्वीकारा गया है। इनकी प्रथम कहानी 'हार की जीत' 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। तब से अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जैसे 'सुदर्शन सुधा', 'सुदर्शन सुमन', 'तीर्थ यात्र', 'पुष्प लता', 'गल्प मंजरी', 'सुप्रभात', 'नगीना', 'चार कहानियां', तथा 'पनघट' आदि। उन्होंने अपनी कहानियों में भावनाओं एवं मनोवृत्तियों का चित्रण अत्यंत सरल एवं रोचक शैली में किया है।

७. **पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' -** उग्र का हिंदी कहानी जगत में प्रवेश सन् १९२२ ई. में हुआ। उग्र की उग्रता को परिलक्षित आलोचकों ने उन्हें 'उल्कापात', 'धूमकेतु', 'तूफान' तथा 'बवंडर' आदि नामों से विभूषित किया। इसी से आपकी विद्रोही प्रवृत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है जिसको ऐसी ऐसी उपमाएं या उपाधियां मिली हों उसकी कहानी कला कैसी होगी? सहज अनुमान लगाया जा सकता है। उनकी कहानियों 'वीभत्स' एवं 'कुरूपता' को भी स्थान मिल गया है किन्तु उग्र का उद्देश्य जीवन की कुरूपता का प्रचार करना नहीं था अपितु कुरूपता का समूल अंत करना था।

उनके कहानी संग्रह 'दोजख की आग', 'चिंगारियां', 'बलात्कार' तथा 'सनकी अमीर' आदि प्रकाशित है।

८. **ज्वालादत्त शर्मा -** ज्वालादत्त शर्मा ने बहुत कम कहानियां लिखी हैं किन्तु हिन्दी जगत ने उनका अच्छा स्वागत किया है। उनकी कहानियों में 'भाग्य चक्र' तथा 'अनाथ बालिका' आदि उल्लेखनीय हैं। इन कहानीकारों के अतिरिक्त द्वितीय चरण के अन्य कहानीकार रामकृष्ण दास, विनोद शंकर व्यास के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

८.४.३ . प्रेमचंदोत्तर युग

प्रेमचंदोत्तर युग में कहानी लेखन में अनेक परिवर्तन हुए। इस युग में एक तरफ मनोवैज्ञानिक कहानियां लिखी गई तो दूसरी तरफ सामाजिक कहानियां लिखी गई। प्रेमचंदोत्तर युग के प्रमुख

कहानीकारों में यशपाल, अमृतराय, रांगेय राघव, भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर व चंद्रगुप्त विद्यालंकार का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रेमचंदोत्तर युग के अधिकांश कहानीकार मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रभावित थे। विशेषत: यशपाल ने मार्क्सवाद को अपनी कहानियों का आधार बनाया। इन्हें हम यथार्थवादी कहानीकार भी कह सकते हैं। तर्क का तूफ़ान, फूलों का कुर्ता, अभिशाप आदि इनकी प्रमुख कहानियां हैं। प्रेमचंदोत्तर युग में मनोवैज्ञानिक कहानियां भी लिखी गई। मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में जैनेंद्र कुमार, इलाचंद्र जोशी तथा अज्ञेय का नाम प्रमुख है। जैनेंद्र कुमार की प्रमुख कहानियां है- नीलम देश की राजकन्या, एक दिन, पाजेब, वातायन आदि। परंपरा, विपथगा, शरणार्थी आदि अज्ञेय की प्रमुख कहानियां हैं। आंचलिक कहानीकारों में फणीश्वर नाथ रेणु तथा मारकंडेय का नाम उल्लेखनीय है। रेणु की प्रमुख कहानियां हैं- लाल पान की बेगम तथा तीसरी कसम। मारकंडेय ने हंसा जाई अकेला तथा गुलरा के बाबा जैसी आंचलिक कहानियां लिखी। इस युग का कालखंड कुछ विद्वानों ने सन १९३६-१९५५ ई. तक माना है। इस युग की कहानियों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

१. **मनोवैज्ञानिक धारणाओं वाली कहानियां -** जिनका प्रतिनिधित्व जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, भगवती प्रसाद वाजपेयी और पहाड़ी आदि कहानीकार करते हैं।

२. **समाज सापेक्ष कहानियां-** इस वर्ग की कहानियों का समाज सापेक्ष प्रश्नों से संबंध है। इस वर्ग के प्रमुख कहानीकार यशपाल, रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' और अमृत राय हैं।

३. **व्यक्ति सत्य-समष्टि सत्य कहानियां-** इस वर्ग में वे कहानीकार आते हैं जो व्यक्ति सत्य तथा समष्टि सत्य दोनों को सुविधानुसार अपनी कहानियों का आधार बनाते हैं। अश्क और भगवती चरण वर्मा आदि इसी वर्ग में आते हैं।

प्रेमचंदोत्तर युग के प्रमुख रचनाकार एवं उनकी रचनाएं निम्नलिखित हैं-

१. **जैनेन्द्र कुमार -** जैनेन्द्र कुमार ने स्थूल समस्याओं को कहानी का विषय न बनाकर सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विषयों को कहानी का विषय बनाया। उन्होंने हिन्दी कहानी को एक नवीन अंतर्दृष्टि, संवेदनशीलता एवं दार्शनिक गहनता प्रदान की। घटनाओं की अपेक्षा उन्होंने चरित्र-चित्रण तथा शैली को अधिक महत्व दिया है। इनकी कहानियों के संग्रह 'वातायन', 'स्पर्धा', 'पाजेंब', 'फांसी', 'एक रात', 'जयसंधि' तथा 'दो चिड़िया' आदि हैं।

२. **जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' -** जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' ने अपनी कहानियों में करुण रस की अभिव्यक्ति मौलिक ढंग से की है। उनके कहानी संग्रह 'किसलय', 'मृदुल' तथा 'मधुमयी' आदि प्रकाशित हुए हैं।

३. **चंडीप्रसाद 'हृदयेश' -** चंडी प्रसाद हृदयेश का दृष्टिकोण आदर्शवादी था। उनकी कहानियों में सेवा, त्याग, बलिदान तथा आत्म शुद्धि आदि की उच्च भावनाओं का चित्रण किया गया है। उनमें भावुकता की प्रधानता है। उनकी कहानी के संग्रह 'नंदन निकुंज' तथा 'वनमाला' आदि नामों से प्रकाशित हुए हैं।

४. **गोविंद वल्लभ पंत -** गोविंद वल्लभ पंत की कहानियों में यथार्थ की कटुता तथा कल्पना की रंगीनी का दिव्य समन्वय मिलता है। उनमें प्रणय-भावनाओं का चित्रण अति मधुर रूप में किया गया है।

५. **सियाराम शरण गुप्त -** सियाराम शरण गुप्त ने कविता की तरह कहानी क्षेत्र में भी अच्छी सफलता प्राप्त की है। उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी 'झूठ-सच' है जिसमें आधुनिक युगीन यथार्थ वादी लेखकों पर तीखा व्यंग्य किया है। कहानी कला की दृष्टि से भी यह कहानी अद्वितीय है। उनकी कहानियों का संग्रह 'मानुषी' है।

६. **वृंदावन लाल वर्मा -** वृंदावन लाल वर्मा ने कहानी की अपेक्षा उपन्यास के क्षेत्र में अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की है। उनकी कहानियों में भी कल्पना एवं इतिहास का समन्वय मिलता है। इनकी कहानियों का संग्रह 'कलाकार का दंड' है। वर्मा की शैली में सरलता एवं स्वाभाविकता होती है।

७. **सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' -** अज्ञेय की कहानियां अभिजात्य बौद्धिकता द्वारा लिखी गई मनोवैज्ञानिक कहानियां हैं। कथ्यगत विविधता के होते हुए भी इन कहानियों का अनुभव सांसारिक, व्यक्तिगत तथा अत्यधिक सीमित है। मनोविज्ञान के सिद्धांतों का स्मरण और सचेत रूप से केन्द्रित करने का आग्रह भी 'कड़ियां', 'पुलिस की सीटी', 'लेटर बॉक्स', 'हीलोबीन बतखें' आदि कुछ कहानियों में अत्यधिक मुखर हो उठा है। डॉ. रामदरश मिश्र का कथन है, 'अज्ञेय का वरिष्ठ व्यक्तित्व उनकी कहानियों को एक निजता प्रदान करता है। इस निजता की बनावट बड़ी जटिल है। इसीलिए इनकी कहानियों में लेखक की वैचारिकता, अनुभव, अध्ययन, तटस्थता, मानवीय प्रतिबद्धता आदि का बड़ा ही जटिल सहअस्तित्व दिखाई पड़ता है। इस जटिल सहअस्तित्व का परिणाम शुभ-अशुभ दोनों है। एक ओर वे इसके चलते 'रोज' जैसी अच्छी कहानी लिखने में समर्थ एवं सफल सिद्ध हुए हैं, वहीं दूसरी ओर घोर बौद्धिकता से परिपूर्ण रचनाएं भी उन्होंने की हैं। 'रोज' में एक रस और यांत्रिक ढंग से जीवन जीने का संदर्भ अति सहजता किंतु तीखेपन के साथ चित्रित हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि अज्ञेय मनोविज्ञान के किसी सिद्धांत के प्रतिपादन हेतु कहानी लिख रहे हैं।

८. **यशपाल -** यशपाल सामाजिक प्रश्नों एवं समस्याओं को मार्क्सवादी जीवन दृष्टि के माध्यम से देखते हैं क्योंकि वे मार्क्सवादी कामरेड थे । साम्यवाद को प्रधानता देते थे। सन् १९३६ ई. में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। जिसने तत्कालीन रचनाकारों पर अपना प्रभाव डालना प्रारंभ कर दिया तथा प्रगतिशील रचनाएं सामने आने लगीं। यशपाल इन प्रतिबद्ध रचनाकारों में अग्रगण्य थे। यशपाल का अनुभव में संसार अति व्यापक तथा वैविध्यपूर्ण है। एक ओर मध्यम वर्गीय जीवन की विसंगति, असहायता और यातना को व्यक्त करने वाली 'परदा', 'फूलों का कुरता', 'प्रतिष्ठा का बोझ' आदि कहानियां है। दूसरी ओर श्रमशील विश्व के संघर्ष और शोषण तंत्र की विरोधी कहानियां हैं, जिनमें 'राग', 'कर्मफल', 'वर्दी' तथा 'आदमी का बच्चा' महत्वपूर्ण कहानियां हैं। पुरातन मूल्यों, अप्रासंगिक रूढ़ियों और नैतिक निषेधों को तिरस्कृत करने का उनका ढंग वैयक्तिक है। धारदार व्यंग्य उनकी अभिव्यंजना का सर्वाधिक सबल अस्त्र है। यशपाल में जहां कथ्यगत समृद्धि है वहीं शिल्पगत प्रभाव भी है। कुछ

प्रगतिवादी कहानीकारों की तरह उनकी कहानियों में शिल्प का अवमूल्यन नहीं दिखलाई पड़ता है।

९. **रांगेय राघव -** राघव की कहानियां मार्क्सवादी बोध से सम्पन्न होकर भी कहीं-कहीं उससे बाहर जाती हुई दृष्टिगोचर होती है। अनुभव की वास्तविकता उनकी प्रथम विशेषता है। रांगेय राघव की सर्वश्रेष्ठ कहानी 'गदल' है।

१०. **बेचन शर्मा उग्र -** बेचन शर्मा 'उग्र' को प्रेमचंद युगीन कहानीकारों में गिना जाता है। वे घोषित मार्क्सवादी न थे लेकिन सामाजिक विसंगतियों को उधेड़ने में वे प्रगतिशीलता का परिचय देते हैं। 'कला का पुरस्कार', 'ऐसी होली खेलो लाल', 'उसकी मां' आदि उनकी श्रेष्ठ कहानियां हैं।

११. **उपेन्द्र नाथ 'अश्क' -** अश्क को न तो प्रगतिवादी कहानीकार कहा जा सकता है न व्यक्तिवादी। डॉ. रामदरश मिश्र ने अश्क के मार्क्सवादी दृष्टिकोण को लेकर कहानी लिखने वालों को प्रगतिशील कोटि में रखा है। वस्तुत: अपनी संवेदना के दृष्टिकोण से वे प्रगतिशील कथा चेतना से स्पष्ट अलगाव रखते हैं। उनके भाषा शिल्प पर प्रेमचन्द का गहन प्रभाव दिखलाई पड़ता है। एक ओर अश्क ने 'डाची' और 'कांड़ा का तेली' जैसी अति चुस्त प्रभावशाली कहानियां लिखी हैं वहीं दूसरी ओर 'एंबेसडर' तथा 'बेबसी' जैसी यौन समस्याओं वाली कहानियों में उनको सफलता नहीं मिली है।

उनकी कहानियों पर टिप्पणी करते हुए हृषिकेश ने लिखा है – "वह इतनी सपाट और आत्मीय हैं कि पढ़कर चिंता नहीं होती, न खेद होता है, न आश्चर्य न जिज्ञासा और न ही व्यामोह, केवल तरल अनुभूति देने वाली अश्क की कहानियां अन्वेषण तो करती हैं अन्वेषक नहीं बनाती और पाठक के समक्ष आत्म निर्णय का संचार नहीं करती।" अश्क की बहुत सी कहानियों पर यह टिप्पणी सटीक बैठती है।

१२. **भगवती चरण वर्मा -** भगवती बाबू अपनी व्यंग्यात्मक कहानियों के लिए चर्चा का विषय बने रहे। उनको प्रतिष्ठित करने में 'प्रायश्चित', 'दो बांके', और 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' आदि कहानियों का विशेष योगदान रहा है। किन्तु 'मोर्चा बंदी' संग्रह की कहानियां उनको चुकाने में सहयोगी सिद्ध हुई है।

इन कहानीकारों के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में भगवती प्रसाद वाजपेयी तथा पहाड़ी का नाम भी उल्लेखनीय है। प्रगतिवादी कहानीकारों में भैरव प्रसाद गुप्त तथा अमृत राय का भी कहानी साहित्य को प्रमुख योगदान है।

८.४.४ स्वातंत्र्योत्तर युग

हिन्दी कहानी के चतुर्थ चरण में जैनेंद्र द्वारा प्रवर्तित मनो-विश्लेषण की परंपरा का विकास हुआ। भगवती प्रसाद वाजपेयी तथा राम प्रसाद आदि का योगदान मिला। चतुर्थ चरण को स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी कहानी युग भी कहा जाता है। इस समय काल में तीन पीढ़ियों की लिखी कहानियां आती हैं-

१. यशपाल, जैनेंद्र, भगवती चरण वर्मा जैसे पुरानी पीढ़ी के कहानीकार सक्रिय रहे।

२. आजादी मिलने के समय वयस्क हो रही पीढ़ी के कहानीकारों राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मन्नू भंडारी, रेणु, मोहन राकेश आदि ने खूब कहानियां लिखीं।

३. सन् १९६० ई. के अत में युवा पीढ़ी ने लिखना प्रारंभ किया जिसने स्वतंत्र भारत में आंखे खोली थीं। इस पीढ़ी के कहानीकारों में ज्ञानरंजन, रवींद्र कालिया, कामता नाथ, इब्राहिम शरीफ, हिमांशु जोशी तथा महीपाल सिंह आदि प्रमुख हैं। स्वतंत्रता के बाद की हिन्दी कहानी का इतिहास आंदोलन का इतिहास है। चार-पांच साल की अवधि बीतते-बीतते एक आंदोलन उठ खड़ा होता रहा जिसे लेकर खूब ढोल पिटे तथा नारे लगे। इसके परिणामस्वरूप कहानी एक गंभीर एवं केन्द्रीय विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। सन् १९५० ई. के बाद कहानी में एक नवीन मोड़ आया जिससे नई कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी सहज और समानांतर कहानी के अलग अलग झंडे लहराने लगे। इस ढाई-तीन दशक की अवधि में ढेरों अच्छी बुरी कहानियां लिखी गईं। नई कहानी के नई होने की घोषणा कम, स्वतंत्रता पूर्व की कहानी के पुरानी हो जाने की घोषणा अधिक थी। सन् १९५० ई. तक आते आते ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैनेन्द्र की चौंकाने वाली दार्शनिक कथा, मुद्रा, अज्ञेय की सतही प्रगतिशील कहानियां तथा कथा एवं शिल्प के द्वंद्व में फंसी हुई यशपाल की कहानियों की प्रासंगिकता समाप्त प्राय: है। ऐसा प्रतीत होता था कि या तो वे कहानीकार बुझ चुके हैं अथवा कहानी लेखन का आत्म विश्वास उन्हें अनाथ बनाकर चला गया है। ऐसी स्थिति में एकाएक कहानी के नएपन के आग्रह का उभर कर आंदोलन का रूप ग्रहण कर लेना आकस्मिक घटना नहीं अपितु पुराने के प्रति नए का विद्रोह तथा नवीन कहानी लेखक की तड़प तथा छपास है।

इस युग के प्रमुख रचनाकार एवं उनकी रचनायें इस प्रकार से हैं-

१. **भगवती प्रसाद वाजपेयी :** वाजपेयी ने अपनी कहानियों में मनोवैज्ञानिक सत्यों को उद्घाटित किया। उनके अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हुए जिनमें 'हिलोर', 'पुष्करिणी' तथा 'खाली बोतल' आदि प्रमुख हैं। उनकी कहानियों में 'मिठाई वाला', 'झांकी', 'त्याग', तथा 'वंशीवादन' आदि श्रेष्ठ कहानियां मानी जाती हैं। भगवती चरण वर्मा ने कहानी के क्षेत्र में असाधारण सफलता प्राप्त की है। उनमें विश्लेषण की गरिमा तथा गंभीरता है। मार्मिकता एवं रोचकता का गुण भी विद्यमान है। उनके कहानी-संग्रह 'खिलते-फूल', 'इंस्टालमेंट' तथा 'दो बांके' आदि उल्लेखनीय हैं।

२. **सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय:** चतुर्थ चरण के मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में भी अज्ञेय का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने मनोविश्लेषण परंपरा को और आगे बढ़ाया है। 'विपयाग', 'परंपरा', 'कोठरी की बात' तथा 'जयदोल' इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं।

३. **इला चन्द्र जोशी:** इनके कहानी संग्रह 'रोमांटिक छाया', 'आहूति' तथा 'दीवाली और होली' आदि हैं। जोगी ने मनोविज्ञान के सत्यों का उद्घाटन किया जिससे अन्य लेखकों की अपेक्षा इनका अधिक मर्मस्पर्शी रूप सामने आया।

४. **उपेंद्र नाथ 'अश्क':** सामाजिक विषयों को अपनाने वाले लेखकों में उपेंद्रनाथ 'अश्क' का नाम चतुर्थ चरण में भी प्रमुख है। उनकी कहानियों में 'पिंजरा', 'पाषाण', 'मोती',

'दूलो', 'मरुस्थल', 'गोखरू', 'खिलौने', 'चट्टान', 'जादूगरनी' तथा 'चित्रकार की मौत' आदि प्रमुख हैं। इनको अत्यधिक लोकप्रियता मिली। अश्क की विषय वस्तु, शैली एवं रोचकता की दृष्टि से प्रेम चंद की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले कहानीकार हैं।

५. **यशपाल:** यशपाल ने अपनी कहानियों में आधुनिक समाज की विषमताओं पर करारा व्यंग्य किया हैं उनकी कहानियों में पराया सुख, 'हलाल का टुकड़ा', 'ज्ञान दान', 'कुछ न समझ सका', 'जबरदस्ती' तथा 'बदनाम' आदि उल्लेखनीय हैं।

६. **चन्द्रगुप्त विद्यालंकार:** विद्यालंकार का कहानी क्षेत्र में विशेष नाम है। आपकी कहानियों के द्वारा कहानी-कला का विकास हुआ है। विद्यालंकार के कहानी संग्रह 'चन्द्रकला' तथा 'अमावस' है।

७. **राम प्रसाद पहाड़ी:** पहाड़ी का हिन्दी कहानी में विशेष योगदान है। पहाड़ी के कहानी संग्रह 'सड़क पर', 'मौली' तथा 'बरगद की जड़े', आदि उल्लेखनीय हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात की कहानियों में कथ्य तथा शिल्प की दृष्टि से अनेक नवीन प्रयोग हुए लंबी यात्रा के पश्चात हिन्दी कहानी 'नई कहानी' के नाम से प्रसिद्ध हो गई। स्वातंत्र्योत्तर युग की कहानियों को निम्नलिखित उप शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है :

नई कहानी: भारत की स्वतंत्रता के पश्चात नई चेतना का विकास हुआ स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान आम आदमी ने जिन आशाओं और सपनों को संजोया था वे अब टूटने लगे थे। राजनीतिक स्तर पर जहाँ भ्रष्टाचार बढ़ने लगा था वहीं सामाजिक स्तर पर जातिवाद और अधिक भयानक रूप धारण करने लगा था। ऐसे वातावरण में लेखकों ने इन समस्याओं पर जो कहानियां लिखी वह 'नई कहानी' के नाम से विख्यात हुई। मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, अमरकांत, शेखर जोशी, भीष्म साहनी आदि कहानीकारों की कहानियां 'नई कहानी' के अंतर्गत आती हैं। कमलेश्वर का कथन है कि जितेंद्र एवं ओम प्रकाश श्रीवास्तव ने कहानी को नवीन रूप देने का प्रयास किया। कहानी के नवीन रूपों को 'नई कहानी' नाम देने का श्रेय दुष्यंत कुमार को है। डॉ. बच्चन सिंह ने सन् १९५० ई. में शिवप्रसाद सिंह द्वारा प्रकाशित 'दादी मां' में नयी कहानी के तत्वों का अवलोकन किया। उनके विचार से सन् १९५६-५७ में नई कविता के साम्य पर इसका नाम 'नई कहानी' रख दिया गया। सूर्य प्रकाश दीक्षित नई कहानी के शुभारंभ का श्रेय कमलेश्वर मोहन राकेश तथा राजेन्द्र यादव को संवेत रूप में देते हैं। वास्तव में किसी व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों को किसी आंदोलन का श्रेय देना उचित प्रतीत नहीं होता है। सार्थक आंदोलन परिवेश की मांग तथा पूरी पीढ़ी के प्रयास की उपज होता है। हिन्दी कहानी साहित्य में नएपन का प्रारंभ 'पूस की रात', 'नशा' तथा 'कथन' जैसी कहानियों से हो चुका था। सन् १९५० ई. तक आते आते कहानी के कथा शिल्प में पर्याप्त परिवर्तन हो चुका था। नएपन की यह प्रवृत्ति सन् १९५६-५७ ई. में आंदोलन का रूप ग्रहण कर चुकी थी। डॉ. नामवर सिंह उन आलोचकों में से हैं जिन्होंने नई कहानी के प्रवक्ता की भूमिका निभाई है। कहानी के नववर्षांक सन् १९५६-५८ में प्रकाशित उन लेखों से इस आंदोलन को अति बल मिला। नई कहानी उस समय लिखी गई जब कहानीकारों में देश की स्वतंत्रता को लेकर संशय की भावना का उदय हो रहा था। मोह भंग की पृष्ठ भूमि का निर्माण हो रहा था। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के विभाजन के फलस्वरूप बड़े पैमाने पर मूल्य संक्रमण तथा मूल्य-विघटन का परिवेश तैयार हो गया था। राजनीतिक पृष्ठभूमि में भी सेवा, त्याग, करुणा, सत्य, प्रेम आदि

गांधीवादी मूल्य कड़ी आजमाइश में पड़ गए थे। डॉ. भगवान दास वर्मा का कथन है, 'परंपरावादी जीवन-दर्शन की असारता, भारतीय संस्कृति की नए युग के संदर्भ में निरर्थकता, स्वतंत्रता प्राप्ति और भ्रम भंग की अवस्था, जीवनादर्शों की अनिश्चितता, व्यक्ति जीवन, अकेलेपन एवं अजनबीपन एहसास आदि अनुभूत सत्यों के अनेक स्तरीय संदर्भों के परिपाश्र्व पर नई कहानी विकसित हो रही है।

सहज कहानी : सहज कहानी की बात अमृतराय ने उठायी। 'सहज' शब्द की व्याख्या करते हुए अमृतराय ने कहा– 'सहज वह है जिसमें आडंबर नहीं है, ओढ़ा हुआ मैनरिज्म या मुद्रा-दोष नहीं है।"

उनके अनुसार 'सहज कहानी' वह है जो सहज कथा-रस से युक्त हो। सहज कहानी के संबंध में उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि सहज कहानी न तो कोई नारा है और न ही कोई आंदोलन। वास्तव में 'सहज कहानी' अकेले कंठ की पुकार बनकर रह गई। उनकी इस वैचारिकता को अन्य कहानीकारों का समर्थन नहीं मिला।

सचेतन कहानी : सचेतन कहानी डॉ. महीप सिंह की देन मानी जाती है। 'सचेतन कहानी' व्यक्तिवाद का विरोध करती है और मनुष्य को उसके समग्र परिवेश के संदर्भ में स्वीकार करती है।

'अकहानी' में सेक्स का जबरदस्त आतंक था लेकिन 'सचेतन कहानी' इस आतंक से मुक्त है। 'सचेतन कहानी' में विविधता और गहराई दोनों मिलती हैं।

समांतर कहानी : समांतर कहानी की अवधारणा कमलेश्वर ने प्रस्तुत की। अक्टूबर, १९७४ के 'सारिका'पत्रिका के अंक से 'समांतर कहानी' का दौर शुरू हुआ।

कमलेश्वर, कामतानाथ, जितेंद्र भाटिया, मिथिलेश्वर आदि कहानीकारों ने इसका समर्थन किया।

परंतु 'समांतर कहानी' के अधिकांश पक्षधर इसे आंदोलन नहीं मानते थे। मिथिलेश्वर ने इसे आंदोलन मानने से इनकार किया है परंतु इसकी खूबियों की प्रशंसा की है। अनेक आलोचकों ने इसकी आलोचना भी की है। शैलेश मटियानी एक प्रमुख कहानीकार हैं जो इसकी आलोचना करते हैं। उनके अनुसार समांतर कहानी समकालीन दौर का सर्वाधिक हास्यास्पद तथा हानिकारक आंदोलन है।

सक्रिय कहानी और जनवादी कहानी : 'सक्रिय कहानी' की अवधारणा राकेश वत्स ने प्रस्तुत की। राकेश वत्स के अनुसार 'सक्रिय कहानी' का अर्थ है- 'आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी।"

सक्रिय कहानी और जनवादी कहानी एक बिंदु पर बहुत निकट हैं और वह है– व्यवस्था विरोध दोनों आधुनिक आंदोलनों के कहानीकार आर्थिक- सामाजिक शोषण के विरुद्ध हैं और इसके लिए मौजूद व्यवस्था को जिम्मेदार मानते हैं।

बहुत से कहानीकारों ने इन आंदोलनों से दूर रहते हुए भी सार्थक सृजन किया। इन आंदोलनों से जुड़े कहानीकार भी इन आंदोलनों से हटकर कहानियां लिखते रहे। कहानी आज भी निरंतर

विकास की ओर अग्रसर है। भाषा, भाव व शिल्प की दृष्टि से कहानी में आज भी निरंतर नवीन प्रयोग हो रहे हैं। परंतु इन्हें आंदोलन का नाम नहीं दिया जा रहा। आज की कहानी को हम '२१वीं सदी की कहानी' नाम दे सकते हैं।

हास्य रस की कहानियां : हिन्दी में हास्य रस की कहानियां लिखने वालों में जी.पी. श्रीवास्तव, हरिशंकर शर्मा, कृष्ण प्रसाद गौड़, बेढब बनारसी, अन्नपूर्णानंद, मिर्जा अजीम बेग, चुगताई तथा जयनाथ नलिन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जी.पी. श्रीवास्तव की कहानियों में अत्यधिक वैविध्य उपलब्ध है। इनकी कहानियों में 'पिकनिक', 'भड़ाम सिंह शर्मा', 'गुदगुदी' तथा 'लतखोरी लाल' आदि महत्वपूर्ण हैं। उनका हास्य साधारण स्तर का है। 'बेढब बनारसी' और 'अन्नपूर्णानंद' की कहानियों में अधिक परिष्कृत हास्य मिलता है। अन्नपूर्णानंद की कहानियों में 'महाकवि चच्चा', 'मेरी हजामत', 'मगन रहु चोला' आदि उल्लेखनीय हैं। मिर्जा ने 'गीदड़ को शिकार', 'लेफ्टिनेंट', 'कोलतार' आदि कहानियां लिखीं। नलिन के कहानी संग्रह में 'नवाबी सनक', 'शतरंज के मोहरे', 'जवानी का नशा', 'टीलों की चमक', आदि उल्लेखनीय हैं।

८.५ सारांश

हिन्दी कहानी का साहित्यिक विधा के रूप में कहानी विकास आधुनिक युग में माना जाता है लेकिन प्राचीन भारतीय परम्परा में पंचतंत्र, जातक कथा हितोपदेश आदि कहानियों से मनोरंजन समाज सुधार की भावना, बालवृद्धि का विकास व प्रामाणिक आचरण संबंधी कहानी के स्रोत हमें मिलते है। लेकिन कहानी का विस्तृत स्वरूप कालान्तर पश्चात आधुनिक युग में हमें मिलता है जहाँ कहानी के अनेक रूप हैं जिसमें - आत्मकथात्मक शैली, पत्र शैली, वर्णनात्मक और संवाद एवं भाषा शैली गत दृष्टि से कहानी लिखी जाती है।

८.६ बोध प्रश्न

१. हिन्दी कहानी के विकास क्रम को समझाइये।

२. कहानी विधा में मुंशी प्रेमचंद के योगदान को उल्लेखित कीजिए।

३. हिन्दी कहानी में स्वातंत्र्योत्तर युग की कहानियों की विशेषताओं को समझाइए।

८.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१. कहानी को प्राचीनकाल में किस नाम से पुकारा जाता था ?
उत्तर - गल्प या आख्यायिका

२. हिन्दी की प्रथम कहानी कौनसी है ?
उत्तर - 'रानी केतकी की कहानी'

३. देवरानी जेठानी की कहानी के लेखक है ?
उत्तर - पं. गौरीदत्त

४. चंद्रधर शर्मा गुलेरी किस युग के कहानीकार है ?
उत्तर - प्रेमचंद युग

५. कहानीकार यशपाल सामाजिक प्रश्नों एवं समस्याओं को किस माध्यम से देखते है ?
उत्तर - मार्क्सवादी जीवन दृष्टि के माध्यम से।

८.८ संदर्भ ग्रंथ

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास - नगेन्द्र

३. आधुनिक हिन्दी साहित्य - वाद, प्रवृत्तियाँ एवं विमर्श

❄❄❄❄❄❄❄

९

आलोचना : विकास यात्रा

इकाई की रूपरेखा

९.१ प्रस्तावना

९.२ हिंदी आलोचना : अर्थ एवं परिभाषा

९.२.१ हिंदी आलोचना : अर्थ

९.२.२ हिंदी आलोचना : परिभाषा

९.३ आलोचना : विकास यात्रा

९.४ निष्कर्ष

९.५ बोध प्रश्न

९.१ प्रस्तावना

भारतेंदु हरिश्चन्द्र के समय से ही हिंदी साहित्य में आधुनिक काल की शुरुआत हुई और इसी युग से अनेक गद्य-विधाओं, जैसे कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि- की विकास यात्रा आरंभ हुई। रचना को समझने के लिए आलोचना की जरूरत पड़ती है। आलोचना का अर्थ है किसी वस्तु या कृति का सम्यक् मूल्यांकन करना। इस मूल्यांकन-प्रक्रिया में रसास्वादन, विवेचन, परीक्षण, विश्लेषण आदि का योगदान होता है। आलोचना, रचना और पाठक या सहृदय के बीच सेतु का कार्य करती है। यह रचना के मूल्य और सौंदर्य को उद्घाटित करती है, पाठक की समझ का विस्तार करती है और कृति को जाँचने-परखने के लिए उसे आलोचनात्मक दृष्टि देती है। रचना के गुण-दोष विवेचन से लेकर उसमें अंतर्निहित सौंदर्य और मूल्य के उद्घाटन तक की यात्रा करने वाली आलोचना की भी अनेक पद्धतियाँ हैं जैसे निर्णयात्मक आलोचना, तुलनात्मक आलोचना, ऐतिहासिक आलोचना, सैद्धांतिक आलोचना, व्यावहारिक आलोचना आदि। इस अध्याय में हम आलोचना के अर्थ, परिभाषा, उद्भव एवं विकास पर दृष्टि डालेंगे।

९.२ हिंदी आलोचना : अर्थ एवं परिभाषा

९.२.१ हिंदी आलोचना : अर्थ

'आलोचना' 'लोच्' धातु से बना है; आ+लोच्+अन+आ अर्थात् आलोचना। लोच् का अर्थ है देखना। इसीलिए किसी वस्तु या कृति की सम्यक् व्याख्या अथवा उसका होन मूल्यांकन आदि करना ही आलोचना है। नित्य के व्यावहारिक जीवन में किसी न किसी व्यक्ति, वस्तु नए किसी अथवा कार्यकलाप की समीक्षा में हमारी सहज प्रवृत्ति उसका होती है। किंतु संस्कारों, चिंतन क्षमता एवं सामाजिक नित्य के अवधारणा प्रभृति अन्य व्यक्तिगत विशेषताओं के आधार पर उसकी आलोचना की जाती है।

९.२.२ हिंदी आलोचना : परिभाषा

'आलोचना' शब्द 'लुच' धातु से बना है। 'लुच' का अर्थ है 'देखना'। अस्तु समीक्षा और समालोचना शब्दों का भी यही अर्थ है। अंग्रेजी के 'क्रिटिसिज्म' शब्द के समानार्थी रूप में 'आलोचना' का व्यवहार होता है। संस्कृत में प्रचलित 'टीका-व्याख्या' और 'काव्य-सिद्धान्तनिरूपण' के लिए भी आलोचना शब्द का प्रयोग कर लिया जाता है।

भारतीय विद्वान:

१. **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल:** "आधुनिक आलोचना, संस्कृत के काव्य-सिद्धान्तनिरूपण से स्वतंत्र चीज़ है। आलोचना का कार्य है किसी साहित्यक रचना की अच्छी तरह परीक्षा करके उसके रूप, गुण और अर्थव्यस्था का निर्धारण करना।"

२. **डॉ. श्यामसुन्दर दास:** "यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या मानें तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा।"

३. **डॉ. भगीरथ मिश्र:** आलोचना का कार्य कवि और उसकी कृति का यथार्थ मूल प्रकट करना है।

पाश्चात्य विद्वान:

१. **डाइडन:** "आलोचना निर्णय का एक मानदंड है जो विचारशील पाठकों को आनंद प्रदान करने वाली साहित्य विशेषता का लेखा-जोखा करती है। यह हमारे तर्क का मूल्य मानदंड है।"

२. **मैथ्यू अर्नाल्ड:** "सर्वश्रेष्ठ विचारों भावों की खोज करना और उसके रसोई में योगदान देना आलोचना के महत्वपूर्ण कार्य है।"

३. **टी. एस. इलियट:** "आलोचना का उद्देश्य किसी वस्तु के मूल्य का निर्णय करना है।"

९.३ हिंदी आलोचना : विकास यात्रा

हिंदी में आलोचना का उद्भव और विकास आधुनिक काल में हुआ है। अत: हिंदी साहित्य में आलोचना एक महत्त्वपूर्ण विधा मानी जाती है। इसी के आधार पर रचना का मूल अर्थ उभरकर सामने आता है। अनेक आलोचकों की उत्कृष्ट आलोचनाओं ने यह प्रमाणित किया कि आलोचना रचना की अनुवर्ती नहीं है बल्कि उसकी भी एक स्वतंत्र सत्ता है और रचना की तरह वह भी एक सृजन है।

१. शुक्ल पूर्व हिंदी आलोचना

रीतिकाल में संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों से प्रेरणा लेकर केशवदास, चिन्तामणि, मतिराम, कुलपति मिश्र, भिखारीदास आदि अनेक आचार्य-कवियों ने रस, छंद, अलंकार, रीति. शब्दशक्ति और नायक-नायिका भेद से संबंधित अनेक लक्षण-ग्रंथों की रचना की किंतु इनसे सिद्धांत-निरूपण से आगे बढ़कर व्यावहारिक समीक्षा का मार्ग प्रशस्त नहीं हुआ। इसका एक बड़ा कारण यह था कि उस समय तक गद्य का विकास नहीं हुआ था। सारी बातें पद्य में लिखी

जाती थीं। पद्य में किसी बात पर तर्क-वितर्क करना, उसका सम्यक् मूल्यांकन और विश्लेषण करना संभव नहीं था, इसलिए व्यावहारिक आलोचना का मार्ग अवरुद्ध रहा। रीतिकाल में व्यावहारिक आलोचना का रूप संस्कृत की सूत्र-शैली के रूप में ही प्रचलित रहा- वह भी पद्य में ही। इस काल में कवियों की विशेषताओं को सूत्र-रूप में व्यक्त करने की पद्धति क्षीण रूप में प्रचलित थी। आलोचना का यह स्फुट रूप, गहन चिन्तन, मनन और विश्लेषण से शून्य था। इसमें प्रभावात्मक अभिव्यक्ति और प्रशंसात्मक मूल्यांकन की प्रधानता थी। अस्तु खंडन-मंडन की इस शैली से साहित्य का न तो मूल्यांकन संभव था, न उसका रसास्वादन।

१) **भारतेंदु युगीन आलोचना:** हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का आरंभ भारतेंदु के समय (सन् १८५०-१८८५) के साथ ही माना जाता है। भारतीय जनता में बौद्धिकता, तार्किकता और भौतिकवादी दृष्टिकोण का प्रसार हुआ और पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अन्य गद्य रूपों के साथ हिंदी आलोचना के नए और आधुनिक रूप का जन्म हुआ। भारतेंदु द्वारा सम्पादित- 'कविवचनसुधा' और 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में समीक्षा के स्तम्भों में पुस्तकों की समीक्षाएँ प्रकाशित होती थीं। 'हिंदी प्रदीप', 'भारतमित्र', 'ब्राह्मण', 'आनंद कादम्बिनी' आदि ने भी पुस्तकों की समीक्षाएँ प्रकाशित करके इस विधा को गति प्रदान की। यद्यपि आरंभ में ये समीक्षाएँ परिचयात्मक एवं साधारण कोटि की थीं लेकिन धीरे-धीरे उनमें निखार और परिष्कार भी आता गया। भारतेंदु ने अपने 'नाटक' नामक लेख में नाटक पर विचार करते समय उसकी प्रकृति, समसामयिक जीवन रुचि, स्वाभाविकता, यथार्थता और प्राचीन नाट्यशास्त्र की उपयोगिता तथा नए नाटकों की आवश्यकता का जो विवेचन किया है, उसे हिंदी आलोचना का प्रथम उन्मेष मानना चाहिए और भारतेंदु को हिंदी का प्रथम आलोचक। यद्यपि भारतेंदु व्यावहारिक आलोचना का मार्ग प्रशस्त नहीं कर सके, वे ज्यादातर सैद्धांतिक विवेचन तक ही सीमित रह गए, किंतु उनके विवेचन में आलोचना-दृष्टि का जो उन्मेष हुआ, उसको बालकृष्ण भट्ट और चौधरी बदरी नारायण "प्रमघन" ने आगे बढ़ाया।

आलोचना के अंतर्गत किसी कृति के मूल्यांकन का कार्य इन्हीं दोनों की समीक्षाओं से आरंभ हुआ। प्रेमघन जी ने 'आनंद कादम्बिनी' में बाणभट्ट की 'कादम्बरी' की जहाँ प्रशंसात्मक समीक्षा की, वहीं बाबू गदाघर सिंह द्वारा लिखे गए 'बंग विजेता' नामक बंगला उपन्यास की विस्तृत समीक्षा उपन्यास के तत्वों के आधार पर की और स्वाभाविकता, मनोवैज्ञानिकता तथा सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से उपन्यास के गुण-दोषों का उल्लेख किया। लाला श्रीनिवास दास के "संयोगिता स्वयंवर" नाटक की समीक्षा जहाँ प्रेमघन ने 'आनंद कादम्बिनी' में बड़े प्रशंसात्मक ढंग से की, वहीं बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप' में 'सच्ची समालोचना' के नाम से उसकी कटु समीक्षा की। इस तरह भारतेंदु युग में एक ओर परम्परागत साहित्य सिद्धांतों को विकसित करने का प्रयत्न हुआ और दूसरी ओर व्यावहारिक समीक्षा का सूत्रपात हुआ।

२) **द्विवेदी युगीन आलोचना:** हिंदी भाषा और साहित्य के विकास एवं परिष्कार के लिए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जो कार्य किया, वह हिंदी साहित्य में अद्वितीय है। उनके युग में हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि तो हुई ही, साहित्यालोचना के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य हुआ। इस युग में यद्यपि हिंदी आलोचना का गंभीर एवं तात्विक रूप

तो नहीं निखरा किंतु अनेक महत्वपूर्ण आलोचना-पद्धतियाँ अवश्य विकसित हुईं, जैसे - शास्त्रीय आलोचना, तुलनात्मक मूल्यांकन एवं निर्णय, परिचयात्मक तथा व्याख्यात्मक आलोचना, अन्वेषण तथा अनुसंधानपरक समीक्षा आदि।

प्राचीन सिद्धांतों के परिपोषण और विवेचन के साथ ही इस युग के नवीन सिद्धांतों के प्रतिपादन का भी कार्य हुआ है। इस दृष्टि से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, पुन्नालाल बख्शी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दर दास और गुलाब राय के नाम उल्लेखनीय हैं। द्विवेदी जी ने 'रसारंजन' में विषय के अनुकूल छंद योजना, सरल भाषा के प्रयोग, अर्थ-सौरस्य, मनोरंजन के स्थान पर युगबोध, नैतिकता, मर्यादा, देश-प्रेम आदि से संबंधित उच्च भावों की अभिव्यक्ति पर विशेष बल दिया और रीतिकालीन कविता की अतिशृंगारिकता तथा विलासिता की प्रवृत्ति की कड़ी आलोचना करते हुए कहा कि इससे न तो देश और समाज का कल्याण हो सकता है, न उसके सर्जक का ही। उन्होंने अपने 'कवि कर्त्तव्य' नामक निबंध में विस्तार के साथ कवि के नए कर्तव्यों का बोध कराते हुए काव्य-विषय, काव्य-भाषा, शैली, उद्देश्य आदि का जो विवेचन किया है, उससे पता चलता है कि द्विवेदी जी नवीनता के पोषक थे और नयी परिस्थितियों में साहित्य साधना को नए दायित्वों से जोड़ना चाहते थे। उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से इस कार्य को सम्पन्न किया और हिंदी भाषा, साहित्य और आलोचना को नयी दिशा प्रदान की।

द्विवेदी-युग में तुलनात्मक समीक्षा में विशेष प्रगति हुई। इस युग में साहित्यकारों का संस्कृत के साथ-साथ अंग्रेजी, फारसी, उर्दू आदि भाषाओं के साहित्य से घनिष्ठ परिचय होने के कारण तुलनात्मक एवं निर्णयात्मक समीक्षा की प्रवृत्ति का विकास हुआ। इस क्षेत्र में पदमसिंह शर्मा, मिश्रबंध (श्यामबिहारी मिश्र, शुकदेव बिहारी मिश्र, गणेश बिहारी मिश्र), लाला भगवानदीन और कृष्णबिहारी मिश्र ने विशेष कार्य किया। सबसे पहले पद्मसिंह शर्मा ने 'बिहारी' और फारसी के कवि 'सादी' की तुलनात्मक आलोचना की, उसके बाद मिश्रबंधुओं ने 'हिंदी नवरत्न' नामक ग्रंथ में तुलनात्मक मूल्यांकन के आधार पर हिंदी के नौ कवियों (सूर, तुलसी, देव, बिहारी, केशव, भूषण, सेनापति, चन्द, हरिशचन्द्र) को श्रेणीबद्ध करके उनकी आलोचना प्रकाशित की। बाद में उनके इस श्रेणी-निर्धारण में परिवर्तन भी होता रहा मिश्र बंधुओं ने देव को बिहारी से ऊँचा कवि माना, इसके उत्तर में पद्मसिंह शर्मा ने 'बिहारी' को बड़ा सिद्ध किया। बाद में तुलना के इस अखाड़े में कृष्णबिहारी मिश्र और लाला भगवानदीन भी आ गए। इस तरह तुलनात्मक समीक्षा का एक ऐसा मार्ग निकला जिसमें प्रचीन सिद्धांतों के आलोक में हिंदी कवियों की व्यावहारिक समीक्षा की गई। यह शास्त्रीय आलोचना के भीतर जन्म लेने वाली वह व्यावहारिक समीक्षा थी, जिसमें गुण-दोष विवेचन और बड़ा-छोटा सिद्ध करने की प्रवृत्ति अधिक थी। जीवन और समाज के व्यापक संदर्भो में साहित्य को समझने की यदि कोशिश की गई होती तो इस आलोचना में अधिक व्यापकता आ जाती।

इस युग में 'साहित्यालोचन' की प्रवृत्तियों और आदर्शों पर अनेक लेख 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'सरस्वती', 'समालोचक', 'इन्द्र', 'माधुरी', आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में गंगाप्रसाद अग्निहोत्री ने 'समालोचना' नामक लेख

प्रकाशित करके समालोचक के गुणों - मूलग्रंथ का ज्ञान, सत्य-प्रीति, शांत स्वभाव और सहृदयता - को रेखांकित किया । महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'विक्रमांकदेव चरित नैषधचरित चर्चा' और 'कालिदास की निरंकुशता' जैसे लेखों से व्यावहारिक समीक्षा का मार्ग प्रशस्त किया और संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी, मराठी और उर्दू साहित्य में प्राप्त महत्वपूर्ण सामग्री की जानकारी हिंदी पाठकों को दी, जिसे आचार्य शुक्ल ने 'एक मुहल्ले की बात दूसरे मुहल्ले तक पहुँचाने' का कार्य किया । किंतु यह नहीं भूलना चाहिए कि यह हिंदी पाठकों, सर्जकों और समीक्षकों को ज्ञान से समृद्ध करने वाला एक महत्वपूर्ण कार्य था ।

द्विवेदी युग में ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की व्यावहारिक समीक्षा की व्याख्यात्मक पद्धति विकसित हुई । चूँकि शुक्ल जी की आलोचना कई तरह से हिंदी आलोचना में एक मानक की तरह है और द्विवेदी युग की आलोचना से काफी आगे है, इसलिए इसकी विशेष चर्चा शुक्ल युगीन हिंदी आलोचना के अंतर्गत की जाएगी । द्विवेदी युग में ही अनुसंधानपरक समीक्षा का विकास हुआ । वैसे तो 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित लेखों से ही इस पद्धति के दर्शन होने लगे थे, किंतु उसका सम्यक् विकास द्विवेदी-युग में सन् १९२१ ई. में बाबू श्याम सुंदर दास के काशी हिंदू विश्वद्यिालय में हिंदी विभाग में नियुक्त होने के बाद ही हुआ । शोध या अनुसंधानपरक आलोचना में अनुपलब्ध या अज्ञात तथ्यों का अन्वेषण तथा उपलब्ध तथ्यों का नवीन आख्यान आवश्यक होता है । बाबू श्यामसुंदर दास, राधाकृष्ण दास, जगन्नाथ दास रत्नाकर और सुधाकर द्विवेदी ने द्विवेदी युगीन अनुसंधानपरक आलोचना का स्वरूप विकसित करने में योग दिया है ।

सरांशत: इस प्रकार द्विवेदी युग में हिंदी आलोचना विभिन्न पद्धतियों को विकसित करती हुई उत्तरोत्तर शक्ति सम्पन्न हुई । इसी युग में पाश्चात्य साहित्य से परिचित होकर और उसका स्वस्थ प्रभाव ग्रहण कर हिंदी आलोचना ने स्वतंत्र व्यक्तित्व प्राप्त किया और इसमें कवि-विशेष के सामान्य गुण-दोष के विवेचन के साथ ही रचना की गहरी छान-बीन, देश और समाज के परिप्रेक्ष्य में साहित्य की उपयोगिता और मूल्यवत्ता को परखने की प्रवृत्ति विकसित हुई ।

३) **शुक्ल युगीन आलोचना:** द्विवेदी-युग की सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक समीक्षा को विकसित एवं समृद्ध करने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को है। वे हिंदी आलोचना के प्रशस्त-पथ पर एक ऐसे आलोक-स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जिसके प्रकाश में हम आगे और पीछे दोनों ओर बहुत दूर तक देख सकते हैं । आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि यद्यपि द्विवेदी-युग में विस्तृत समालोचना का मार्ग प्रशस्त हो गया था, किंतु वह आलोचना भाषा के गुण-दोष विवेचन, रस, अलंकार आदि की समीचीनता आदि बहिरंग बातों तक ही सीमित थी । उसमें स्थायी साहित्य में परिगणित होने वाली समालोचना, जिसमें किसी कवि की अन्तर्वत्ति का सूक्ष्म व्यवच्छेद होता है, उसकी मानसिक प्रवृत्ति की विशेषताएँ दिखाई जाती हैं, जो बहुत ही कम दिखाई पड़ी । इस युग में आलोचकों का ध्यान गुण-दोष कथन से आगे बढ़कर कवियों की विशेषताओं और उनकी अंत:वृत्ति की छानबीन की ओर गया । इस प्रकार की समीक्षा का आदर्श शक्ल जी की सूर, जायसी और तुलसी संबंधी समीक्षाओं में देखा जा सकता है ।

इन समीक्षाओं में शुक्ल जी के गंभीर अध्ययन, वस्तुनिष्ठ विवेचन, सारग्राहिणी दृष्टि, संवेदनशील हृदय और प्रखर बौद्धिकता का सामंजस्य, प्राचीनता और नवीनता के समुचित समन्वय से प्राप्त प्रगतिशील विचारधारा, रसवादी, नीतिवादी, मर्यादावादी और लोकवादी दृष्टि का सम्यक् परिचय प्राप्त होता है। इन सबके चलते शुक्ल जी ने हिंदी आलोचना में अपना विशिष्ट व्यक्तित्व स्थापित किया और वे एक ऐसे आलोचक के रूप में प्रतिष्ठित हए जिसमें सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक समीक्षा का उत्कृष्ट रूप दिखाई पड़ता है। हिंदी में ही नहीं, आधुनिक काल की समूची भारतीय आलोचना-परम्परा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का विशिष्ट स्थान और महत्व है।

शुक्ल जी ने सूर, तुलसी, जायसी आदि मध्यकालीन कवियों और छायावादी काव्यधारा का गंभीर मूल्यांकन करके जहाँ व्यावहारिक आलोचना का आदर्श प्रस्तुत किया और हिंदी आलोचना को उन्नति के शिखर तक पहुँचाया, वहीं 'चिंतामणि' और 'रसमीमांसा' जैसे ग्रंथों से सैद्धांतिक आलोचना को नई गरिमा और ऊँचाई प्रदान की। 'कविता क्या है', 'काव्य में रहस्यवाद', 'साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद', 'रसात्मक बोध के विविध रूप' आदि निबंधों में शक्ल जी ने अपनी काव्यशास्त्रीय मेधा और स्वतंत्र चिंतन-शक्ति के साथ-साथ भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र के विशद् एवं गंभीर ज्ञान तथा व्यापक लोकानुभव और गहरी लोकसंस्कृति का जो परिचय दिया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

आचार्य शुक्ल ने अपनी व्यावहारिक समीक्षा में जिस तरह के सूत्रात्मक निष्कर्ष और आलोचना के नए मानदंड प्रस्तुत किए हैं, वे उनकी समीक्षा-शक्ति और साहित्य में गहरी पैठ के प्रमाण हैं। उनकी शास्त्रीय समीक्षा में उनका पाण्डित्य, मौलिकता और सूक्ष्म पर्यवेक्षण पग-पग पर दिखाई पड़ता है। हिंदी की सैद्धांतिक आलोचना को परिचय और सामान्य विवेचन के धरातल से उठाकर गंभीर मूल्यांकन और व्यावहारिक सिद्धांत प्रतिपादन की उच्चभूमि पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को है। सूर, तुलसी, जायसी संबंधी उनकी आलोचनाएँ व्यावहारिक आलोचना का प्रतिमान बनी हुई हैं। आचार्य शुक्ल लोकवादी समीक्षक हैं। लोकमंगल, लोक धर्म, लोक मर्यादा आदि को केंद्र में रखकर ही वे साहित्य की श्रेष्ठता और उत्कृष्टता का निदर्शन करते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के साथ-साथ हिंदी आलोचना को समर्थ और गतिशील बनाने वाले आलोचकों में पं. कृष्णशंकर शुक्ल, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, गुलाब राय, लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' के नाम उल्लेखनीय हैं। कृष्णशंकर ने 'केशव की काव्यकला' और 'कविकर रत्नाकर' नामक कृतियों में केशवदास और जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' की जीवनी और उनके काव्य के विभिन्न पक्षों पर सहृदयतापूर्वक प्रकाश डाला है। इन दोनों पुस्तकों की प्रशंसा करते हुए आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास-ग्रंथ में लिखा - 'केशव की काव्यकला' में पंडित कृष्णशंकर शुक्ल ने अच्छा विद्वत्तापूर्ण अनुसंधान भी किया है। इसी प्रकार आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने भी 'हिंदी साहित्य का अतीत' और 'बिहारी की वाग्विभूति' जैसे ग्रंथों में उत्कृष्ट आलोचना-प्रतिभा का परिचय दिया है। इन्होंने रीतिकाल के महत्वपूर्ण कवियों, बिहारी, केशव, घनानंद, भूषण, रसखान आदि की विस्तृत समीक्षा करके अपनी सिद्धांतनिष्ठ, अनुसंधानपरक और सारग्राही

आलोचना-पद्धति से हिंदी आलोचना को काफी शक्ति प्रदान की है। उनकी रीतिकाव्य की व्याख्याएँ और टीकाएँ भी आलोचना के बड़े काम की हैं।

लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' ने 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' में क्रोचे के 'अभिव्यंजनावाद' और उसके प्रकाश में भारतीय काव्यशास्त्र और हिंदी के नवीन काव्य पर विचार करते हुए अपनी सहृदयता, विद्वत्ता और मर्मग्राहिता का परिचय दिया है। बाबू गुलाबराय ने 'सिद्धांत और अध्ययन', 'काव्य के रूप' और 'नवरस' जैसे ग्रंथों के माध्यम से हिंदी की सैद्धांतिक आलोचना को पुष्ट किया। उन्होंने आचार्य रामचंद्र शुक्ल की ही तरह भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के समन्वय से नवीन आलोचना-सिद्धांतों को विकसित करने का कार्य किया। पाश्चात्य एवं भारतीय काव्यशास्त्रों की मान्यताओं का गंभीर अध्ययन-विश्लेषण करके अपनी समन्वय बुद्धि द्वारा आचार्य शुक्ल ने भी हिंदी के एक नए आलोचना-शास्त्र के निर्माण का कार्य किया। इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र कहते हैं कि "शुक्लजी ने संस्कृत काव्यशास्त्र का पुनराख्यान कर और पाश्चात्य आलोचना-सिद्धांतों को अपने अनुरूप ढालकर हिंदी के लिए एक नए आलोचना-शास्त्र का निर्माण किया।" शुक्लानुवर्ती आलोचकों ने उनके इस कार्य में योग दिया, यह दूसरी बात है कि वे आचार्य शुक्ल की सी गहराई, व्यापकता और ऊँचाई का परिचय नहीं दे सके, फिर भी उनके योगदान को कम करके नहीं आँका जा सकता है।

४) **शुक्लोत्तर युगीन आलोचना:** आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना के केंद्र में वीरगाथा काल से लेकर छायावादी काव्यधारा तक का साहित्य रहा है। उनके समीक्षा-सिद्धांत और काव्य के प्रतिमान विशेष रूप से भक्तिकाव्य के आधार पर निर्मित हुए हैं। जिस समय शुक्ल जी का आलोचक व्यक्तित्व अपने पूरे निखार पर था। उसी समय व्यक्ति चेतना को केंद्र में रखकर छायावादी काव्यधारा का विकास हुआ, जिसकी आचार्य शुक्ल ने कड़ी आलोचना की। रसवादी, परम्परानिष्ठ, लोकमंगलवादी और मर्यादावादी आचार्य शुक्ल व्यक्ति के सुख-दुख, आशा-आकांक्षा, प्रेम-विरह और मानवीय सौंदर्य के आकर्षण से परिपूर्ण छायावादी कविता को अपेक्षित सहृदयता से न देख-समझ सके। वस्तुत: इसे नन्ददुलारे वाजपेयी, शांतिप्रिय द्विवेदी और डॉ. नगेंद्र जैसे समर्थ आलोचकों का बल प्राप्त हुआ। इन आलोचकों ने आचार्य शुक्ल की आलोचना-परम्परा का विकास करते हुए अनेक संदर्भो में अपनी स्वतंत्र दृष्टि और मौलिकता का परिचय दिया है। शुक्लोत्तर हिंदी आलोचना का विकास कई रूपों में हुआ। यहाँ पर आचार्य शुक्ल के बाद से स्वतंत्रता प्राप्ति तक की हिंदी आलोचना की विभिन्न प्रवृत्तियों एवं पद्धतियों पर प्रकाश डाला जा रहा है। आचार्य शुक्ल के बाद हिंदी में स्वच्छन्दतावादी, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक और मार्क्सवादी आलोचना का विकास हुआ। इनका स्वतंत्र रूप से परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

१. **स्वच्छन्दतावादी आलोचना:** स्वच्छन्दतावादी आलोचना का विकास हिंदी की छायावादी काव्यधारा के मूल्यांकन के साथ हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के व्यापक प्रभाव के बावजूद भी आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने छायावाद को अपना समर्थन दिया और इस काव्यधारा के सौंदर्य को प्रभावशाली ढंग से उद्घाटित किया। उन्होंने छायावादी कवियों के स्वर में अपना स्वर मिलाते हुए साहित्य की स्वायत्त सत्ता की घोषणा की और कहा - "काव्य का महत्व तो

काव्य के अंतर्गत ही है, किसी बाहरी वस्तु में नहीं। काव्य और साहित्य की स्वतंत्र सत्ता है, उसकी स्वतंत्र प्रक्रिया है और उसकी परीक्षा के स्वतंत्र साधन हैं।"

वाजपेयी जी की इस आलोचना को, स्वच्छन्दता को चरम मूल्य मानने के कारण 'स्वच्छन्दतावादी' और काव्य-सौष्ठव पर बल देने के कारण 'सौष्ठववादी' संज्ञा मिली। नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'आधुनिक साहित्य', नया साहित्य : नए प्रश्न', 'जयशंकर प्रसाद', 'कवि निराला', 'हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' आदि जैसे आलोचनात्मक ग्रंथों में छायावाद, स्वच्छन्दतावाद और छायावादी कवियों - पंत, निराला, प्रसाद - का मूल्यांकन प्रस्तुत किया और इस नवीन काव्यधारा के संदर्भ में नए समीक्षा-सिद्धांतों का निर्माण किया। वाजपेयी जी के साथ ही डॉ. नगेन्द्र ने छायावादी काव्य का जो मूल्यांकन प्रस्तुत किया, वह भी हिंदी की स्वच्छन्दतावादी आलोचना को परिपुष्ट करने वाला है। 'आधुनिक हिंदी कविता की प्रवृत्तियाँ' और 'समित्रानंदन पंत' जैसे ग्रंथों से उन्हें छायावादी आलोचक के रूप में ख्याति मिली। उन्होंने काव्य में आत्माभिव्यक्ति को महत्वपूर्ण माना और छायावाद को 'स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह' कहा। उन्होंने यह स्थापित किया कि भक्ति आंदोलन के बाद हिंदी साहित्य में छायावाद एक बड़ा काव्यान्दोलन था। पंत के काव्य का मूल्यांकन करके डॉ. नगेन्द्र ने जहाँ उनके काव्य को समझने की दृष्टि दी, वहीं उनकी कविता से ही अपनी आलोचना के मूल्य भी निकाले।

२. **मनोवैज्ञानिक:** मनोविश्लेषणवादी आलोचना का संबंध फ्रायड के मनोविज्ञान कला-सिद्धांत से है जो यह मानता है कि साहित्य और कलाएँ मनुष्य की दमित वासनाओं की अभिव्यक्ति हैं। इनके अनुसार मनुष्य की दमित वासनाओं का उदात्तीकृत रूप ही साहित्य या कला में व्यक्त होता है। दमित वासनाएँ काममूला होती हैं। मनोवैज्ञानिक आलोचक कवि के व्यक्तिगत जीवन के आधार पर उसकी वासनाओं का विश्लेषण करता है और उसके साहित्य में उनकी अभिव्यक्ति को रेखांकित करता है। मनोविश्लेषणवादी साहित्य-दृष्टि के अनुसार साहित्य-निर्माण की प्रेरणा मनुष्य की चेतना से नहीं, अवचेतन में दमित वासनाओं में मिलती है चूंकि ये वासनाएँ प्रवृत्तिमूलक और वैयक्तिक होती हैं, अत: यह माना जाता है कि साहित्य का संबंध व्यक्ति-चेतना से अधिक है, सामाजिक चेतना से नहीं अत: साहित्य सामाजिक होने की अपेक्षा व्यक्तिगत होता है। इस तरह कला मूलत: स्वान्तः सुखाय होती है। मनोविश्लेषणवादी, नैतिकता के प्रश्न को भी महत्व नहीं देता।

इलाचन्द्र जोशी ने साहित्य-रचना और समीक्षा का उल्लेखनीय कार्य किया है। उन्होंने 'साहित्य-सर्जना' नामक पुस्तक से अपने मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की स्थापना की और विवेचना', 'विश्लेषण', 'दखा-परखा' जैसी कृतियों में मनोवैज्ञानिक आलोचना का व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया। भारतीय साहित्य में प्रगतिशीलता', 'महादेवी जी का आलोचना-साहित्य', 'छायावादी तथा प्रगतिपंथी कवियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण', 'कामायनी', 'शरतचन्द्र की

प्रतिभा', आदि निबंधों में उनकी मनोविश्लेषणवादी समीक्षा-दृष्टि व्यावहारिक रूप से प्रकट हुई है। इलाचन्द्र जोशी का मानना है कि हिंदी का भक्ति साहित्य दमित काम-कंठा का ही प्रतीक है। छायावादी काव्य में भी उन्हें यौन-संबंधों की कुंठाएँ शालीन रूप में अभिव्यक्त हुई दिखाई पड़ती हैं। अत: अज्ञेय, डॉ. नगेन्द्र और डॉ. देवराज की भी समीक्षाओं में भी मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। अज्ञेय के 'त्रिशंक', 'आत्मनेपद', डॉ नगेन्द्र के रस-सिद्धांत के विश्लेषण और पंत-काव्य के मूल्यांकन तथा डॉ. देवराज के साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' नामक ग्रंथों में मनोविश्लेषणवादी समीक्षा-दृष्टि का व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक रूप देखा जा सकता है।

३. **ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक आलोचना:** आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (१९०७) ने हिंदी में ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक आलोचना का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने 'हिंदी साहित्य की भूमिका' नामक पुस्तक में स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित किया कि किसी ग्रंथकार का स्थान निर्धारित करने के लिए क्रमागत सामाजिक, सांस्कृतिक एवं जातीय सातत्य को देखना आवश्यक है। इसके लिए आवश्यक है कि आलोचक को अपनी जातीय परंपरा या सांस्कृतिक विरासत का बोध हो। आचार्य द्विवेदी ने अपनी इस धारणा के तहत 'हिंदी साहित्य की भूमिका', हिंदी साहित्य का आदिकाल' और 'कबीर' जैसे आलोचनात्मक ग्रंथों की रचना की। उन्होंने हिंदी साहित्य को ठीक से समझने के लिए। पूर्ववर्ती साहित्य-परम्पराओं (संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश) की जानकारी को आवश्यक माना और उनके साथ हिंदी-साहित्य के घनिष्ठ संबंध को रेखांकित किया। उन्होंने 'मध्यकालीन बोध का स्वरूप', 'भारत के प्राचीन कला - विनोद', 'कालिदास की लालित्य योजना' जैसी रचनाओं के माध्यम से ऐतिहासिक-सांस्कृतिक आलोचना को परिपुष्ट किया। उल्लेखनीय है कि ऐतिहासिक-सांस्कृतिक आलोचना किसी कृति का मूल्यांकन इतिहास और संस्कृति के व्यापक परिप्रेक्ष्य में करती है।

ऐतिहासिक आलोचक के अनुसार मानव-समुदाय की चेतना देश-काल के अनुसार परिवर्तित होते हुए भी परंपरा से बँधी होती है। इसी तरह सांस्कृतिक आलोचना भी रचना में सांस्कृतिक तत्वों की छानबीन करती है और उसके सांस्कृतिक महत्व और अवदान को रेखांकित करती है। द्विवेदी जी ने अपने समीक्षात्मक ग्रंथों में ऐतिहासिक-सांस्कृतिक आलोचना का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है। आचार्य मिश्र ने 'भूषण ग्रंथावली' और परशुराम चतुर्वेदी ने 'उत्तरी भारत की संत परंपरा' में ऐतिहासिक विवेचना एवं मूल्यांकन को चरितार्थ किया है।

४. **मार्क्सवादी आलोचना:** प्रेमचंद ने अपने अध्यक्षीय भाषण में साहित्य के नए उद्देश्यों और सौंदर्य की नई कसौटियों और दृष्टियों पर विस्तृत प्रकाश डाला। इसी के साथ हिंदी में प्रगतिशील लेखन और मूल्यांकन का दौर शुरू हुआ। प्रगतिशील आंदोलन का वैचारिक आधार मार्क्सवादी दर्शन रहा है जो वस्तुजगत को ही चरम सत्य मानता है और विकास की द्वंद्वात्मक प्रणाली में

विश्वास करता है । मार्क्सवादी की मान्यता है कि मानव-चेतना का नियमन सामाजिक परिस्थितियाँ करती हैं और कला चेतना मानव चेतना का ही उदात्त रूप है, इसलिए प्रत्येक युग का कलाकार जाने-अनजाने उस वर्ग विशेष का ही प्रतिनिधत्व करता है जिसमें वह पला होता है । यह दुनिया दो वर्गों में विभक्त हैं- एक शोषक वर्ग है, दूसरा शोषित । शोषक वर्ग का पूँजी पर एकाधिपत्य है और शोषित वर्ग अपने अथक श्रम के बावजूद हर तरह से दीन-हीन और विपन्न है। यही सर्वहारा वर्ग है । मार्क्सवाद मानता है कि पूँजीवाद को मिटाने और साम्यवाद की स्थापना का धर्म है कि वह अपनी रचना के माध्यम से सर्वहारा के स्वाभिमान को जागृत करे और उसे अपने हक की लड़ाई के लिए तैयार करे । इस धारणा के तहत जो रचनाएँ होती हैं उन्हें मार्क्सवादी या प्रगतिवादी साहित्य कहते हैं और रचना में उपर्युक्त विशेषताओं की खोजबीन करने वाली आलोचना को मार्क्सवादी आलोचना कहा जाता है ।

मार्क्सवादी-विचार-दर्शन से अनुप्राणित होकर आरंभ में जिन आलोचकों ने मार्क्सवादी आलोचना का मार्ग प्रशस्त किया, जिसमें शिवदान सिंह चौहान, प्रकाशचन्द्र गुप्त और रामविलास शर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं । शिवदान सिंह चौहान ने 'प्रगतिवाद', 'साहित्य की परख', 'आलोचना के मान', 'साहित्य की समस्याएँ' और 'साहित्यानुशीलन', प्रकाशचन्द्र गुप्त ने 'हिंदी साहित्य', 'आधुनिक हिंदी साहित्य' और 'हिंदी साहित्य की जनवादी परंपरा' तथा रामविलास शर्मा ने 'प्रगति और परंपरा', 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ', 'आस्था और सौंदर्य' जैसे आलोचनात्मक ग्रंथों से हिंदी की मार्क्सवादी समीक्षा का स्वरूप विकसित किया । तथा रामविलास शर्मा ने आचार्य शुक्ल की लोकमंगल की भावना को. प्रगतिशील साहित्यालोचन के केंद्र में रखकर जिस तरह परम्परा का मूल्यांकन किया है, वह हिंदी की प्रगतिशील आलोचना का श्रेष्ठ उदाहरण है । आगे चलकर हिंदी में मार्क्सवादी समीक्षा का काफी विकास हुआ । इसकी विस्तृत चर्चा स्वात्रंत्र्योत्तर हिंदी आलोचना के अंतर्गत की जाएगी ।

५. **नयी समीक्षा:** रामविलास शर्मा के साथ स्वातंत्र्योत्तर काल की प्रगतिशील हिंदी आलोचना या मार्क्सवादी हिंदी आलोचना को सशक्त बनाने वालों में गजानन माधव मुक्तिबोध, नामवर सिंह, रांगेय राघव, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, शिवकुमार मिश्र के नाम उल्लेखनीय हैं । मुक्तिबोध ने 'कामायनी : एक पुनर्विचार', 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध', 'नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' जैसे ग्रंथों से हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना को एक ऐसी ऊँचाई प्रदान की है जिसको छू पाना परवर्ती आलोचना के लिए मुश्किल हो रहा है । मुक्तिबोध ने छायावादी काव्य के प्रति सकारात्मक रुख अपनाया और उसकी प्रगतिशील भूमिका की सराहना भी की । मुक्तिबोध ने कामायनी को द्विअर्थक कृति न मानकर एक फैंटेसी माना और यह स्थापित किया कि कामायनी इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि उसमें मनु को देश-कालातीत, शाश्वत मानव का रूप दिया गया है बल्कि उसकी महत्ता इसमें है कि उसमें पूँजीवादी हासगत सभ्यता के भीतर व्यक्ति के भीतरी विकेंद्रीकरण का प्रश्न बड़े जोर से उठाया

गया है। 'एक साहित्यिक की डायरी' एवं 'नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' जैसी पुस्तकों की रचना करके मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि और कला-सिद्धांतों की ऐसी रूपरेखा प्रस्तुत कर दी, जो फिलहाल हिंदी आलोचना में एक मानक बनी हुई है।

मुक्तिबोध के साथ ही नामवर सिंह ने भी हिंदी की मार्क्सवादी समीक्षा को काफी सुदृढ़ किया है। उनकी महत्वपूर्ण आलोचना-पुस्तकों में छायावाद', 'कविता के नये प्रतिमान', 'दूसरी परम्परा की खोज', और 'वाद-विवाद संवाद', विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन पुस्तकों के आधार पर नामवर सिंह की मार्क्सवादी आलोचना-दृष्टि और उनकी व्यावहारिक समीक्षा का अच्छा परिचय प्राप्त किया जा सकता है। नामवर सिंह एक प्रखर समीक्षक के रूप में जाने जाते हैं। वे रसवादी समीक्षक डॉ. नगेन्द्र, मार्क्सवादी समीक्षक रामविलास शर्मा और कलावादी समीक्षक अशोक वाजपेयी से बराबर भिड़ते रहे हैं और इस भिड़न्त से ही उन्होंने अपनी आलोचना में वह धार पैदा की है जिसका उल्लेख लोग कभी-कभी 'नामवरी तेवर' के रूप में करते हैं। 'वाद-विवाद संवाद' पुस्तक उनकी इस उस्तादी का श्रेष्ठ उदाहरण है। इस पुस्तक में नामवर सिंह ने 'जनतंत्र और समालोचना', आलोचना की स्वायत्तता', 'प्रासंगिकता पर पुनश्च : प्रलय की छाया', 'आलोचना की संस्कृति और संस्कृति की आलोचना' जैसे निबंधों से हिंदी आलोचना को नए सरोकारों से जोड़ते हुए आने वाले खतरों से जिस तरह आगाह किया है, वह उनकी प्रखर आलोचना-दृष्टि और सचेत आलोचना-कर्म का उत्कृष्ट उदाहरण है। वाद-विवाद नामवर सिंह की प्रकृति में है और वे यह मानते हैं कि "वादे-वादे जायते तत्वबोधः।"

नामवर सिंह डॉ. नगेन्द्र, विजयदेव नारायण साही, अशोक वाजपेयी, रामविलास शर्मा और राजेन्द्र यादव से बराबर वाद-विवाद करते रहे हैं। इस विवाद से हिंदी आलोचना को तेवर भी मिला है और दृष्टि भी। मार्क्सवादी आलोचना-परंपरा के अन्य आलोचकों में रांगेय राघव (प्रगतिशील साहित्य के मापदंड, काव्य, यथार्थ और प्रगति, काव्य के मूल विवेच्य) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये रूप-तत्व को बहुत महत्व नहीं देते हैं। इन्होंने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आलोक में भारतीय काव्यशास्त्र का भी अध्ययन किया है। ये प्रतिबद्ध मार्क्सवादी समीक्षक हैं। अज्ञेय ने उपने 'तारसप्तक' के वक्तव्य में 'जीवन की जटिलता', 'स्थिति-परिवर्तन की असाधारण तीव्र गति', 'कवि की उलझी हुई संवेदना', साधारणीकरण और सम्प्रेषण की समस्या, जैसी अनेक नई बातों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया और नए भावबोध से लिखी गई कविताओं के लिए नए आलोचना-प्रतिमानों की आवश्यकता पर बल दिया। इसी समय अज्ञेय ने 'तारसप्तक' में लिखा – "नयी कविता का अपने पाठक और स्वयं के प्रति उत्तरदायित्व बढ़ गया है। यह मानकर कि शास्त्रीय आलोचकों से उसका सहानुभूतिपूर्ण तो क्या पूर्वाग्रहरहित अध्ययन भी नहीं मिला है, यह आवश्यक हो गया है कि स्वयं आलोचक तटस्थ और निर्मम भाव से उसका परीक्षण करें। दूसरे शब्दों में परिस्थिति की माँग यह है कि कविगण स्वयं एक दूसरे के आलोचक बनकर सामने आएँ।" कवियों को आलोचना-कर्म में प्रवृत्त करने का यह आह्वान नया नहीं था। छायावादी कवियों ने भी यह कार्य किया था।

यहाँ थोड़ा रुककर आंग्ल-अमरीकी 'नयी समीक्षा' को समझ लेना जरूरी है। टी. एस. इलियट, आई ए. रिचर्ड्स, जॉन क्रो रेन्सम, एलेन टेट, राबर्ट पेन वारेन, आर. पी. ब्लेकमर, क्लीन्थ

ब्रुक्स आदि ने 'नयी समीक्षा' का जो शास्त्र और दर्शन तैयार किया उसकी मुख्य बातें इस प्रकार हैं:

१. रचना एक पूर्ण एवं स्वायत्त भाषिक संरचना है। इसलिए भाषा के सर्जनात्मक तत्वों का विश्लेषण ही समीक्षा का मुख्य कार्य है।

२. ऐतिहासिक, सामाजशास्त्रीय, दार्शनिक एवं विश्लेषणवादी समीक्षाएँ अनावश्यक एवं अप्रसांगिक हैं। क्योंकि ये सहित्येतर प्रतिमान हैं।

३. रचना का मूल्यांकन रचना के रूप में ही करना अभीष्ट है।

४. रचना की आंतरिक संगति और संश्लिष्ट विधान के विवेचन-विश्लेषण के लिए उसका गहन पाठ आवश्यक है।

हिंदी के आलोचकों ने भी जटिल भावबोध और तदनुकूल जटिल कलात्मक उपादानों शब्द-संकेतों, बिंबों, प्रतीकों, उपमानों आदि - से युक्त संश्लिष्ट काव्यभाषा वाली नयी कविता की समीक्षा के लिए एक सर्वथा भिन्न समीक्षा-दृष्टि एवं शैली की आवश्यकता का अनुभव किया जिसके फलस्वरूप हिंदी में 'नयी समीक्षा' का प्रसार हुआ। आधुनिक भावबोध को केंद्र में रखकर समीक्षा-कर्म में प्रवृत्त होने वाले समीक्षकों में अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, रघुवंश, लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेवनारायण साही, जगदीश गुप्त, मलयज, रामस्वरूप चतुर्वेदी, अशोक वाजपेयी, रमेशचन्द्र शाह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन समीक्षकों ने युगीन परिवेश में व्याप्त विसंगति', विडम्बना', 'असहायता', 'निरुद्देश्यता', 'एकाकीपन', 'अजनबीपन', 'ऊब', 'संत्रास', 'कुंठा' आदि का विश्लेषण करते हुए 'अनुभूति की प्रामाणिकता' और 'व्यक्तित्व की अद्वितीयता' को रेखांकित किया और 'अस्मिता के संकट' से गुजरते हुए मनुष्य की मुक्ति की आवश्यकता पर बल दिया। इसके साथ ही रचना को भाषिक सर्जना मानकर काव्य-भाषा के विश्लेषण को समीक्षा का मुख्य विषय बनाया।

नयी समीक्षा की विशेषताओं को उद्घाटित एवं स्थापित करने वाली तथा इस दृष्टि से नयी कविता और कवियों की समीक्षा करने वाली रचनाओं में 'भवंती', 'आत्मनेपद', 'आलवाल', 'अद्यतन' (अज्ञेय), 'नयी कविता के प्रतिमान' (लक्ष्मीकांत वर्मा), हिंदी नवलेखन', 'काव्यधारा के तीन निबंध', 'भाषा और संवेदना', 'सर्जन और भाषिक संरचना',(रामस्वरूप चतुर्वेदी), 'मानवमूल्य और साहित्य' (धर्मवीर भारती), 'साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य' (रघुवंश), नयी कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ (गिरिजाकुमार माथुर), 'नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ (जगदीश गुप्त), 'कविता से साक्षात्कार', 'संवाद और एकालाप' (मलयज), 'समानान्तर', 'वागर्थ', 'सबद निरंतर',(रमेशचन्द्र शाह), 'फिलहाल' (अशोक वाजपेयी) आदि उल्लेखनीय हैं। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि हिंदी के नए समीक्षकों ने काव्य के संदर्भ में भाषा के महत्व को स्वीकार किया, उसके सर्जनात्मक तत्वों का विश्लेषण और मूल्यांकन किया, सर्जनात्मक दृष्टि से उत्कृष्ट रचना की अद्वितीयता और महत्ता को सराहा, संवेदना और शिल्प की अन्विति को रेखांकित किया, वस्तु और रूप के संबंधों का विश्लेषण किया किंतु अमरीकी या पश्चिम के नए समीक्षकों की तरह रचना को उसके ऐतिहासिक संदर्भा से पूरी तरह काटकर नहीं देखा। इतना अवश्य है कि कई समीक्षकों ने कविता के सर्जनात्मक तत्वों के विश्लेषण, उनकी संश्लिष्टता और अनुभव की अद्वितीयता आदि पर विशेष बल देते हुए अपने कलावादी

रुझान को अधिक मुखर रूप में व्यक्त किया। यद्यपि नयी समीक्षा का ज्वार बड़ी जल्दी उतर गया, किंतु यह भी एक तथ्य है कि इसकी वेगवती धारा थोड़ी देर के लिए ही सही, मार्क्सवादी समीक्षकों को भी अपने प्रवाह में बहा ले गई।

नयी समीक्षा का संबंध विशेष रूप से कविता से ही रहा है। कहना चाहिए कि यह कविता-केंद्रित ऐसी आलोचना-पद्धति थी जिसने कविता की स्वायत्तता और सर्जनात्मकता पर अधिक बल दिया। उपन्यास, कहानी, नाटक आदि गद्य-विधाओं के मूल्यांकन के लिए इस पद्धति का उपयोग बहुत कम हुआ। नयी समीक्षा की संरचना-केंद्रित आलोचना-दृष्टि को और अधिक सूक्ष्म और सघन करने वाली एक और समीक्षा-पद्धति का विकास हुआ जिसे शैली विज्ञान कहा गया। यह भाषिक विश्लेषण की वह वैज्ञानिक पद्धति है जिसमें भाषा के सभी उपादानों - शब्द, पद, वाक्य, ध्वनि, छंद को अध्ययन का विषय बनाया जाता है। हिंदी में इस समीक्षा-मद्धति के पुरस्कर्ता हैं – रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, जिन्होंने शैली विज्ञान का सिद्धांत भी तैयार किया और तदनकल व्यावहारिक शैली वैज्ञानिक समीक्षा भी लिखी । पांडेय शशिभूषण शीतांशु और सुरेश कुमार ने भी इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया है। पं. विद्यानिवास मिश्र ने शैलीविज्ञान की जगह रीति विज्ञान को प्रमुखता प्रदान की, किंतु उनके तर्को को अधिक बल नहीं मिला।

रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने शैली वैज्ञानिक समीक्षा का जो व्यावहारिक रूप केदारनाथ सिंह की कविता 'इस अनागत का करें क्या' की समीक्षा करके प्रस्तुत किया उसे डॉ. बच्चन सिंह ने कविता की शव-परीक्षा कहकर शैली-वैज्ञानिक समीक्षा की सीमाओं को भली-भाँति उजागर कर दिया। उन्होंने उस समीक्षा की समीक्षा करते हए लिखा - "स्पष्ट है कि शैली वैज्ञानिक प्रणाली के आधार पर वाक्यों, उपवाक्यों, संज्ञा, सर्वनाम, पद, पद-बंध आदि के माध्यम से कविता की जो परीक्षा की गई है, वह उसकी शव-परीक्षा बन जाती है। इसमें जिस व्याकरण की सहायता ली गई है वह कविता को छोटे-छोटे खंडों में काट तो देता है पर उसे संश्लेषित नहीं कर पाता । इस व्यवच्छेदन-व्यापार से मूल्यांकन का संबंध निश्शेष हो जाता है ।" दरअसल शैली वैज्ञानिक समीक्षा एक प्रकार का भाषिक विश्लेषण है जो काव्य भाषा को तार-तार करके उसके प्रयोग वैशिष्ट्य और कलात्मक बारीकी को तो प्रस्तुत कर देता है। किंतु न तो काव्यमर्म को उद्घाटित कर पाता है, न ही रचना की मूल्यवत्ता को ठीक से रेखांकित कर पाता है। यह एक तरह से नींबू-निचोड़ समीक्षा है जो रस को बाहर फेंक देती है और गूदे का विश्लेषण करके उसका सौंदर्य देखती हैं।

'नयी समीक्षा' 'शैली विज्ञान' और संरचनावाद' के साथ ही हिंदी में सर्जनात्मक आलोचना की भी काफी चर्चा हुई है। समीक्षक के कार्य की सृजनशीलता की चर्चा करते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है "आलोचक या समीक्षक का कार्य, वस्तुत: कलाकार या लेखक से भी अधिक तन्मयतापूर्ण और सृजनशील होता है, उसे एक साथ जीवन के वास्तविक अनुभवों के समुद्र में डूबना पड़ता है और उससे उबरना भी पड़ता है कि जिससे लहरों का पानी उसकी आँखों में न घुस पड़े । उनकी दृष्टि में 'जीवन-सत्यों पर आधारित साहित्य-समीक्षा स्वयं एक सृजनशील कार्य है और वह न केवल लेखक को वरन् पाठक को भी जीवन-सत्यों के अपने उद्घाटनों द्वारा सहायता करती जाती है।' इसीलिए मुक्तिबोध 'आलोचना को रचना की पुर्नसृष्टी' मानते हैं। नामवर सिंह भी लगभग इसी तरह की बातें कहते हैं – "आलोचक जब आलोच्य कृति के संपूर्ण कथ्य को कथन-मात्र के रूप में स्वीकार करके आलोचना-कर्म में प्रवृत्त होता

है तो उस पर कथ्य-कथन संबंध में प्रवेश करने की कठिन जिम्मेदारी आ जाती है। तादात्म्य के रूप में प्रस्तुत कथ्य-कथन के बीच वह एक तरह से सेंध लगाता है और अंतर्निहित तनाव की तलाश करता है।

आलोचक की यह तलाश ही उसकी सृजनशीलता है।" मुक्तिबोध यह मानते हैं कि रचना में इस प्रकार का सृजनात्मक अंत:प्रवेश उसके कलात्मक सौंदर्य के माध्यम से ही किया जा सकता है – "कलात्मक सौंदर्य तो वह सिंहद्वार है जिसमें से गुजरकर ही कृति के मर्म क्षेत्र में विचरण किया जा सकता है, अन्यथा नहीं।" अभिप्राय यह कि आलोचना भी एक रचना है और उसकी यह रचनात्मकता आलोच्य कृति में उसकी अभिव्यक्ति के उपकरणों के माध्यम से उसमें अंत: प्रवेश करके ही उपलब्ध की जा सकती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि सर्जनात्मक आलोचना उच्च श्रेणी की आलोचना है और वह आलोचक को भी रचनाकार की श्रेणी में रख देती है तथा उसकी आलोचना को रचनात्मक समृद्धि प्रदान करती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की आलोचना में भी सर्जनात्मकता के तत्व प्रभूत मात्रा में विद्यमान हैं। मुक्तिबोध की पुस्तक 'कामायनी : एक पुनर्विचार' सर्जनात्मक आलोचना का श्रेष्ठ उदाहरण है। अशोक वाजपेयी और मलयज की आलोचनाएँ भी सर्जनात्मक आलोचना की विशेषताओं से परिपूर्ण हैं।

आलोचना का कार्य साहित्य का निर्णय अथवा व्याख्या करना नहीं है। वह स्वयं भी रचनात्मक हो सकती है यदि वह अपने में आलोच्य कृति की पुनर्रचना कर ले। यह पुनर्रचना आलोचक की रचनात्मक क्षमता पर निर्भर करती है। अत: कहा जा सकता है कि रचनात्मक प्रतिभा से संपन्न आलोचक ही सर्जनात्मक समीक्षा लिख सकता है, किंतु इसका सरलीकरण इस रूप में नहीं हो सकता कि रचनाकार ही श्रेष्ठ सर्जनात्मक आलोचक हो सकता है बावजूद इस सत्य के कि अनेक रचनाकारों ने उत्कृष्ट आलोचनाएँ भी लिखी हैं। 'प्रसाद', 'पंत', 'निराला', 'अज्ञेय', मुक्तिबोध', 'विजयदेव नारायण साही', और 'शमशेर' इस बात के उदाहरण हैं कि उनकी कविताएँ जितनी अच्छी हैं, उतनी ही अच्छी और संभावनापूर्ण उनकी समीक्षाएँ भी हैं। जिस तरह संभावनापूर्ण होकर कोई रचना अत्यधिक रचनात्मक प्रमाणित होती है, उसी तरह संभावनापूर्ण होकर कोई आलोचना भी अपनी रचनात्मकता को प्रत्यक्ष करती है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी आलोचना का विवेचन करते हुए प्राय: आज तक की हिंदी आलोचना की प्रवृत्तियों और उपलब्धियों को रेखांकित करने की कोशिश की गई है। इस दौर में मुख्य रूप से मार्क्सवादी और रूपवादी प्रवृत्तियों की प्रबलता है लेकिन अत्यधिक प्रभावी और प्रसरणशील आलोचना-पद्धति के रूप में मार्क्सवादी आलोचना का ही विकास हो रहा है। मार्क्सवादी समीक्षकों में रामविलास शर्मा और नामवर सिंह के साथ इधर नए समीक्षकों की एक बड़ी पंक्ति तैयार हुई है। जिसमें शिवकुमार मिश्र, धनंजय वर्मा, निर्मला जैन, नंदकिशोर नवल, शंभुनाथ, कर्णसिंह चौहान, मधुरेश, खगेन्द्र ठाकुर आदि के नाम उल्लेखनीय है।

मार्क्सवादियों में भी जनवादियों की एक अलग पीढ़ी तैयार हो रही है जिसकी अगली पंक्ति में शिवकुमार मिश्र और मैनेजर पाण्डेय दिखाई पड़ रहे हैं। दरअसल इस समय रचना और आलोचना को लेखक-संगठन और लघु पत्रिकाएँ अपने-अपने ढंग से निर्देशित-प्रेरित कर रही हैं और तदनुसार 'किसिम-किसिम' की आलोचना प्रकाश में आ रही है, जिसमें अपने को और अपने पक्षधरों को स्थापित और उत्साहित करने की प्रवृत्ति अधिक है और रचना का वस्तुगत

मूल्यांकन गौण हो गया है। एक ही रचना एक खेमे में श्रेष्ठ और महान मानी जाती है. दसरे खेमे में निकृष्ट और महत्वहीन। यह आलोचना-जगत में एक प्रकार की वही अराजकता है जो वर्तमान भारतीय राजनीति में आए दिन दिखाई पड़ रही है।

९.४ निष्कर्ष

हिंदी आलोचना का उत्तरोत्तर विकास हुआ है और नयी रचनाशीलता के साथ-साथ हिंदी आलोचना ने भी अपने में बराबर परिवर्तन भी किया है। यह रचना के समानान्तर आलोचना की वह यात्रा है जो रचना को परखने का भी कार्य करती है और रचना के दबावों के अनुरूप अपने में नयी शक्ति और सामर्थ्य का भी विकास करती है। हिंदी आलोचना की यह प्रगतिशीलता इस रूप में अधिक स्पष्टता के साथ देखी जा सकती है कि जो आलोचना आरंभ में शास्त्रनिष्ठ और सैद्धांतिक अधिक थी, वह उत्तरोत्तर उन्मुक्त होती हुई आलोचना की सर्जनात्मकता के बिंदु तक पहुँच गई। यदि आलोचना में कठमुल्लापन ही बना रहता, देशी-विदेशी संदर्भो से जुड़कर अपने को नवीन करने की प्रवृत्ति न होती, रचना में अंत:प्रवेश करके रचना-मूल्यों को टटोलने की उत्सुकता न होती तो आलोचना और रचना के बीच घनिष्ठ रिश्ता कायम न हो पाता।

हिंदी आलोचना के विकास-क्रम का अध्ययन करने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि समय-समय पर अनेक समीक्षकों ने अपनी उत्कृष्ट आलोचना-प्रतिभा और साहित्य की गहरी समझ से हिंदी आलोचना को नई ऊँचाई और गरिमा प्रदान की है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ नगेन्द्र, डॉ रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध, डॉ.नामवर सिंह, डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. रघुवंश, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, अशोक वाजपेयी, मलयज, विजयदेव नारायण साही आदि ऐसे आलोचक हैं जिन्हेंने आलोचना को अपनी सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक समीक्षा से समृद्ध किया है और उसे जड़ या स्थिर होने से बचाया है। इनकी व्यावहारिक आलोचनाओं से हिंदी में रचनात्मक उत्कर्ष की नई दिशाएँ भी स्पष्ट हुई हैं। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि इनकी आलोचनाओं और स्थापनाओं ने रचनाओं के लिए नई चुनौतियाँ भी पेश की हैं। इससे रचना और आलोचना का वह द्वंद्वात्मक रिश्ता भी स्पष्ट हुआ है जो दोनों में गुणात्मक विकास को प्रत्यक्ष करने में सक्षम होता है।

९.५ बोध प्रश्न

१. हिन्दी आलोचना का अर्थ बताते हुए उसके विकास क्रम को लिखिए।

२. हिन्दी आलोचना के विकास यात्रा पर प्रकाश डालिए।

३. हिन्दी आलोचना के उद्भव एवं विकास को सोदाहरण लिखिए।

४. आधुनिक हिन्दी आलोचना की आरंभिक स्थिति पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

❄❄❄❄❄❄❄